BC-11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

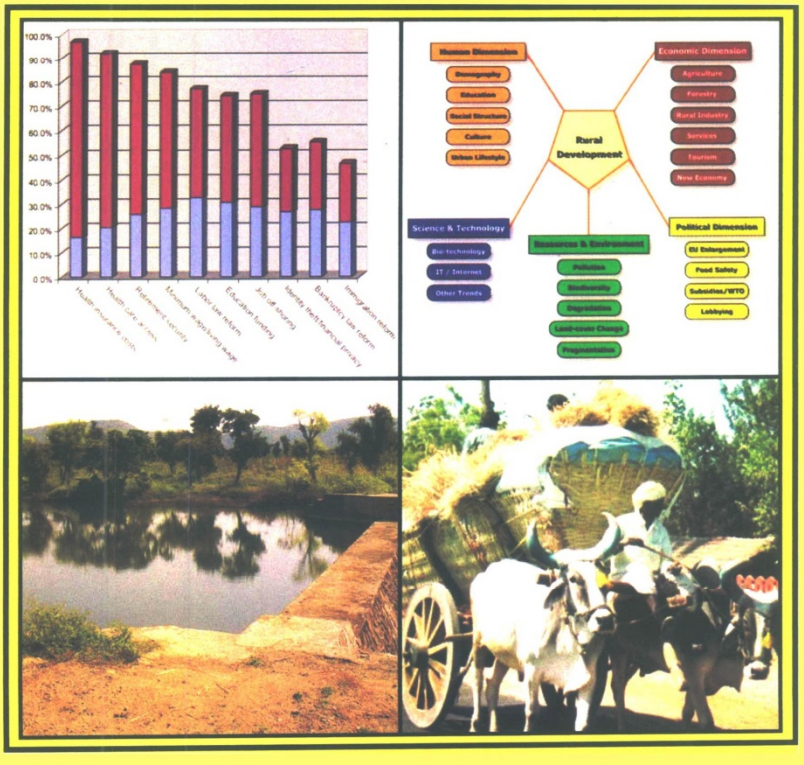

आर्थिक नीति एवं ग्रामीण विकास

BC-11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आर्थिक नीति एवं ग्रामीण विकास
(Economic Policy and Rural Development)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. एम. एल. जैन 'मणि'
(पूर्व उपप्राचार्य, विश्वविद्यालय वाणिज्य महाविद्यालय, जयपुर)
परामर्शदाता: वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो.(डॉ.) नवीन माथुर**
  आचार्य एवं प्रशासनिक सचिव, कुलपति
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) एस. जी. शर्मा**
  आचार्य एवं अध्यक्ष ए. बी. एस. टी. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो.(डॉ.) आर. के. दीक्षित**
  आचार्य एवं अध्यक्ष ई. ए. एफ. एम. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. आई. वी. त्रिवेदी**
  आचार्य, बैंकिंग एण्ड बिजनेस इकॉनामिक्स
  सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **डॉ. पुखराज दाधीच**
  वरिष्ठ व्याख्याता
  राजकीय महाविद्यालय, अजमेर
- **डॉ. एस. सी. जोशी**
  पूर्व उपप्राचार्य
  राजकीय महाविद्यालय, बांरा

संपादन एवं पाठ-लेखन

संपादक

प्रो.(डॉ.) सोम देव
निदेशक, एकेडेमिक स्टाफ कॉलेज
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

इकाई लेखक

• **प्रो.(डॉ.)बी. पी. गुप्ता** (इकाई संख्या 6 से 10 व13) उप-प्राचार्य, **वाणिज्य महाविद्यालय** **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	• **डॉ.(श्रीमती) ममता जैन** (इकाई संख्या1,11से15 व 17) सहायक आचार्य(ई. ए. एफ. एम.) **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**
• **डॉ. ए. के. मिश्रा** (इकाई संख्या 2 से 5 व 12,14) व्याख्याता **एस. एस. जैन सुबोध पी. जी. महाविद्यालय, जयपुर**	

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम. के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

पुनः उत्पादन - अगस्त 2010 ISBN No.: 13/978-81-8496-019-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि. कोटा के लिए कुलसचिव व. म. खु. वि. कोटा(राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई- 1	आर्थिक नीति	8–25
इकाई- 2	भारत में ग्रामीण विकास	26–44
इकाई- 3	प्रमुख ग्रामीण विकास योजनाएँ	45–61
इकाई- 4	भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि	62–82
इकाई- 5	ग्रामीण वित्त	83–101
इकाई- 6	विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि	102–115
इकाई- 7	लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग	116–129
इकाई- 8	भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र	130–148
इकाई- 9	भारतीय अर्थ व्यवस्था का उदारीकरण	149–168
इकाई- 10	वैश्वीकरण एवं स्वदेशी	169–180
इकाई- 11	भारतीय विदेशी व्यापार- निर्यात संवर्द्धन	181–197
इकाई- 12	जनसंख्या विस्फोट	198–221
इकाई- 13	भारतीय अर्थ व्यवस्था में सेवा क्षेत्र	222–235
इकाई- 14	श्वेत क्रान्ति	236–259
इकाई- 15	ग्रामीण अवधारणा	260–270
इकाई- 16	राजस्थान की अर्थव्यवस्था	271–286
इकाई- 17	पंचायती राज व्यवस्था एवं ग्रामीण विकास	287–298

इकाई - 1 : आर्थिक नीति (Economics Policy)

इकाई की संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 अर्थ एवं परिभाषा

1.3 नीतियों की विशेषताएँ

1.4 आर्थिक नीति के उद्देश्य

1.5 आर्थिक नीति के उपकरण

1.6 आर्थिक नीति के घटक/आयाम

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 स्व-परख प्रश्न

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- आर्थिक नीति का अर्थ एवं परिभाषा ।
- आर्थिक नीति की विशेषताऐं ।
- आर्थिक नीति के उद्देश्य
- आर्थिक नीति के विभिन्न आयाम व घटक:- भारतीय कृषि नीति, औद्योगिक नीति, आयात-निर्यात नीति, मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति ।

1.1 परिचय (Introduction)

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन विकास की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व के अधिकांश विकासशील देशों ने अपनी आर्थिक समस्याओं यथा-बेरोजगारी, औद्योगीकरण, निर्धनता, जनसंख्या विस्फोट तथा आर्थिक विषमता के समाधान के लिए आर्थिक नियोजन के मार्ग को अपनाया है । अज्ञानता, अशिक्षा, अंधविश्वास, धर्मान्धता तथा सामाजिक रिवाजों के कारण प्रारम्भ में आर्थिक नियोजन का भारी विरोध हुआ ।

विकासशील देशों में बेरोजगारी, निर्धनता, निम्न जीवन-स्तर, निम्न उत्पादकता, निम्न आय, आर्थिक विषमता आदि समस्याओं के समाधान हेतु अनेक आर्थिक कार्यक्रम अपनाये गये हैं जिनके अनुकूल परिणाम भी आये हैं । विभिन्न कार्यक्रमों के लिए आर्थिक नीतियों का निर्माण किया जाता है तथा इन्हें प्रभावी ढंग से लागू भी किया जाता है । आर्थिक नीतियों का मुख्य लक्ष्य देश में विद्यमान प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके देशवासियों के जीवन स्तर में सुधार करना है ।

1.2 अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

आर्थिक नीति के अर्थ एवं परिभाषा से पूर्व "नीति" की परिभाषा एवं अर्थ जानना आवश्यक है । नीति से आशय एक कार्य योजना है जिसे सरकार द्वारा प्रस्तावित किया जाता है । सरकार तथा व्यवसायी ऐसी नीति का निर्धारण करते हैं जिससे कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके । दूसरे शब्दों में नीति सामान्य कथन है जिनके माध्यम से किसी संगठन के सदस्यों को उनके कर्तव्यों एवं अन्य क्रियाओं के सम्पादन के लिए मार्गदर्शन दिया जाता है ।

आर्थिक नीति सरकारी नीति होती है जिसके माध्यम से देश की आर्थिक क्रियाओं का नियमन किया जाता है । यह सरकार द्वारा सुविचारित नीति होती है । इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था का प्रबंधन, नियमन एवं नियंत्रण आसान होता है और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है । आर्थिक नीति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध देश की आर्थिक क्रियाओं से होता है लेकिन इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक पहलू भी होते हैं । देश की अर्थव्यवस्था को सुगमता से संचालित करने के लिए आर्थिक नीति ग्रहण की जाती है । प्रत्येक अर्थव्यवस्था के अपने उद्देश्य होते हैं । इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आर्थिक नीति का निर्माण किया जाता है ।

परिभाषा : -

कून्ट्ज तथा ओडोनेलके अनुसार "नीतियां सामान्य कथन या समझने वाली बातें है जो निर्णय लेने के विचार तत्व और कार्य का पथ प्रदर्शन करती है ।"

प्रो. जे.एल. हेन्सन ने आर्थिक नीति के कुछ प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख किया है जो परस्पर एक-दूसरे के विरोधी भी हैं । ये निम्नांकित हैं -

1. पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना ।
2. आर्थिक विकास की उच्च दर प्राप्त करना जिससे कि लोगों के जीवन-स्तर को उन्नत किया जा सके ।
3. धन के पुनर्वितरण के माध्यम से आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना ।
4. मौद्रिक इकाई के मूल्य में स्थायित्व प्राप्त करना ।

आर्थिक नीति का सामाजिक नीति से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसमें सामाजिक सुरक्षा तथा लोगों के जीवन निर्वाह में सुधार करना भी सम्मिलित है । आर्थिक नीति अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं को अनुकूल दिशा में प्रोत्साहित करती है । यह प्रतिकूल आर्थिक क्रियाओं का नियमन एवं नियंत्रण करके दिये हुए आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में सहायक होती है ।

आर्थिक नीतियां सामाजिक एवं राजनीतिक पर्यावरण से भी प्रभावित होती है 1 यदि हमारा उद्देश्य सामाजिक सुरक्षा, जीवन-स्तर में सुधार, राजनीतिक स्थायित्व एवं कानून व्यवस्था बनाये रखना है तो आर्थिक नीति इन उद्देश्यों के विपरीत नहीं होनी चाहिए ।

1.3 नीतियों की विशेषताएं (Characteristics)

नीतियों की निम्न विशेषताएं होती हैं -

1. नीतियां निरन्तर निर्णयन में सहायक एवं मार्गदर्शक होती हैं ।

2. नीतियां प्रबंधकों अथवा प्रशासकों के निर्णयन शक्ति तक ही सीमित नहीं होती हैं बल्कि निर्णय की सीमाओं का भी निर्धारण करती है ।
3. नीतियां उद्देश्यों से भिन्न होती है । उद्देश्यों का सम्बन्ध परिस्थितियों से है, जहां तक पहुंचना होता है, जबकि नीतियां माध्यम या विधियां हैं जिनसे उद्देश्यों तक पहुंचा जाता है। उद्देश्य योजना के लक्ष्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति का कार्य करते है ।
4. नीतियां नियम नहीं होती है । नीतियां निर्णयन में पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है । विचारों पर आधारित निर्णयन के लिए नीतियां मार्गदर्शक का कार्य करती है । कार्यकारी अधिकारी परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेते हैं लेकिन वे पूर्व में निर्धारित नीतियों से मार्गदर्शन लेते हैं । अत: उन्हें नियमानुसार कार्य करना पड़ता है ।

1.4 आर्थिक नीति के उद्देश्य (Objectives)

आर्थिक नीति के अनेक उद्देश्य होते हैं । इनमें कुछ उद्देश्यपूरक होते हैं तथा कुछ परस्पर विरोधी भी होते है । दीर्घकालीन दृष्टिकोण तथा वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इन उद्देश्यों के चयन का कार्य किया जाता है । भारत जैसे विकासशील देश में एक आर्थिक नीति के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं-

1. **रोजगार के अवसरों का सृजन** - विकासशील देशों में रोजगार के अवसरों का सृजन करना आर्थिक नीति का एक मुख्य उद्देश्य होता है जिससे कि आर्थिक विकास में मानवीय संसाधनों का भरपूर उपयोग किया जा सके । विकसित देशों में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखना आर्थिक नीति का प्रमुख उद्देश्य है । इन देशों में अति-उत्पादन, अति-पूंजीकरण, संरचनात्मक परिवर्तन तथा तकनीकी उन्नयन आदि के कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है । अत: आर्थिक नीति के अनुरूप रोजगार नीति का निर्माण इन अर्थव्यवस्थाओं में किया जाता है ।
2. **तीव्र आर्थिक विकास -** विकासशील देशों में आर्थिक नीति का उद्देश्य तीव्र आर्थिक विकास करना है । आर्थिक नीति से तीव्र एवं सन्तुलित आर्थिक विकास संभव है । आर्थिक विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है । उचित आर्थिक नीति के निर्माण एवं प्रभावी क्रियान्वयन से देश के संसाधनों का अधिकतम उपयोग एवं अर्थव्यवस्था को उचित दिशा निर्देश दिये जा सकते हैं ।
3. **आर्थिक स्थिरता -** आर्थिक नीति का उद्देश्य कीमतों में उच्चावचनों को नियमित एवं नियंत्रित करके देश में आर्थिक स्थायित्व की स्थिति प्राप्त करना है । आर्थिक नीति के माध्यम से उत्पादन, उपभोग, वितरण एवं मांग के बीच समन्वय स्थापित करना होता है जिससे आर्थिक उच्चावचनों को न्यूनतम किया जा सकें ।
4. **अधिकतम सामाजिक कल्याण -** आर्थिक नीति का उद्देश्य देश में सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना है । सरकार ऐसी आर्थिक नीतियां अपनाती है जिससे साधनों का उपयोग सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने में हो । आय एवं धन का वितरण निर्धन वर्ग के पक्ष में किया जाता है । प्रगतिशील करारोपण से धनी वर्ग से निर्धन वर्ग के पक्ष में वितरण होता है और सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है ।

5. **आर्थिक समानता एवं न्याय -** आर्थिक नीति का उद्देश्य केवल आर्थिक विकास ही नहीं हैं बल्कि विकास के लाभों का न्यायपूर्ण वितरण करना भी है । इससे समाज में आय, धन एवं अवसरों की समानता में वृद्धि हो सकेगी । समाज का निर्धन वर्ग सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय प्राप्त कर सकेगा । रोजगार के समान अवसर, समान कार्य के लिए समान वेतन तथा न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करने हेतु आर्थिक नीति का निर्धारण किया जाता है विवरणात्मक एवं आवंटनात्मक कुशलता को उत्पादकता कुशलता में परिवर्तित करना आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है ।
6. **आर्थिक स्वतंत्रता -** आर्थिक स्वतन्त्रता से आशय कार्य की स्वतंत्रता से है । किसी भी व्यक्ति को व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता होती है जिसके माध्यम से जनता के आर्थिक एवं सामाजिक हितों की पूर्ति हो सके । सरकार प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय करने हेतु उचित सुविधा प्रदान करेगी । प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह की स्वतंत्रता आर्थिक नीति का मूल आधार है ।
7. **उत्पादन में वृद्धि -** आर्थिक नीति का उद्देश्य देश में उत्पादन में वृद्धि करना होता है । उत्पादकों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिया जाना चाहिए जिससे कि उत्पादन में वृद्धि केलिए प्रोत्साहन मिल सके । औद्योगिक नीति एवं कृषि नीति का निर्धारण ऐसा किया जाना चाहिए कि उत्पादन बड़े तथा उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति आसानी से हो । विदेशी व्यापार नीति से निर्यात प्रोत्साहित हो तथा आयात प्रतिस्थापित हो । इस प्रकार आर्थिक नीति का उद्देश्य उत्पादन एवं आय में वृद्धि करना होता है । आय के निर्माण में अबाध प्रगति होना आर्थिक नीति का मूल मंत्र है ।
8. **नियोजित आर्थिक विकास -** विकासशील देशों में आर्थिक नियोजन अपनाने का मूल उद्देश्य समान विकास के अवसरों की उपलब्धि कराना है । आर्थिक नीति का उद्देश्य नियोजित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना होता है जिससे कि सामान्य उद्देश्यों के साथ-साथ सन्तुलित विकास के उद्देश्य की पूर्ति भी की जा सके ।
9. **निर्यातों में वृद्धि -** विकासशील देशों में भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता पायी जाती है तथा विदेशी विनिमय साधनों की सीमित उपलब्धता रहती है । ऐसी स्थिति में निर्यातों में वृद्धि तथा आयात प्रतिस्थापन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आर्थिक नीति अपनाई जाती है । प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों पर नवीनतम उत्पादों एवं क्षेत्रों में निर्यात सवर्द्धन करके देश में भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर किया जा सकता है । विश्व में ऐसे कई देश है जिनकी आर्थिक नीति का मुख्य आधार निर्यात है ।
10. **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में समन्वय -** भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है । इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र साथ-साथ विकसित किये जाते हैं । वे एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी न होकर पूरक होते है । प्रारम्भ में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर जोर दिया गया था तथा अनेक उपक्रम स्थापित करने के साथ-साथ निजी क्षेत्र के उपक्रमों का राष्ट्रीयकरण किया गया था । आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत निजीकरण तथा सार्वजनिक उपक्रमों के अविनियोग के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं । सरकार ने उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीति अपनाई है जिसके परिणामस्वरूप

आर्थिक नीतियों में अनेक परिवर्तन किये गये हैं जिससे कि सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बीच समन्वय स्थापित किया जा सके । वर्तमान आर्थिक नीति में सार्वजनिक निजी भागीदारी का पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

1.5 आर्थिक नीति के उपकरण (Instruments of Economics Policy)

विकासशील तथा विकसित देशों की आर्थिक दशाओं में अन्तर पाया जाता है, क्योंकि इनकी आर्थिक समस्याएं भी भिन्न-भिन्न हैं । एक विकासशील देश की आर्थिक समस्याएं अन्य विकासशील देश से भिन्न होती है । विकासशील देशों की आर्थिक समस्याएं विकसित देशों की तुलना में बड़ी जटिल होती है । प्रत्येक देश को अपनी आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु परिस्थितिगत उचित आर्थिक नीतियों का निर्माण करना होता है । इन आर्थिक नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू करने हेतु उचित उपकरण यह में लेने पड़ते हैं । यदि उचित उपकरण अपना कर उनके माध्यम से आर्थिक नीतियों का क्रियान्वयन किया जाता है तो इन उद्देश्यों को सापेक्ष तथा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है । आर्थिक नीति के निम्न उपकरणों का प्रयोग किया जाता है-

1. **मौद्रिक उपकरण -** मौद्रिक उपकरणों के माध्यम से मुद्रा तथा साख की मात्रा एवं लागत को प्रभावित किया जाता है । मौद्रिक उपकरणों द्वारा अर्थव्यवस्था में आर्थिक उच्चावचनों को सहीदिशा में निर्देशित किया जाता है जिससे कि मुद्रा की पूर्ति का नियमन एवं नियंत्रण किया जा सके । केन्द्रीय बैंक के माध्यम से मौद्रिक उपकरणों का उपयोग किया जाता है जिससे कि विशिष्ट आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके । उदाहरणार्थ - विनिमय दर की स्थिरता, मुद्रा एवं साख की मात्रा का नियंत्रण, मूल्य स्थिरता, पूर्ण रोजगार, बैंकिंग, विकास, पूंजी निर्माण एवं निवेश को प्रोत्साहन आदि उद्देश्य पूरे किये जाते हैं । इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु साख नियंत्रण की मात्रात्मक एवं गुणात्मक विधियों को अपनाया जाता है ।
2. **राजकोषीय उपकरण -** सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा घाटे की अर्थव्यवस्था आदि प्रमुख राजकोषीय उपकरण होते हैं । सरकार अनेक आर्थिक एवं सामाजिक कार्यक्रम तैयार करती है तथा इनका क्रियान्वयन किया जाता है । सरकार विभिन्न स्त्रोतों से आय प्राप्त करती है तथा विभिन्न मदों पर व्यय करती है । सरकारी व्यय तथा आय में अन्तर को पाटने के लिए सार्वजनिक ऋण एवं घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाती है । विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इन राजकोषीय उपकरणों को अपनाया जाता है ।
3. **वाणिज्यिक उपकरण -** घरेलू तथा विदेशी व्यापार देश की आर्थिक नीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है । व्यापार की मात्रा, दिशा तथा सम्मिश्रण में विगत दशकों में काफी परिवर्तन हुए है । वाणिज्यिक उपकरणों के माध्यम से आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है । इन वाणिज्यिक उपकरणों में स्वतंत्र एवं प्रतिबंधित व्यापार, राष्ट्रीय

हितों के अनुरूप प्राथमिकताएं, वस्तुओं के अनुसार प्राथमिकताएं आदि है । इनका उपयोग आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है ।

4. **आर्थिक नियंत्रण -** आर्थिक नियंत्रणों को आर्थिक क्रियाओं को निर्देशित करने के लिए निश्चित दिशाएं चुनी जाती है । उपभोग, उत्पादन, विनिमय,. वितरण एवं राजस्व नियंत्रण आदि व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर रोक लगाते है । कई बार आर्थिक नीति की सफलता के लिए ऐसे नियंत्रण लागू करना आवश्यक होता है । अर्थव्यवस्था का प्रत्येक क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़ा है तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते है । नियंत्रणों की सफलता के लिए एक निश्चित सोच, नीति एवं नियमन प्रणाली का होना अति आवश्यक है इन नियंत्रणों में कीमत नियंत्रण, विनियोग पर नियंत्रण, लाईसेंस नीति, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, आदि प्रमुख है ।
5. **अनुदान -** सरकार अनुदान देती है जिससे कि उत्पादित वस्तु की लागत घट जाती है और उसकी कीमत नीचे रखी जाती है । यह उत्पादकों अथवा वितरणकर्ताओं को दिया जाने वाला भुगतान है जिससे कि वे कीमतें नीची रखे । विभिन्न क्षेत्रों में जो अनुदान दिये जाते हैं इनमें कृषि क्षेत्र, निर्यात, उपभोक्ता आदि क्षेत्र हैं जिनमें अनुदान दिया जाता है जिससे कि आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके । अनुदानों का प्रमुख उद्देश्य है कि जो वर्ग जिन सार्वजनिक उपयोगिता की वस्तु को अधिक दामों पर नहीं खरीद सकते उन्हें वे वस्तुऐं उचित दामों पर उपलब्ध कराकर जन कल्याण सुनिश्चित किया जाये । उदाहरण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, बिजली, जला पूर्ति आदि ।
6. **संस्थागत परिवर्तन -** आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संस्थागत परिवर्तन आवश्यक होते हैं। देश में एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए सरकार ने एकाधिकारी प्रतिबन्ध व्यापार एवं व्यवहार नियंत्रण व्यवस्था को विभिन्न रूप में लागू किया है । सरकारी क्षेत्र में उपक्रमों की स्थापना, राष्ट्रीयकरण तथा विनिवेश नीति, उदारीकरण, वैश्वीकरण आदि के लिए वांछित संस्थागत परिवर्तन आवश्यक होते है । इससे आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से की जा सकती है ।

1.6 आर्थिक नीति के घटक/आयाम (Components of Economics Policy)

विकासशील तथा विकसित देशों की आर्थिक समस्याओं में अन्तर पाया जाता है । विकासशील देशों की आर्थिक समस्याएं अधिक जटिल होती है । विभिन्न देशों में विभिन्न आर्थिक समस्याओं के लिए अलग आर्थिक नीतियां अपनाई जाती है । इन आर्थिक नीतियों की सफलता इसके विभिन्न घटकों/आयामों पर निर्भर करती है । सामान्यत: आर्थिक नीति के विभिन्न घटक एवं आयाम होते है ।

1.6.1 कृषि नीति (Agriculture Policy)

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली में कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसलिए कृषि की ओर समुचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है । अधिकांश विकासशील देश कृषि पर आश्रित है । रोजगार तथा राष्ट्रीय

आय का एक प्रमुख स्त्रोत कृषि ही है । कृषि क्षेत्र से अनेक उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होता है इसलिए औद्योगिक विकास भी कृषि पर निर्भर करता है ।

भारत जैसे विकासशील देश में कृषि जीवन यापन का एक प्रमुख आधार है । कृषि के विकास के लिए समुचित संसाधन, मानवीय संसाधन और उचित परिस्थितियां विद्यमान है जिनका उपयोग करना आवश्यक है ।

कृषि नीति का अर्थ :

कृषि नीति आर्थिक नीति का वह भाग है जिसके अन्तर्गत विभिन्न सिद्धान्तों, मार्गदर्शक तथा कार्यक्रम आते हैं जिनके माध्यम से कृषि क्रियाओं के संगठन, दिशा, नियमन तथा विकास का कार्य किया जाता है । इससे कृषि विकास के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति होती है ।

काश्तकारी एवं भू-स्वामी, जोत के वैज्ञानिक तरीके, कृषि उत्पादकता, उत्पादन, निवेश, कृषि उपजों के मूल्य, न्यूनतम मूल्य, गोदाम, कृषि वित्त, विपणन, फसल बीमा, कृषि अनुसंधान, संस्थागत परिवर्तन, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, कृषि आदानों का प्रबन्ध आदि कृषि नीति में सम्मिलित है ।

कृषि नीति के उद्देश्य

कृषि नीति के उद्देश्य अग्रांकित हैं -

1. कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करना ।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों तथा अर्द्ध-बेरोजगारों के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन करना।
3. कृषि में वैज्ञानिक विधियों तथा यन्त्रीकरण को प्रोत्साहन देना ।
4. कृषकों की आय में वृद्धि करके उनके जीवन स्तर को उन्नत करना ।
5. औद्योगिक कच्चे माल की सतत आपूर्ति करना ।
6. सन्तुलित कृषि विकास ।
7. कृषि वस्तुओं के निर्यात हेतु आधिक्य में वृद्धि करना
8. कृषि आदानों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना, जैसे-बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयां आदि ।
9. कृषि क्षेत्र को बाजार की मुख्य धारा से जोड़ना ।

उपर्युक्त कृषि उद्देश्यों का प्रमुख उद्देश्य देश की तीव्र आर्थिक विकास करना है ।

राष्ट्रीय कृषि नीति-2000

कृषि विकास दर में 2005 तक 4 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि करने के लिए 28 जुलाई, 2000 में राष्ट्रीय कृषि नीति की घोषणा की गई थी । संरचनात्मक, संस्थागत, कृषि अर्थशास्त्र तथा कर सुधारों के माध्यम से यह विकास दर प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाये गये।

नीति के उद्देश्य

कृषि नीति 2000, मांग पर आधारित कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन के उद्देश्य से घोषित की गई थी । इसके निम्नांकित उद्देश्य थे-

1. खाद्यान्न सुरक्षा

2. सामाजिक न्याय
3. निर्धनता उन्मूलन

इस नीति का उद्देश्य निजी क्षेत्र की सहभागिता को प्रोत्साहन देना है । यह प्रसंविदा काश्तकारी तथा भूमि बंटाई पर देकर तकनीकी का हस्तान्तरण, पूंजी अन्त प्रवाह, फसल उत्पादन हेतु आश्वस्त बाजार विशेष रूप से तिलहन, कपास तथा बागान फसलों पर आधारित नीति है ।

कृषि नीति की विशेषताएं

राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 की निम्नांकित विशेषताएं -

1. **चार प्रतिशत से अधिक कृषि विकास दर करना -** कृषि की वर्तमान वृद्धि दर 1.5 प्रतिशत है जिसमें 2005 तक 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि पर करना है ।
2. **सफलता हेतु उपाय -** संरचनात्मक, संस्थागत, कृषि अर्थशास्त्र तथा कर सुधार के संयोग के माध्यम से कृषि की महत्वाकांक्षी लक्ष्य दर प्राप्त करना है ।
3. **निजी क्षेत्र की भूमिका -** कृषि विशेष रूप से कृषि अनुसंधान, मानव संसाधन विकास, फसल पश्चात् प्रबन्ध एवं विपणन में निजी क्षेत्र के विनियोग को प्रोत्साहन देना है ।
4. **नीति का आधार -** संसाधनों एवं तकनीकी का कुशलतापूर्वक उपयोग, कृषकों को पर्याप्त साख प्रदान करना तथा मौसमी एवं कीमत उच्चावचनों से उनकी सुरक्षा करना ।
5. **काश्तकारों के संरक्षण हेतु व्यवस्था**
6. **विविध क्रियाओं को उच्च प्राथमिकता -** पशुपालन, मुर्गी पालन, डेयरी तथा बागान सम्बन्धी विविध क्रियाओं को प्राथमिकता देना ।
7. घरेलू कृषि बाजार का उदारीकरण
8. ग्रामीण विद्युतीकरण
9. साख को संस्थागत करना
10. कृषि उत्पादों का आयात
11. विविध
    1. बीज प्रमाणीकरण को सुदृढ़ करना ।
    2. खेती एवं पौधारोपण हेतु बंजर भूमि का काश्तकारों को आवंटन ।

नीति का मूल्यांकन

नई कृषि नीति के हरित क्रांति को बढ़ावा दिया है जिससे श्वेत क्रांति, तथा नील क्रांति का मार्ग प्रशस्त हुआ है । इससे इन्द्रधनुषीय क्रांति भी उत्पन्न होगी ।

1. इस नीति ने अगले दो दशक में 4 प्रतिशत वृद्धि दर का प्रस्ताव रखा है लेकिन मात्रात्मक रूप में कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किये है । आर्थिक सुधारों के अंतर्गत नई नीतियों ने कृषि की पूर्णरूप से उपेक्षा की है ।
2. नई कृषि नीति में समता के साथ विकास पर जोर दिया गया है लेकिन यह नीति कृषि संभावनाओं का अधिकतम उपयोग उन राज्यों में असफल रहा है जो कि पिछड़े रह गये है ।

3. कृषि में निजी निवेश को प्रोत्साहन का प्रावधान किया गया है । इसमें कोई संदेह नहीं कि कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करने में निजी निवेश टयूबवैल, कृषि उपकरण, मानवीय साधन विकास आदि के रूप में बड़े किसानों को प्रोत्साहित किया है । लेकिन छोटे और सीमान्त किसान जो कि भारतीय किसानों का एक बड़ा भाग है, की उपेक्षा की गई है । वे अधिकाधिक सार्वजनिक निवेश पर निर्भर करते हैं जो कि विगत वर्षों में निरन्तर घटता जा रहा है ।
4. नई कृषि नीति निजी क्षेत्र की सहभागिता को बढ़ावा देने के पक्ष में है जिसके अन्तर्गत संविदा खेती को प्रोत्साहन दिया जायेगा और भूमि किराये पर ली जायेगी । इस प्रकार के प्रयास कृषि क्षेत्र में अधिक श्रम को खपाने में असफल होंगे ।
5. नई कृषि नीति के अंतर्गत कृषि विकास के क्षेत्रों की घोषणा सरकार ने कर दी है लेकिन इसके क्रियान्वयन तन्त्र की कोई घोषणा नहीं की गई है । यह महसूस किया जा रहा है कि कृषि राज्य सरकार की सूची में है और राज्य सरकारों को ही इसकी क्रियान्वयन मशीनरी का निर्धारण करना होगा ।

यदि केन्द्र सरकार कृषि नीति को प्रभावी ढंग से लागू करना चाहती है तो केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच सहभागिता के आधार पर विभिन्न कार्यक्रम तैयार करने होगे । इनके अभाव में कोई भी नीति प्रभावी ढंग से लागू नहीं की जा सकेगी ।

1.6.2 औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

किसी भी अर्थव्यवस्था के समेकित एवं तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। औद्योगीकरण से उद्योगों का विकास ही नहीं होता है बल्कि इससे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों, जैसे- कृषि, व्यापार, विदेशी व्यापार, सेवा तथा सामाजिक क्षेत्र आदि का विकास भी संभव होता है । इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय, रोजगार के अवसर, प्रति व्यक्ति आय तथा लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि होती है । औद्योगिक विकास के मार्गदर्शक, नियमन एवं नियंत्रण के लिए औद्योगिक नीति आवश्यक है । औद्योगिक नीति सरकार की विचारधारा तथा सिद्धान्तों को प्रतिबिम्बित करती है ।

औद्योगिक नीति का अर्थ

औद्योगिक नीति सरकार द्वारा एक औपचारिक घोषणा है जिसके अन्तर्गत उद्योगों के लिए सामान्य नीति एवं कार्यक्रम जनता को स्पष्ट किये जाते है ।

औद्योगिक नीति के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्त्व

औद्योगिक नीति की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्यों का निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है -

1. **प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन -** औद्योगिक नीति देश के प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन करने में सहायक होती है । इससे साधनों की जानकारीं, उनके संग्रहण तथा उपयोग में सहायता मिलती है । इससे देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि संभव होती है ।
2. **औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि -** औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य देश के औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना है । इससे औद्योगिक विकास एवं तीव्र औद्योगीकरण को गति प्राप्त होती है ।

3. **आधुनिकीकरण -** औद्योगिक उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए औद्योगिक नीति आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देती है । आधुनिकीकरण से न्यूनतम लागत पर अत्यधिक उत्पादन संभव होता है ।
4. **सन्तुलित औद्योगिक विकास -** औद्योगिक नीति देश के सन्तुलित औद्योगिक विकास में सहायक होती है । अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करती है ।
5. **सन्तुलित क्षेत्रीय विकास -** देश के क्षेत्रीय विकास को सन्तुलित करने में औद्योगिक नीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । औद्योगिक नीति में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए विभिन्न रियायतों का प्रावधान किया है । इससे उद्यमी उस क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना कर उस क्षेत्र विशेष का सन्तुलित विकास करने को प्रोत्साहित होते है ।
6. **आधारभूत एवं उपभोक्ता उद्योगों में समन्वय -** किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आधारभूत तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना आवश्यक है। औद्योगिक नीति एक और आधारभूत एवं प्रमुख उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करती है तथा दूसरी ओर उपभोक्ता उद्योगों के विकास कर ध्यान देती है । आधारभूत उद्योगों की स्थापना देश के भावी विकास के लिए एक सुदृढ़ ढांचे की काम करती है ।
7. **लघु उद्योगों एवं बड़े उद्योगों के बीच समन्वय -** औद्योगिक नीति के माध्यम से लघु उद्योगों तथा बड़े उद्योगों के बीच समन्वय स्थापित करने में आसानी रहती है । इन दोनों प्रकार के उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्धा को रोक कर पूरकता का कार्य औद्योगिक नीति के प्रावधानों के माध्यम से किया जाता है । इसके अतिरिक्त लघु उद्योग क्षेत्रीय आवश्यकताओं व असमानताओं का भी ध्यान रखते है । क्षेत्रीय संसाधनों के विकास में लघु उद्योगों की वृहत्तर भूमिका है ।
8. **क्षेत्र निर्धारण -** औद्योगिक नीति निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बीच क्षेत्र निर्धारण का कार्य करती है । निजी क्षेत्र को औद्योगिक नीति के माध्यम से उचित दिशा निर्देश दिये जा सकते हैं ।
9. **मधुर औद्योगिक सम्बन्ध -** एक विस्तृत औद्योगिक नीति अपनाकर श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है । तीव्र औद्योगीकरण के लिए मधुर औद्योगिक सम्बन्धों का होना आवश्यक है ।
10. **विदेशी निवेश का उचित उपयोग -** विदेशी पूंजी एवं उद्यमियों को आकर्षित करने के लिए एक उचित औद्योगिक नीति का होना आवश्यक है । इससे देश का औद्योगिक विकास संभव होता है।

औद्योगिक नीति- 1991

हमारे देश में 24 जुलाई, 1991 की औद्योगिक नीति की घोषणा के साथ ही उदारीकरण का युग प्रारम्भ हो गया । उदारीकरण का यह युग पूरा हो गया है । सरकार ने उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये है । उदारीकरण की प्रमुख प्रवृत्तियां अग्रांकित हैं-

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के आरक्षण में कमी -** उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 8 कर दी गई तथा इसमें और कमी करके व 1993 में 6 कर दी गई । वर्तमान में 4 क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित है । वे हैं - सैन्य उत्पादन, आणविक शक्ति, रेल यातायात तथा खनिज पदार्थ । इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को अनुमति दी जा सकती है ।
2. **सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों में विनिवेशीकरण -** सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों में विनिवेश की नीति को स्वीकार किया है । निजी क्षेत्र की सहभागिता की अनुमति दी गई है । विनिवेश विभाग स्थापित करके इस नीति को प्रभावी ढंग से लागू किया जायेगा ।
3. **लाईसेंस से मुक्ति -** औद्योगिक नीति 1991 के अन्तर्गत 18 प्रकार के उद्योगों के लिए लाईसेंस आवश्यक थे । वर्तमान में 4 उद्योगों को ही लाईसेंस लेना पड़ता है ।
4. **प्रशासित मूल्य तन्त्र -** चार क्षेत्रों में प्रशासित मूल्य प्रणाली विद्यमान है । ये क्षेत्र हैं - पेट्रोलियम, उर्वरक, चीनी एवं दवाईयां । मार्च 2002 तक पेट्रोलियम क्षेत्र में इस नीति को समाप्त करने का विचार था । अप्रेल 2006 तक यूरिया पर नियंत्रण हटाने के लिए सरकार ने व्यय सुधार आयोग की सिफारिश स्वीकार कर ली है । चीनी एवं दवाइयों पर नियंत्रण हटाने का वर्ष 2001 -2002 के बजट में वित्तमंत्री ने आश्वासन दिया था।
5. **विदेशी संस्थागत निवेशक -** इस नीति के अन्तर्गत 2001-02 के बजट के अनुसार विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए निवेश की सीमा 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दी गई । यद्यपि यह सीमा अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग है । इसमें समय-समय पर सरकार परिवर्तन करती रहती है ।
6. **लघु पैमाने के उद्योगों में निवेश -** इस नीति के अन्तर्गत लघु पैमाने के उद्योगों में निवेश सीमा वर्ष 1999-2000 से 3 करोड़ रू. से घटाकर 1 करोड़ रूपये कर दी गई।
7. **कर्मचारियों की छंटनी-**बजट 2001-2002 के अनुसार जिन कम्पनियों में 1000 से कम कर्मचारी कार्यरत है उन्हें छंटनी करने पर प्रत्येक वर्ष 15 दिन की तनख्वाह के बराबर 45 दिन का मुआवजा देय होगा । ठेके पर श्रमिक लगाये जा सकेगें ।
8. **सार्वजनिक सेवाओं का निजीकरण -** सरकार ने सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण को प्रोत्साहन दिया है । बिजली आपूर्ति एवं पानी, बिजली उत्पादन, सड़क निर्माण एवं रख-रखाव, रेलवे प्लेटफार्म, अस्पताल, चूंगी वसूली, टेलीकॉम, बैंकिंग एवं बीमा सेवायें आदि में निजी क्षेत्र को अनुमति दे दी गई है ।

1.6.3 व्यापारिक नीति (Trade Policy)

अर्थ एवं परिभाषा

व्यापारिक नीति अथवा निर्यात-आयात नीति आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । प्रोफेसर हैबरलर ने व्यापारिक नीति की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है -

"व्यापार नीति अथवा वाणिज्यिक नीति में वे सभी उपाय सम्मिलित हैं जिनसे एक देश के बाह्य आर्थिक सम्बन्धों का नियमन किया जाता है । इन उपायों का उपयोग प्रादेशिक अथवा प्रान्तीय सरकार द्वारा किया जाता है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात एवं आयात में बाधा डालते है अथवा सहायता करते है ।''

इस प्रकार व्यापारिक नीति में वे सभी उपाय सम्मिलित हैं जिनमें आयात एवं निर्यात पर पाबन्दी लगाई जाती है, निर्यातकों एवं आयातकों को सहायता दी जाती है, किराये के अन्तर तथा वस्तुओं के पैकिंग तरीके में परिवर्तन करने में छूट दी जाती है ।

व्यापारिक नीति के प्रकार

किसी भी देश की व्यापारिक नीति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । वे निम्नांकित है-

1. स्वतंत्र व्यापार नीति
2. संरक्षणवादी व्यापार नीति-इस नीति के अन्तर्गत आयातों पर प्रतिबंध होते है तथा स्वतंत्र व्यापार नीति की विपरीत स्थिति पायी जाती है ।

(1) स्वतंत्र व्यापार नीति

यह वह नीति है जिसके अन्तर्गत सरकार आयातों तथा निर्यातों पर किसी प्रकार के प्रतिबंध नहीं लगाती है, अर्थात् यह न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप की नीति है । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सैद्धान्तिक विचार के अनुसार विश्व के व्यापार में अधिक वृद्धि तभी संभव है जब निर्यातों एवं आयातों पर किसी भी प्रकार के प्रतिबंध नहीं लगाये जायें । लेकिन ऐसा कभी भी नहीं हुआ कि सभी देशों के बीच व्यापार पूर्णत: स्वतंत्र रहा हो ।

विदेशी व्यापार नीति, 2004-2009 (Exim Policy 2004-09)

भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री कमल नाथ ने पांच वर्षीय विदेशी व्यापार नीति (2004-09) की घोषणा 31 अगस्त 2004 को की थी ।

इस नीति का उद्देश्य विश्व वस्तु व्यापार में भारत के प्रतिशत को दुगुना करना है । 2003 में यह विश्व व्यापार का केवल 0.7 प्रतिशत था जो 2009 में बढ़कर 1.5 प्रतिशत हो जायेगा । भारत की निर्यातित वस्तुओं का मूल्य 61.8 बिलियन डालर था जो वर्ष 2003-04 में विश्व व्यापार का केवल 0.7 प्रतिशत था । यदि इसे दुगुना किया जाता है तो 2009 में यह 195 बिलियन डालर होगा जो कि 10 प्रतिशत वार्षिक की मिश्रित दर की वृद्धि होगी । भारत के निर्यातों की वार्षिक वृद्धि दर कम से कम 26 प्रतिशत होनी चाहिए ।

उद्देश्य

विदेशी व्यापार नीति के दो प्रमुख उद्देश्य हैं -

1. भारत का निर्यात व्यापार बढ़ना चाहिए तथा भारत का व्यापार विश्व व्यापार का वर्ष 2009 में वर्तमान 0.7 प्रतिशत से बढ़कर 1.5 प्रतिशत हो जाये ।
2. आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण होते हुए अर्द्ध शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का सृजन किया जायेगा ।

नीति की प्रमुख विशेषताएं

विदेशी व्यापार नीति 2004-09 की निम्नांकित विशेषताएं हैं -

1. **विशेष ध्यान अभिप्रेरणाओं -** अर्द्ध शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार पैदा करने वाले निर्यात क्षेत्रों का पता लगाया जाना आवश्यक है । इनमें कृषि, हस्तकला, हैण्डलूम, हीरे और जवाहरात, चमड़ा तथा जूते आदि प्रमुख है । "निर्यात श्रेष्ठता कस्बे" की सीमा 1000 करोड़ रूपये से घटाकर250 करोड़ रूपये कर दी गई है ।
2. **कृषि का पैकेज -** विशेष कृषि उपज योजना शुरू की गई है जिसमें फलों, सब्जियों, फूलों, छोटे वन उत्पादों तथा इनके मूल्य संवर्द्धित उपजों को शामिल किया गया है ।
3. **हैण्डलूम तथा हस्त कलायें -** हैण्डलूम तथा हस्तकलाओं के बिना शुल्क आयात को निर्यातों के मूल्य का 5 प्रतिशत बढ़ा दिया है ।
4. **हीरे और जवाहरात -** 18 कैरेट तथा इससे अधिक का सोना आयात करने की छूट है ।
5. **चमड़ा एवं जूते -** चमड़ा क्षेत्र के लिए विशेष मदों का बिना कर के आयात किया जा सकेगा और यह निर्यात के मूल्य का 5 प्रतिशत होगा ।
6. **निर्यात प्रोत्साहन योजना -** निर्यातों की वृद्धि करने के लिए एक योजना शुरू की गई । निर्यातों में 20,25 तथा 100 प्रतिशत वृद्धि करने पर निःशुल्क साख 5,10 तथा 15 प्रतिशत के आधार पर प्राप्त होगा ।
7. **सेवा निर्यात -** व्यक्तिगत आधार पर अपनी सेवाओं से विदेशी विनियम 10 लाख बढ़ती है तो निःशुल्क साख विदेशी विनियम का 10 प्रतिशत प्राप्त होगा ।
8. **निर्यात प्रोत्साहन पूंजीगत वस्तुओं के अंतर्गत निःशुल्क आयात -** इस योजना के अंतर्गत बिना कर के आयातों की अनुमति दी गई है । इसके अंतर्गत आयातित पूंजीगत वस्तुऐं किसी भी कृषि निर्यात क्षेत्र में लगाई जा सकती है ।
9. **प्रक्रियों का सरलीकरण एवं विवेकीकरण उपाय -** सभी निर्यातक जिनका धन्धा 5 करोड़ रूपये से अधिक है और जिनका पिछला रिकार्ड अच्छा है उन्हें किसी भी योजना के अन्तर्गत बैंक गारण्टी देने की आवश्यकता नहीं है ।

निष्कर्ष - इस प्रकार इस नीति के दो उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि तथा अर्द्ध शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना है जिसके परिणामस्वरूप दीर्घकाल में भुगतान संतुलन की असाम्यता को दूर करने में मदद मिल सकेगी ।

1.6.4 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

सरकारी आय, सरकारी व्यय, सहकारी ऋण एवं वित्तीय प्रशासन तथा नियंत्रण सम्बन्धी क्रियाओं का सम्बन्ध राजकोषीय नीति से होता है । वह सरकारी नीति जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा वित्तीय प्रशासन का अध्ययन किया जाता है, राजकोषीय नीति कहलाती है।

प्रो. उर्शुला हिक्स के अनुसार, "आर्थिक नीति के उद्देश्य की पूर्ति हेतु सार्वजनिक वित्त के विभिन्न तत्वों को सामूहिक रूप से संचालन करने से सम्बन्ध रखने वाली नीति राजकोषीय नीति है ।

इस प्रकार राजकोषीय नीति सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण एवं वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी क्रियाओं का संचालन करती है जिससे कि राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर अनुकूल प्रभाव पड़े । इससे आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति होती है ।

राजकोषीय नीति के घटक

राजकोषीय नीति का उद्देश्य घाटे के वित्त प्रबन्धन से उत्पन्न स्फीतिकारी दबावों पर नियंत्रण करके राजकोषीय सन्तुलन स्थापित करना है । सार्वजनिक ऋण एवं अनुदान के बढ़ते भार को कम करना आवश्यक है । सरकारी व्यय के माध्यम से आधारभूत संरचना तैयार करके, मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके रोजगार, उत्पादन तथा आय में वृद्धि करना है । इसके लिए राजकोषीय नीति के विभिन्न घटकों का उपयोग किया जाता है । ये राजकोषीय घटक निम्नांकित है -

1. **सार्वजनिक आय -** सार्वजनिक आय का प्रमुख स्त्रोत करारोपण है । यह देश की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि यह आर्थिक विकास का आधार है । करारोपण से न केवल आय ही प्राप्त होती है बल्कि इससे सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति भी होती है । शराब पर लगाये गये उत्पादन कर से न केवल आय ही प्राप्त होती है बल्कि इससे विलासिता उपभोग पर रोक लगती है । करारोपण नीति प्रगतिशील तथा उत्पादक होनी चाहिए । इससे पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि होनी चाहिए जो कर देय क्षमता पर आधारित हो ।
2. **सार्वजनिक व्यय -** सार्वजनिक व्यय की संरचना ऐसी हो कि देश में आधारभूत संरचना तैयार हो सके । सामाजिक उपरिव्यय जैसे शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, अनुसंधान एवं विकास, मानव संसाधन नियोजन, सफाई तथा पीने के पानी आदि पर व्यय महत्त्वपूर्ण होता है । यह व्यय करारोपण के माध्यम से जुटाया जा सकता है । निर्धन वर्ग को अनुदान देकर राहत पहुंचाई जा सकती है और उपेक्षित क्षेत्र पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है । अत: एक अच्छे सार्वजनिक व्यय का आधार समता का सिद्धान्त होना चाहिए ।
3. **सार्वजनिक ऋण -** राजकोषीय नीति के अन्य घटकों में सार्वजनिक ऋण भी है । सार्वजनिक ऋण आन्तरिक तथा बाह्म स्त्रोतों से जुटाया जाता है । आन्तरिक ऋण देश में ही विभिन्न स्त्रोतों से लिया जाता है जबकि बाह्म ऋण सरकारों, निजी निवेशकर्ताओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, जैसे- विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक आदि से लिया जाता है । विकासशील देशों में पूंजी निर्माण में वृद्धि करने हेतु बड़ी मात्रा में सार्वजनिक ऋण जुटाया जाता है । यदि सार्वजनिक ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यो में किया जाता है तो इससे रोजगार के अवसरों, पूंजी निर्माण की दर, आय तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है । यदि इसका उपयोग अनुत्पादक कार्यो में किया जाता है तो स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होते हैं और सार्वजनिक ऋण भार में वृद्धि होती है । यदि ऋण से रोजगार, उत्पादन तथा आय में वृद्धि होती है तो यह निर्धनता का उन्मूलन कर सकेगा ।

4. **बजटीय नीति -** बजटीय नीति तीन प्रकार की हो सकती है । वह है -
    1. घाटे का बजट
    2. आधिक्य का बजट
    3. सन्तुलित बजट

आधिक्य का बजट स्फीतिकारी दबावों की स्थिति में बनाया जाता है जबकि मंदीकाल में घाटे का बजट बनाया जाता है जिससे कि देश की अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास हो सके । घाटे का बजट प्रो. **फिन्डले शिराज़** के अनुसार एक फिसलन वाले रास्ते के समान है जिसका अधिक उपयोग नहीं किया जाना चाहिए । अत: घाटे के बजट को देश की परिस्थितियों के अनुसार अपनाना होगा । अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में विकासात्मक वित्त के रूप में इसे अपनाया गया है ।

सुझाव

भारत में राजकोषीय नीति को प्रभावी बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं -

1. राजकोषीय घाटे में कमी की जानी चाहिए तथा यह सकल घरेलू उत्पाद की प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए ।
2. राजस्व घाटे को घटाकर शून्य करना चाहिए ।
3. बढ़ते हुए अनुदान के भार में कटौती की जानी चाहिए ।
4. प्रत्यक्ष करों के अनुपात में बढ़ोत्तरी की जाये ।
5. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेशीकरण तथा निजीकरण तुरन्त प्रभाव से करना चाहिए।
6. पेशेवर प्रबन्धक नियुक्त करके सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रबन्ध में सुधार करना चाहिए ।
7. केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच अच्छा समन्वय स्थापित करना चाहिए जिससे कि राजकोषीय अनुशासन बनाये रखा जा सके ।

1.6.5 मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

मौद्रिक नीति का तात्पर्य एक ऐसी नीति से है जिसके द्वारा मुद्रा के मूल्य में स्थायित्व हेतु मुद्रा एवं साख की पूर्ति को नियमित एवं नियंत्रित किया जाता है । दूसरे शब्दों में, किसी देश की सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में किसी विशेष आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए (जैसे मूल्य स्थिरता, विनिमय दर में स्थिरता, पूर्ण रोजगार, आर्थिक विकास) संचालन में मुद्रा एवं साख की मात्रा के प्रसार तथा संकुचन के प्रबन्ध को मौद्रिक नीति कहा जाता है । विकासशील देशों में बेरोजगारी, आर्थिक अनिश्चितता, मूल्य वृद्धि, निर्धनता, बाजार की अपूर्णता, विनियोग एवं बचत की कमी, आर्थिक उच्चावचन एवं अन्य अनेक विसंगतियां पायी जाती है । इन देशों में अन्य उपायों के साथ मौद्रिक नीति इन समस्याओं को हल करने में सहयोग देती है। इसके लिए निम्न मौद्रिक उपकरणों का सहारा लिया जाता है :

मौद्रिक उपकरण

मौद्रिक उपकरण वे होते हैं जो देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा व साख की मात्रा को प्रभावित करते है । मौद्रिक उपकरणों के माध्यम से आर्थिक उच्चावचनों को अपेक्षित दिशा देने में मदद

मिलती है । इन उपकरणों में वे सभी प्रणालियां सम्मिलित हैं जो मुद्रा के नियमन व नियंत्रण में प्रयुक्त की जाती है । मौद्रिक उपकरणों का प्रयोग देश के केन्द्रीय बैंक की सहायता से किया जाता है । ये उपकरण किसी विशेष आर्थिक उद्देश्य के लिए जैसे विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखना, मुद्रा एवं साख की मात्रा को नियंत्रित करना, मूल्य स्तर में स्थायित्व, पूर्ण रोजगार, बैकिंग विकास, स्थायित्व के साथ आर्थिक विकास, उचित ब्याज दर, पूंजी निर्माण व विनियोग को प्रोत्साहन आदि के लिए प्रयुक्त किये जाते है । प्रमुख मौद्रिक उपकरण निम्नलिखित हैं -

(i) **साख नियंत्रण -** साख नियंत्रण से आशय साख का सृजन करने वाली मौद्रिक एवं वित्तीय संस्थाओं की साख सृजन क्षमता को इस प्रकार नियंत्रित करने से है जिससे साख की कुल पूर्ति को उसकी कुल मांग के अनुरूप समायोजित किया जा सके, तथा साख का वांछित दिशाओं में प्रयोग किया जा सके । साख नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य आर्थिक उच्चावनों को नियंत्रित कर आर्थिक नियोजन को सफल बनाना है । केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण द्वारा सरकार की आर्थिक नीतियों के अनुसार मौद्रिक व्यवस्था का संचालन करती है । केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर नियंत्रण के अनेक तरीके अपनाता है । साख नियंत्रण की निम्न दो रीतियां है -

(a) **परिणामात्मक रीतियां -** इसमें उन रीतियों को सम्मिलित किया जाता है जो साख की मात्रा व लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है जैसे बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएं, रेपो रेट, प्रतिरेपो रेपो रेट, नकद कोषानुपात में परिवर्तन, तरल कोषानुपात में परिवर्तन आदि ।

(b) **गुणात्मक रीतियां -** इसमें उन रीतियों को सम्मिलित किया जाता है जो साख के प्रयोग व व्यवहार को नियंत्रित करती है । इनमें चयनित साख नियंत्रण, साख का सम भाजन, प्रचार, नैतिक अनुनय, प्रत्यक्ष कार्यवाही आदि सम्मिलित है ।

(ii) **विनिमय दर -** वह दर जिस पर एक देश की कैसी दूसरे देश की कैसी में बदली जाती है, विनिमय दर कहलाती है । देश की मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखना भी है । विनिमय दर में स्थायित्व का तात्पर्य यह है कि देश की मुद्रा का बाह्य मूल्य स्थिर बना रहे । विनिमय दर में स्थिरता से उद्योग, व्यापार, रोजगार आदि का विकास होता है । विनिमय दर में अस्थिरता एवं अनिश्चितता विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है । विनिमय दर में स्थिरता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा मिलता है ।

(iii) **ब्याज दर -** ब्याज दर देश में बचत, विनियोग एवं पूंजी निर्माण को प्रभावित करती है । मौद्रिक उपकरण के रूप में सरकार ब्याज दर के माध्यम से बचत व विनियोग की दिशा निर्धारित करती है । यदि किसी क्षेत्र विशेष में विनियोग बढ़ाना होता है तो सरकार सस्ती व्याज दर पर पर्याप्त ऋण उपलब्ध करा देती है जिससे उस क्षेत्र में विनियोग बढ़ जाता है । जिन जमाओं पर ऊंची ब्याज दर निर्धारित की जाती है उनमें अधिक धन जमा होने लगता है । इस प्रकार सरकार विभेदात्मक ब्याज दरों के माध्यम से विनियोग व निक्षेप की दिशा निर्धारित करती है । यदि सरकार ब्याज दर घटा दे

तो बचत हतोत्साहित होती है किन्तु ऋणों को प्रोत्साहन मिलता है और ऊंची ब्याज दर पर बचत बढ़ती है किन्तु ऋण हतोत्साहित होते हैं ।

(iv) **बैंकिंग विकास -** बैंक आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन के महत्त्वपूर्ण माध्यम है । आज बैंक केवल ऋण देने वाली संस्थाएं ही नहीं हैं, बल्कि ये बचत को प्रोत्साहित करने, तकनीकी सलाह देने आदि के अतिरिक्त एक मित्र एवं मार्गदर्शक के रूप में भी अपनी भूमिका निभा रहे हैं । ये सरकारी नीतियों एवं योजनाओं को लागू करने में भी सहयोग दे रहे है । बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद सरकार ही रिजर्व बैंक के माध्यम से इनकी ऋण, साख एवं विस्तार नीति निर्धारित करती है । इनके माध्यम से सरकार अपनी योजनाओं को लागू करती है ।

(v) **बचतों को प्रोत्साहन -** मौद्रिक उपकरणों के माध्यम से सरकार बचतों को प्रोत्साहित करती है । बैंकिंग विकास के माध्यम से समाज की अतिरिक्त आय को बचत एवं विनियोग के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में बैकिंग सुविधाओं का विकास कर छोटी-छोटी बातों को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है । इससे सरकार को विकास के लिए पर्याप्त वित्त मिल जाता है ।

1.7 सारांश

आर्थिक नीति के विभिन्न आयामों में कृषि नीति, उद्योग नीति, व्यापारिक नीति, राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति आदि महत्त्वपूर्ण है वास्तव में सरकार इन विभिन्न नीतियों के माध्यम से आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करती है इस प्रकार विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनायी जाने वाली विस्तृत नीति को ही आर्थिक नीति कहा जाता है । आर्थिक नीति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न संघटकों का निर्माण करते समय समग्र उद्देश्य को सामने रखा जाये ताकि विभिन्न घटको में प्रतिस्पर्धा एवं टकराव न होकर समन्वय रह सके । नीतियों के निर्माण के साथ इनका ईमानदारी एवं निष्ठा एवं पालन करना और समय- समय पर मूल्यांकन करना भी आवश्यक है ।

1.8 शब्दावली

- **आर्थिक नीति -** आर्थिक नीति का तात्पर्य किसी देश की सरकार द्वारा अपनायी गई उस सुविचारित नीति से है जो अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध, नियमन एवं नियंत्रण को सरल बनाती है ताकि उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके ।
- **विनिमय दर -** वह दर जिस पर देश की मुद्रा हमारे देश की मुद्रा में बदली जाती है ।
- **राजकोषीय नीति -** राजकोषीय नीति से तात्पर्य बजट के माध्यम से करारोपण को मौद्रिक नीति के सहायक के रूप में प्रयुक्त करना है ।

1.9 स्व-परख प्रश्न

1. एक देश की आर्थिक नीति का अर्थ बताते हुए इसके उद्देश्य एवं आयामों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत में कृषि नीति 2000 का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए ।

3. भारत की वर्तमान औद्योगिक नीति की विवेचना कीजिए ।
4. व्यापारिक नीति को परिभाषित कीजिए । भारत सरकार की निर्यात आयात नीति (2004-09) की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1. जाट, वशिष्ठ, भिण्डा, दीपा "भारत में आर्थिक पर्यावरण", अजमेर बुक कम्पनी, जयपुर
2. माथुर, यादव, कटेवा, मिश्रा - "भारत में आर्थिक पर्यावरण", आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर
3. बी.एल. ओझा - "भारत में आर्थिक पर्यावरण", रमेश बुक डिपो, जयपुर
4. सी.एम. चौधरी - "भारत में आर्थिक पर्यावरण" - मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर ।
5. गुप्ता, स्वामी - "भारत में आर्थिक पर्यावरण" - रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

इकाई-2 : भारत में ग्रामीण विकास (Rural Development in India)

इकाई की रूपरेखा :

2.1 परिचय

2.2 ग्रामीण विकास क्या है?

2.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा का उद्‌गम एवं विकास

2.4 ग्रामीण विकास की विचारधारा

2.5 परिभाषाएँ

2.6 ग्रामीण विकास की विशेषताएँ

2.7 ग्रामीण विकास के घटक

2.8 ग्रामीण विकास का उद्देश्य

2.9 ग्रामीण विकास का महत्त्व

2.10 ग्रामीण विकास के कार्यक्रम

2.11 सारांश

2.12 शब्दावली

2.13 स्व- परख प्रश्न

2.14 संदर्भ ग्रंथ

2.1 परिचय (Introduction)

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है । महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था कि भारत की वास्तविक प्रगति का तात्पर्य शहरी औद्‌योगिक केन्द्रों के विकास से नहीं, बल्कि मुख्य रूप से गाँवों के विकास से है । ग्रामीण विकास ही राष्ट्रीय विकास का केन्द्र हैं यह विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है । **थिरुवलूवर** ने कहा कि "मिट्टी की जुताई करने वाले ही अधिकार के साथ जीते हैं, श्रृंखला के शेष लोग उनके आश्रय की रोटी खाते हैं ।" हम अपने चारों ओर बड़े उद्‌योगों तथा सूचना-प्रौद्‌योगिकी केंद्रों से लैस शहरों को प्रगति करते हुए देखते है फिर भी ग्रामीण विकास को ही इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया जाता है? इसका उत्तर है कि आज भी भारत की दो-तिहाई जनसंख्या कृषि पर आश्रित है, जिसकी उत्पादकता इतनी कम है कि उन सबका निर्वाह भी नहीं हो पाता । इसी कारण से देश की एक-तिहाई जनता अभी भी घोर निर्धनता में रहती है । यदि हम भारत की वास्तविक उन्नति चाहते हैं, तो हमें विकसित ग्रामीण भारत का निर्माण करना होगा ।

ग्रामीणं विकास से आशय ग्रामीण जन के जीवन स्तर में सुधार लाने (आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक आदि) से है । ग्रामीण विकास को ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली 28 प्रतिशत जनसंख्या जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है के जीवन स्तर को ऊपर उठाने तथा उसके विकास की प्रक्रिया को आत्म- पोषित बनाने से हैं । ग्रामीण विकास के अन्तर्गत

केन्द्र एवं राज्य प्रवर्तित कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जो ग्रामीण जीवन के पहलुओं से जुड़े होते हैं जैसे-कृषि एवं इसकी सहायक क्रियाएँ, सिंचाई, यातायात, शिक्षा, चिकित्सा, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, आवास, प्रशिक्षण, विपणन, सामाजिक कल्याण आदि ।

2.2 ग्रामीण विकास क्या है? (What is Rural Development?)

'ग्रामीण विकास' एक व्यापक शब्द है । यह मूलत: ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उन घटकों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करने पर बल देता है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास में पिछड़ गए हैं । भारत के विकास के लिए जिन क्षेत्रों में नई और सार्थक पहल करने की आवश्यकता बनी हुई है, वे इस प्रकार हैं, मानव संसाधनों का विकास जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित है:

- साक्षरता (विशेषकर महिला साक्षरता) शिक्षा और कौशल का विकास ।
- स्वास्थ्य, जिसमें स्वच्छता और जन-स्वास्थ्य दोनों शामिल हैं ।
- भूमि-सुधार ।
- प्रत्येक क्षेत्र के उत्पादक संसाधनों का विकास ।
- आधारभूत संरचना का विकास जैसे-बिजली, सिंचाई, साख (ऋण), विपणन, परिवहन सुविधाएँ-ग्रामीण सड़कें बनाना, कृषि अनुसंधान विस्तार और सूचना प्रसार की सुविधाएँ।
- निर्धनता निवारण और समाज के कमजोर वर्गों की जीवन दशाओं में महत्त्वपूर्ण सुधार के विशेष उपाय, जिसमें उत्पादक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ।

2.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा का उद्गम एवं विकास (Origin and Development of Rural Development Concept)

ग्रामीण विकास की अवधारणा को एशिया के विकासशील देशों, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका आदि राष्ट्रों की राष्ट्रीय नीति में सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई । विकसित राष्ट्रों द्वारा भी ग्रामीण विकास की आवश्यकता के महत्त्व को स्वीकार करते हुए विकासशील राष्ट्रों में निर्धन व्यक्तियों को आधारभूत आवश्यकताएँ उपलब्ध करवाने की दिशा में अपने प्रयासों को निर्देशित किया है । विश्व बैंक (IBRD) द्वारा अत्यन्त विशिष्ट रूप में विकासशील राष्ट्रों में ग्रामीण निर्धनों की उत्पादकता तथा उनके कल्याण के सुधार की दिशा में अपने प्रयासों को प्रतिबद्ध किया है ।

2.4 ग्रामीण विकास की विचारधारा (Concept of Rural Development)

ग्रामीण विकास की विचारधारा बहुमुखी रूप से प्रतिबिम्बित हुई है । ग्रामीण विकास की विचारधारा को व्यक्त किये जाने के सम्बन्ध में विभिन्न विचार विद्यमान है । वर्तमान समय में ग्रामीण विकास की विचारधारा एक प्रमुख मुद्दा बन गया है । यद्यपि ग्रामीण विकास को

प्रोत्साहित करने की दृष्टि से अनेक योजनाओं को प्रारम्भ किया गया है, किन्तु ग्रामीण विकास की विचारधारा अब भी अनिश्चित है । ग्रामीण विकास की विचारधारा का क्या अभिप्राय है? **इस विचारधारा में दो शब्द सम्मिलित है-ग्रामीण तथा विकास** । इन शब्दों को विभिन्न प्रकार से तथा विभिन्न विस्तृत सन्दर्भों में परिभाषित किया गया हैं :

एक विचारधारा के रूप में (As a Concept) : ग्रामीण विकास का आशय ग्रामीण जनसंख्या की जीवन शैली में बेहतरी की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र के चहुमुखी विकास से है । इस अर्थ में ग्रामीण विकास सामान्य अर्थ में एक बहु आयामी विचारधारा है । विशुद्ध आर्थिक अर्थ में ग्रामीण विकास की विचारधारा के अन्तर्गत कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओं के विकास के साथ सामाजिक सुविधाओं के विकास के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों एवं मानव संसाधनों का विकास सम्मिलित है ।

एक घटना के रूप में (as a Phenomenon) : ग्रामीण विकास की विचारधारा ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न भौतिक, पर्यावरणीय, प्रौद्योगिकीय, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा संस्थागत घटकों के मध्य अंतःक्रिया का परिणाम है ।

एक व्यूह रचना के रूप में (As a Strategy) : ग्रामीण विकास की विचारधारा ग्रामीण जनसंख्या के सामाजिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में वांछित सकारात्मक परिवर्तन लाने का एक मार्ग अथवा परिचालानात्मक अभिकल्पना है ।

ग्रामीण विकास की व्यूह रचना जो ग्रामीण जनसंख्या के जीवन स्तर तथा पर्यावरण को इस प्रकार के सुधार से प्राप्त होने वाले लाभों के विस्तृत वितरण के साथ क्रमोन्नत करने हेतु ग्रामीण जनसंख्या की क्षमता में वृद्धि हेतु मार्ग प्रशस्त करती है ।

ग्रामीण विकास की अभिव्यक्ति, ग्रामीण समुदाय में परिवर्तन दर्शाने की एक प्रक्रिया है, जिसमें सम्पूर्णत: केवल वे ही प्रयास सम्मिलित नहीं होते हैं जो सरकारी स्तर पर किये जाते है । यद्यपि जैसा कि **जॉन हैरिश** द्वारा उल्लेख किया गया है कि ग्रामीण विकास का एक अन्य अर्थ विकास साहित्य में सामान्यत: प्रयुक्त किया जाता है ।

ग्रामीण विकास अर्द्धविकसित राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप का एक विशिष्ट तरीका है । यह कृषि विकास की तुलना में अधिक विशिष्ट तथा विस्तृत प्रक्रिया है । **विश्व बैंक परिदृश्य** के अनुसार, ग्रामीण विकास की विचारधारा निर्धनता तथा असमानता पर प्रकाश डालती है तथा इस प्रकार इससे "लोगों के एक विशिष्ट वर्ग, ग्रामीण निर्धन, के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में एक व्यूहरचना की परिकल्पना समाविष्ट होती है ।"

ग्रामीण विकास एक बहु आयामी विचारधारा है जो ग्रामीण निर्धनों की जीवन शैली में सुधार की दृष्टि से सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र के विकास के आदर्श को लक्षणार्थ करती है । इस अर्थ में ग्रामीण विकास की विचारधारा एक बहु आयामी तथा विस्तृत विचारधारा जो कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओं, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग एवं दस्तकारी, सामाजिक आर्थिक, आधारभूत ढाँचा, सामुदायिक सेवायें तथा सुविधाएँ तथा इन सबसे अधिक ग्रामीण अंचल के मानव संसाधनों के विकास में सफलता प्राप्त करने से सम्बन्धित है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ग्रामीण विकास की प्रमुख विषय-वस्तु की विचारधारा को निम्न प्रकार सारांश रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

(1) ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि करना ।

(2) सामाजिक-आर्थिक समानता के लक्ष्य की प्राप्ति करना ।

(3) आर्थिक एवं सामाजिक विकास के मध्य उपयुक्त संतुलन स्थापित करना ।

(4) पारिस्थितिकीय पर्यावरण में सुधार करना जिससे यह वृद्धि तथा खुशहाली में प्रभावी सिद्ध हो सके ।

(5) विकास की प्रक्रिया में एक विस्तृत आधार पर समुदाय प्रतिनिधित्व विकसित करना ।

ग्रामीण विकास की विचारधारा की तरफ विगत वर्षा के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय निकायों तथा एशियन राष्ट्रों का भी ध्यानाकर्षण हुआ है । स्थानीय उतार-चढ़ाव तथा प्रशासनिक अथवा वित्तीय सीमाओं के कारण अथक प्रयासों के बावजूद ग्रामीण विकास के किन्हीं सार्वभौमिक उद्देश्यों की रूपरेखा तैयार नहीं की जा सकी है । उदाहरण के लिए एसकेप द्वारा सदस्य राष्ट्रों के साथ परामर्श तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा यूनाइटेड राष्ट्रों की विशिष्ट ऐजेन्सियों की सहभागिता में ग्रामीण विकास के निम्नलिखित उद्देश्य प्रस्तुत किये गये :

(अ) सम्पूर्ण ग्रामीण श्रम शक्ति को आर्थिक गतिविधियों की मुख्य धारा के साथ जोड़ना ।

(ब) ग्रामीण लोगों में सृजनात्मक शक्ति चरितार्थ करना ।

(स) देश में ग्रामीण जनसंख्या का गाँवों से शहरों की तरफ पलायन रोकना ।

(द) विकास प्रक्रिया में युवाओं तथा व्यक्तियों एवं कस्बों की अधिक से अधिक सहभागिता प्रोत्साहित करना ।

(य) ग्रामीण बाहुल के जीवन स्तर तथा उनकी जीवन शैली में सुधार करना विशेष रूप से पर्यावरण का विकास के साथ एकीकरण के द्वारा ।

(र) ग्रामीण जनसंख्या इसके आर्थिक तथा सामाजिक उत्पादकता तथा कार्य सन्तुष्टि के सन्दर्भ में बहुमुखी विकास को आश्वस्त करना ।

2.5 परिभाषाएँ (Definitions)

ग्रामीण विकास एक मिश्रित घटना है जिसके अन्तर्गत एक गतिविधियों का विस्तृत परिदृश्य सम्मिलित होता है । ये गतिविधियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों के जीवन स्तर में उत्कर्षता प्राप्ति के दृष्टिकोण से सम्पन्न की जाती है । ग्रामीण विकास को विभिन्न विषय विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है । ग्रामीण विकास की कतिपय परिभाषाएँ निम्नलिखित है :

विश्व बैंक (World Bank) के अनुसार, "ग्रामीण विकास एक विशिष्ट वर्ग-ग्रामीण निर्धन जिसमें लघु तथा सीमान्त कृषक, काश्तकार, तथा भूमिविहिन सम्मिलित होते है, की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में सुधार कि एक व्यूह रचना है ।"

राबर्ट चैम्बर (Robert Chamber) के अनुसार, "ग्रामीण विकास एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों निर्धन ग्रामीण महिलायें तथा पुरूषों को योग्य बनाने की एक व्यूह रचना है । जिससे वे स्वयं तथा अपने बच्चों के लिए वह प्राप्त कर सके जिसकी उन्हें अत्यधिक आवश्यकता है । इसके अन्तर्गत सहायता की एक प्रक्रिया सम्मिलित होती है जिससे ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने

वाले निर्धनों में अत्यन्त निर्धन वर्ग को जीवनयापन हेतु ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संचालन का अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके ।"

एन्समिन्जर (Ensminger) के अनुसार, "ग्रामीण विकास परम्परावादी उन्मुख ग्रामीण संस्कृति का स्वीकार्य तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित दिशा में रूपान्तरण की प्रक्रिया को स्वयं में सम्मिलित करना चाहता है ।"

ग्रामीण विकास की विचारधारा को एक विधिवत् संगठित प्रयास के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों की बहुत लम्बे समय तक उच्च आय का स्तर बनाये रखने के रूप परिलक्षित होता है । इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वे सभी सर्वमान्य मानव प्रयास सम्मिलित होते हैं जो प्रमुख रूप से निम्न दिशाओं में निर्देशित होते हैं :

(अ) वर्तमान गतिविधियों में वृद्धि ।

(ब) पिछड़ेपन के कारणों को उजागर करने में ।

(स) विकास की सम्भावनाओं का पता लगाने में ।

(द) कार्यक्रम, व्यूह रचना तथा क्रिया को मूर्त रूप प्रदान करने में ।

(य) आधारभूत सुविधाओं पर आधारित कार्यक्रमों को सरल बनाना ।

भारतीय संदर्भ में ग्रामीण विकास को स्थानीय संसाधनों-भौतिक, जैविक तथा मानवीय का अति उत्तम विकास तथा प्रयोग करते हुए ग्रामीण विकास का जहाँ आवश्यक हो उनका संरक्षण करते हुए क्षेत्र तथा व्यक्तियों का समन्वित विकास करने से है । अन्तिम उद्देश्य ग्रामीण निर्धन तथा ग्रामीण निर्बल की जीवन शैली में सुधीर लाने की दृष्टि से चारों दिशाओं में सेवाओं का पैकेज प्रदान कर कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों, ग्रामीण उद्योग के क्षेत्र में वरन् स्वास्थ्य तथा पोषाहार, आवास, पीने का पानी तथा साक्षरता सम्बन्धी आवश्यक सामाजिक आधारभूत ढाँचे तथा सेवा संस्थागत संगठनात्मक तथा वैचारिक परिवर्तन लाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है ।

भारत में ग्रामीण विकास की विचारधारा का प्रथमत: प्रयोग नियोजन निर्माताओं द्वारा किया गया । यह वांछित परिणाम प्राप्त करने की दृष्टि से उपयुक्त व्यूहरचना द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्विती के नियोजन की एक प्रक्रिया है । यह ग्रामीण क्षेत्रों में जीविकोपार्जन चाहने वाले ग्रामीण निर्धनों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में सुधार लाने की एक व्यूहरचना लक्षणार्थ करती है । इस सम्बन्ध में केवल यही आवश्यक नहीं है कि कृषि उत्पादकता तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पूर्ण आर्थिक संवृद्धि की दर में वृद्धि हो वरन् यह भी महत्त्वपूर्ण है कि निर्धन तथा निर्बल समुदाय का हिस्सा विकास के लाभों में आश्वस्त हो ।

अत: ग्रामीण विकास का अभिप्राय विशिष्ट कार्यात्मक तथा अल्पकालिक पहलुओं के एकीकरण द्वारा ग्रामीण संसाधनों की सम्भावनाओं को विकसित करने तथा जीवन परिस्थितियों में सुधार द्वारा आधारभूत सुविधायें प्रदान करने, उत्पादकता तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने से सम्बन्धित प्रक्रिया है ।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय आर्थिक सोपान पर एक कदम से आगामी कदम की तरफ बढ़ता है जिससे उसकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में वृद्धि होती है। ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए लक्ष्य समूह ग्रामीण निर्धन को चिन्हित किया जाता है ।

ग्रामीण विकास की उपर्युक्त वर्णित समस्त परिभाषाओं का, इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि ग्रामीण विकास का तत्काल उद्देश्य ग्रामीण निर्धनता का उपचार है । ये व्यक्ति प्राय: अनभिज्ञ, आधुनिक युग के बहुत कम सम्पर्क में, राजनीतिक दृष्टि से कम प्रभावी, नाममात्र की भूमि तथा आरामदायक जीवन हेतु कम पूँजी के स्वामी, स्वयं की सहायता हेतु कम योग्य तथा सरकारी सहायता प्राप्ति हेतु अत्यन्त कठोर होते है, उनके पक्ष में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया आत्मनिर्भरता आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले निम्न आय वर्ग को श्रेष्ठ जीवन यापन हेतु अवसर प्रदान करने हेतु संचालित होती है ।

2.6 ग्रामीण विकास की विशेषताएँ (Characteristics of Rural Development)

1. वित्तीय संसाधनों को एकत्रित कर उनका इस प्रकार से वितरण करना जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता एवं कल्याणकारी योजनाओं के बीच संतुलन स्थापित हो सके ।
2. निम्न आय वर्गों (छोटे एवं सीमांत कृषक, भूमिहीन श्रमिक तथा ग्रामीण दस्तकार) को वित्तीय साधन उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना तथा उत्पादकता वृद्धि एवं कल्याणकारी सेवाओं में से इन वर्गो को उचित हिस्सा प्राप्त हो, का प्रबन्ध करना ।
3. ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गो में उपयुक्त दक्षता एवं योग्यता का विकास करना तथा उनके लिए वे समस्त साधन जुटाना, जो अर्जित योग्यता का उचित प्रयोग करने में सहायक हो ।

2.7 ग्रामीण विकास के घटक (Components of Rural Development)

ग्रामीण विकास के प्रमुख घटक या क्षेत्र चार माने जा सकते हैं - (अ) कृषि, (ब) ग्रामीण उद्योग, (स) शिक्षा तथा (द) सेवाएँ । कृषि के क्षेत्र में कृषि का विकास एवं यन्त्रीकरण, उन्नत किस्म के बीजों एवं उर्वरकों की व्यवस्था, कीट नियन्त्रण, कृषि उपज के भण्डारण एवं विपणन की व्यवस्था, आदि को सम्मिलित किया जा सकता है । ग्रामीण उद्योगों के क्षेत्र में उद्योगों के आधुनिकीकरण, ग्रामीण शिल्पियों के तकनीकी प्रशिक्षण एवं निर्मित माल के विपणन की व्यवस्था को सम्मिलित किया जा सकता है । शिक्षा के क्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा, बच्चों के लिए सामान्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं कृषि शिक्षा की व्यवस्था को सम्मिलित किया जा सकता है। सेवाओं के क्षेत्र में डिस्पेन्सरी, परिवार कल्याण, परिवहन के साधन, वर्कशॉप, डाकखाना एवं बैंक की व्यवस्था को सम्मिलित किया जा सकता है । स्पष्टत: कृषि क्षेत्र का विकास ग्रामीण विकास का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । परन्तु अकेले कृषि विकास को ग्रामीण विकास की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि ग्रामीण विकास का अर्थ इससे अधिक व्यापक है ।

2.8 ग्रामीण विकास का उद्देश्य (Objectives of Rural Development)

विकास के किसी भी आयाम को महत्त्व प्रदान करने हेतु ग्रामीण विकास की विचारधारा को त्वरित सजगता प्रदान किया जाना आवश्यक है । प्राथमिक रूप से इस प्रयोजन हेतु ग्रामीण जनसंख्या की आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक विचारधारा तथा मनोवृति में महत्त्वपूर्ण बदलाव की आवश्यकता है क्योंकि जनसंख्या का यह भाग स्वभाव से निरक्षर तथा अनभिज्ञ होता है । अजमत नईन के अनुसार, "ग्रामीण विकास समस्या तथा समाधान दोनों ही है ।"

ग्रामीण विकास की विचारधारा मूल रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली न्यून आय वाली जनसंख्या के जीवन स्तर तथा उनके विकास से सम्बन्धित प्रक्रिया को आत्म निर्भर बनाने से सम्बन्धित है । ग्रामीण विकास की विचारधारा रीति-रिवाजों, सोच तथा मूल्यों-गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनों, प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों, रोजगार के प्रतिरूप तथा आकार, तकनीक, संस्थागत तथा संगठनात्मक फ्रेमवर्क, आय सामाजिक तथा आपसी सम्बन्ध दोनों में, ग्रामीण जीवन शैली तथा भूमि तथा जल, जंगलात, खदान, प्रोत्साहन मूलक सेवाओं, मूल्य, पिछड़े हुए क्षेत्र तथा समाज के त्यागे हुए वर्ग, संगठन तथा प्रशासन, संसाधन उत्पादन, आत्म निर्भरता, तथा आत्म स्फूर्ति, लिंग सम्बन्धित मुद्दे, भरण-पोषण तथा प्रबन्ध/संरक्षण, सरकारी हस्तक्षेप, जन सहभागिता तथा (बहु-स्तरीय फ्रेमवर्क में विकेन्द्रित नियोजन सहित) नियोजन की प्रकृति तथा स्तर आदि सम्मिलित होते हैं । ग्रामीण विकास की विचारधारा का मूलभूत उद्देश्य ग्रामीण जनसंख्या के जीवन स्तर में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन से है । ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

(1) सामाजिक तथा आर्थिक आधारभूत ढाँचे के रूप में कतिपय सामाजिक वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धि प्राप्त करना ।

(2) प्रत्येक ग्रामीण परिवार की आय में वृद्धि का प्रयास करना तथा यह देखना कि आने वाले समय में जो परिवार निर्धनता रेखा के नीचे पलायन कर रहे वे गरीबी रेखा के ऊपर आ जाये ।

(3) ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसर सृजन करना ।

(4) ग्रामीण विकास की विचारधारा आवश्यक रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली निर्धन जनसंख्या की आत्म निर्भर प्रयासों के आधार पर जीवन स्तर में सुधार से संबंधित है ।

(5) ग्रामीण जनसंख्या के जीवन का पुन:संगठन जिसके अन्तर्गत विस्तृत आधार वाली पुनसंगठनात्मक तथा प्रचारात्मक गतिविधियां सम्मिलित होती है जो असंख्य ग्रामीणों को समाज में हो रहे दैनिक परिवर्तनों के अनुरूप प्रभावी रूप में स्वयं को समायोजित करने की क्षमता विकसित करने के योग्य बनाती है ।

(6) ग्रामीण जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार करना ।

(7) ग्रामीण जनसंख्या में विकास की प्रक्रिया के प्रति व्यावहारिकता वाद की भावना के उदय की दृष्टि से प्रयुक्त की जाने वाली तकनीकी जानकारी में सुधार करना ।

2.9 ग्रामीण विकास का महत्त्व (Significance of Rural Development)

विगत कुछ वर्षों के दौरान, विकास साहित्य, विकास आयोजनाओं, राजनीतिक मंचों, अधिकांशत: दानदाताओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाताओं के कार्यक्रमों में ग्रामीण विकास की विचारधारा की उच्च स्तर पर आकर्षण प्राप्त हुआ है ।

उपर्युक्त तथ्य तर्कसंगत भी है क्योंकि तीसरी दुनिया की जनसंख्या का 72 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है । यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्र के विभिन्न भागों में गरीब जनसंख्या का निवास समान अनुपात में नहीं है । विगत कुछ वर्षों के दौरान विकास की दृष्टि से महत्त्व का हस्तान्तरण ग्रामीण विकास के पक्ष में हुआ है । इसका प्रमुख उत्तरदायी कारण विगत वर्षों के दौरान क्रियान्वित हुए विकास कार्यक्रमों तथा प्रयासों का ग्रामीण जनसंख्या के कमजोर वर्ग के जीवन स्तर में वांछनीय सुधार अथवा गरीबी तथा बेरोजगारी के उन्मूलन में असफल रहा है । ग्रामीण विकास के संदर्भ में नीति को महत्त्व प्रदान किया जाना तुलनात्मक रूप से निर्धन राष्ट्रों का महत्त्वपूर्ण कार्य बन गया है । इसका प्रमुख कारण यह है कि सफलतापूर्वक ग्रामीण विकास की समस्या को हल करने पर ही निर्धन राष्ट्रों के विकास की गति (pace) तथा शैली (tone) निर्धारित होती है ।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को भारत के आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है, क्योंकि राष्ट्र की जनसंख्या का 72.25% भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है । वस्तुत: ग्रामीण क्षेत्र ही वास्तविक भारत का प्रतिनिधित्व करता है । अत: बिना ग्रामीण असंख्यों का उत्थान किये सम्पूर्ण आर्थिक विकास की धुरी को त्वरित किया जाना संभव नहीं है । इस पक्ष पर जोर दिये जाने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के सम्पूर्ण विकास का ग्रामीण विकास से निकटतम संबंध है । यह आश्वस्त करने की दृष्टि से कि राष्ट्र को संतुलित आर्थिक विकास की प्राप्ति हो तथा विकास के फल को आधारभूत स्तर (grass-root) पर अनुभव किया जाय, ग्रामीण विकास को नियोजित प्रयासों में सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाय ।

ग्रामीण विकास का भारत जैसे राष्ट्र, के संदर्भ में निम्नलिखित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से विशेष महत्त्व है:

(अ) सामाजिक महत्त्व (Social Significance)

(1) ग्रामीण समस्यायें (Rural problems):

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियाँ, प्राथमिक तथा सम्पूर्ण, व्यापक आर्थिक क्रियायें, असंख्य समस्याओं से ग्रसित है । ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे असंख्य सीमांत तथा लघु कृषक है जो कि कृषि हेतु भूमि की अनुपलब्धि से इस कारण वंचित है क्योंकि भूमि का एक बड़ा भाग गिने चुने हाथों में केन्द्रित है । इसके अतिरिक्त कृषक जनसंख्या ग्रामीण गरीबों का एक बड़ा भाग विभिन्न प्रकार की समस्याओं जैसे वित्त, कृषि आदानों (agricultural input) की अपर्याप्तता उत्पादन तथा विपणन, बेरोजगार तथा न्यून आय आदि समस्याओं से पीड़ित है । ग्रामीण विकास की विचारधारा उपर्युक्त वर्णित समस्त समस्याओं के संतोषजनक समाधान हेतु एक समय पैकेज प्रदान करता है।

(2) सामाजिक परिर्वतन (Social Changes):

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग अत्यधिक परम्परावादी तथा किसी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करने की प्रवृत्ति से ग्रसित रहते हैं । ग्रामीण जनसंख्या द्वारा परिवर्तन का विरोध करने के अनेक कारण हो सकते हैं, किंतु एक महत्त्वपूर्ण कारण उनका कल्याण हेतु संचालित किये जाने वाले विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं से अनभिज्ञता का होना हैं । ग्रामीण विकास की विचारधारा ग्रामीण जनसंख्या को इस प्रकार से शिक्षित करने का प्रयास करती है जिससे वे सामाजिक परिवर्तनों का विरोध करने के बजाय उनका स्वागत करना प्रारम्भ कर देते हैं ।

(3) संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग (Optimum Utilisation of Resources):

पर्याप्त आधारभूत सुविधाओं तथा रोजगार अवसरों के अभाव में सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में दरिद्रता तथा बेरोजगारी का तांडव अनुभव किया जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक से अधिक 30 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर होती है । इसके परिणामस्वरूप उपलब्ध मानवीय तथा प्राकृतिक संसाधनों को मानव कल्याणकारी कार्यक्रमों हेतु प्रयुक्त नहीं किया जा सकता । इस कारण जनसंख्या का एक महत्त्वपूर्ण भाग शहरी क्षेत्रों की तरफ पलायन प्रारम्भ हुआ जिसके परिणामस्वरूप शहरी समस्याओं में वृद्धि हुई । ग्रामीण रोजगार तथा अन्य विकास योजनाओं की क्रियान्विति से उपलब्ध संसाधनों का राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ हित में प्रयोग संभव है ।

(4) आधारभूत सुविधाएँ (Infrastructural Facilities):

ग्रामीण क्षेत्रों में, अधिकांशतः: आधारभूत सुविधाओं जैसे समस्त मौसम में प्रयोग हो सकने वाली सड़कें, प्राथमिक विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र तथा पीने का पानी का आभाव आदि ऐसी ज्वलन्त समस्याएं है जिनका बिना विलम्ब समाधान अत्यन्त आवश्यक है । अत: समग्र प्रकृति के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का संचालन ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

(आ) आर्थिक महत्त्व (Economic Significance)

विगत पाँच दशकों के दौरान तीव्र गति से ओद्योगिकरण के बावजूद कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ़ की हड्डी की संज्ञा प्रदान की जाती है । कृषि भारत की एक अत्यन्त विशाल आकार का उद्योग होने के कारण यह जनसंख्या के लगभग 72 प्रतिशत भाग की आजीविका प्रदान करती है । भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 18.50% भाग कृषि तथा सम्बद्ध गतिविधियों से प्राप्त होता है । वस्तुत: भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त पहलुओं पर कृषि की इस प्रकार छाप लगी हुयी है कि समस्त आर्थिक गतिविधियों का अस्तित्व कृषि की स्थिति तथा विकास से जुड़ा हुआ है । ग्रामीण विकास का आर्थिक महत्त्व विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत कृषि की राष्ट्र के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के परिपेक्ष्य में भली भाँति समझा जा सकता है।

(1) राष्ट्रीय आय (National Income):

स्वतन्त्रता के पश्चात् से अब तक के औद्योगिक उद्गम द्वारा राष्ट्रीय आय का वितरण यह दर्शाता है कि यदि हम विभिन्न कृषि वस्तुओं के उत्पादन से प्राप्त होने वाली आय तथा पशुपालन एवं सम्बद्ध गतिविधियों का राष्ट्रीय आय में योगदान देखे तो यह 40 प्रतिशत से अधिक रहा है । वास्तव में पचास के दशक के दौरान राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का योगदान आधे से अधिक रहा है । साठ, सत्तर तथा अस्सी के दशक में यह कुछ कम होकर 44 प्रतिशत रह गया ।

यद्यपि 1960-61 के पश्चात से राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में कृषि के भाग में कुछ गिरावट हुई है किन्तु अब भी कृषि एकल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका राष्ट्रीय आय में योगदान सर्वाधिक है । यदि हम स्थिति की विदेशों के साथ तुलना करे तो तस्वीर अधिक साफ ही जाती है । कृषि का इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था में योगदान 3.1 प्रतिशत, संयुक्त राज्य में 32 प्रतिशत, कनाडा में यह 5 प्रतिशत था यही क्रम अन्य अनेक विकसित राष्ट्रों में भी विद्यमान है । इसके एक स्पष्ट निष्कर्ष यह प्रकट होता है राष्ट्र जितना विकसित है, वहाँ अधिक उत्पादन में कृषि भाग उतना ही छोटा या कम है ।

(2) रोजगार तथा आजीविका का साधन

(Employment and Source of Livelihood):

विगत वर्षों के दौरान कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति का आकार तीव्र गति से बढ़ा है । एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक 10 व्यक्तियों में से 7 व्यक्ति कृषि तथा सम्बन्ध गतिविधियों में संलग्न है। विगत सात दशकों के दौरान जनसंख्या का उपर्युक्त वर्णित प्रतिशत भाग लगभग स्थिर रहा है। इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि विकसित राष्ट्रों में जनसंख्या का लगभग 20 प्रतिशत भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र पर आश्रित है । इसके साथ ही इस तथ्य पर विचार करना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि उपर्युक्त वर्णित विकसित राष्ट्रों में कृषि पर आश्रित कुल जनसंख्या का प्रतिशत भाग कम हो रहा है, जबकि भारत में यह प्रतिशत लगभग स्थिर है ।

(3) खाद्य तथा चारा (Food and Fodder):

एक अनुमान के आधार पर यह व्यक्त किया गया कि कुल उपभोग खर्च में कृषि जनित वस्तुओं पर लगभग 80 प्रतिशत व्यय किया जाता है । इस स्थिति में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कृषि जनसंख्या की सम्पूर्ण खाद्य सामग्री आवश्यकता की पूर्ति करती है । यद्यपि विगत वर्षों में बड़ी मात्रा में भारत द्वारा खाद्यान्नों का आयात किया गया है, किन्तु कुल खाद्य आवश्यकता में खाद्यान्नों का भाग अत्यन्त छोटा रहा है ।

कृषि द्वारा जीवित रहने के लिए जानवरों तथा मुर्गी पालन आदि व्यवसाय की खाद्य आवश्यकता पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जाता रहा है । इनकी संख्या (पशु, भैंस, भेड़े, बकरी, घोड़ा तथा पोनी आदि करोड़ों में परिवर्तित हो चुकी है । इनके द्वारा संरक्षणात्मक खाद्य की पूर्ति की जाती है जिसके अन्तर्गत दूध, अण्डे तथा मांस आदि सम्मिलित है ।

(4) औद्योगिक विकास (Industrial Development):

भारत के प्रमुख उद्योगों को पर्याप्त कच्चा माल प्रदान करने में कृषि उत्पादन से कच्चे माल की आपूर्ति स्वयं स्पष्ट है । भारत के महत्त्वपूर्ण उद्योग-सूती वस्त्र, खाद्य तेल, चमड़ा, पौध रक्षण उद्योग आदि सभी प्रत्यक्ष रूप से कृषि के विकास पर आश्रित हैं । अन्य अनेक उद्योग अप्रत्यक्ष रूप से कृषि विकास पर आश्रित है ।

कृषि में आधुनिक तकनीक के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति से बीज, रासायनिक खाद, उर्वरक, कृषि औजार, मशीनरी, पम्प सैट तथा उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि के कारण ही

औद्योगिकीकरण त्वरित होता है । जापानी तथा रूस की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का विकास कृषि क्षेत्रों में आधिक्य को औद्योगिक क्षेत्र में हस्तांतरण करने से सम्भव हो सका है ।

(5) आन्तरिक व्यापार तथा परिवहन (Internal Trade and Transport):

आन्तरिक व्यापार में अधिकतर कृषि उत्पादों की ही प्रधानता रहती है । व्यापार में कच्चा माल तथा खाद्यान्नों आदि का क्रय क्रमश: उद्योगों तथा उपभोक्ता की पूर्ति हेतु किया जाता है । व्यापार के माध्यम से ही कृषकों को औद्योगिक तथा उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धि होती है । व्यापार का आकार निःसन्देह कृषि के आर्थिक विकास पर निर्भर करता है ।

रेल, सड़क तथा परिवहन के अन्य साधनों का विकास जिनके द्वारा खेतों से मण्डियों तक बड़ी मात्रा में कृषि वस्तुओं का परिवहन होता है, कृषि विकास से ही सम्भव होता है ।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade):

कृषि का निर्यात में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है तथा कृषि वस्तुएँ आयात का भी महत्त्वपूर्ण आधार है । कुल निर्यात आय में कृषि जनित वस्तुओं का भाग लगभग 35 प्रतिशत तथा आयात आय में कृषि जनित वस्तुओं का प्रतिनिधित्व लगभग 32 प्रतिशत है । यदि कृषि पर आधारित वस्तुओं के आयात-निर्यात को इसमें सम्मिलित कर लिया जाय तो यह भाग और भी अधिक बढ़ जाता है । भारत द्वारा कृषि निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ चाय, तिलहन, फल तथा सब्जियाँ, मसाले, तम्बाकू रूई, चावल, चीनी आदि है । सिले-सिलाये वस्त्र तथा जूट टेक्सटाइल का निर्यात आदि अन्य ऐसी वस्तुएँ है जो कच्चे माल की प्राप्ति हेतु कृषि पर आश्रित है ।

भारतीय आयात की प्रमुख कृषि वस्तुएँ दालें, कच्ची कपास. रसायन, वनस्पति तेल तथा चर्बी, डेयरी उत्पाद, कच्ची जूट, ट्रेक्टर, कच्ची ऊन, रबड़, कृषि मशीनरी तथा औजार आदि है । इन वस्तुओं के क्रय में प्रयुक्त विदेशी विनिमय की पूर्ति कृषि जन्य वस्तुओं के निर्यात से ही प्राप्त होती है ।

(7) पूँजी संरचना तथा विनियोजन (Capital formation and investment) :

चूँकि कृषि का राष्ट्रीय आय में योगदान लगभग 40 प्रतिशत है, अत: यह बचत का आधारभूत स्त्रोत होने के कारण अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करती है । भारत में स्वतन्त्रता के पूर्व इतने बड़े स्तर पर उत्पादक सम्पत्ति के निर्माण के प्रति देश में न तो उत्साह था न ही क्षमता । किन्तु वर्तमान समय में राष्ट्र की उत्पादित सम्पदा का अधिकांश भाग कृषि सम्पदा जैसे सिंचाई सुविधाएँ, हल, भण्डारण क्षमता आदि के रूप में प्राप्त होता है । प्रति वर्ष इस स्टॉक में सरकारी तथा निजी आधार पर महत्त्वपूर्ण वृद्धि अर्जित हो रही है ।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय श्रेणियाँ (International Ranking) :

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारतीय कृषि का अनेक मापदण्डों के आधार पर उच्च श्रेणीयन है । मुँगफली उत्पादन के सम्बन्ध में भारत का स्थान विश्व में प्रथम है, चावल, तम्बाकू आदि के उत्पादन के सम्बन्ध में भी भारत का विश्व में अग्रणी स्थान है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह भली-भाँति स्पष्ट है कि कृषि का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में केन्द्रिय स्थान है । कृषि का प्रतिकूलत: प्रभावित होने से सम्पूर्ण आर्थिक तन्त्र बुरी तरह से प्रभावित होगा । अनुभव दर्शाता है कि भारतीय कीमतों में चौतरफा वृद्धि खाद्यान्नों के अभाव के कारण हुई है ।

निर्यातों में वृद्धि कृषि फ्रन्ट पर असफलता के कारण हुयी है । कृषि में असफलता के कारण ही व्यापार तथा सरकार की आय में कमी दृष्टिगत हुई हैं । वस्तुत: न केवल, अर्थव्यवस्था वरन् भारतीय संस्कृति, समाज, राजनीति तथा जीवन के समस्त संगठनों में ग्रामीण जीवन का सशक्त पुट तथा गहरा रंग सम्मिलित है ।

(ई) राजनीतिक महत्त्व (Political Significance):

(1) **राजनीतिक स्थिरता (Political Stability) :** शहरी सम्पन्नता तथा ग्रामीण दरिद्रता के मध्य बढ़ते अन्तर से राजनीतिक स्थिरता विपरीत रूप से प्रभावित होती है । स्थिर तथा विकासशील ग्रामीण अर्थव्यवस्था राजनीतिक स्थिरता में सहयोग प्रदान कर सकती है जो आर्थिक विकास हेतु महत्त्वपूर्ण है ।

जैसा कि सम्पूर्ण विश्व स्वयं में निहित है उसी प्रकार भारत भी गांवों में निहित है । ग्रामीण विकास राष्ट्रीय विकास का प्रमुख आधार है । कारण बिल्कुल स्पष्ट हैं तेजी से हो रहे शहरीकरण के बावजूद हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी गांवों में रहता है । दूसरे, अनेक ऐतिहासिक कारणों से ग्रामीण भारत विकास के मार्ग पर अभी भी पीछे है विकास संबंधी असन्तुलनों को ठीक करने और ग्रामीण क्षेत्रों में विकास को उचित प्राथमिकता देने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ग्रामीण क्षेत्रों के स्थायी विकास के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम क्रियान्वित कर रहा है । इन कार्यक्रमों का उद्देश्य एक बहुफलकीय नीति के माध्यम से समाज के सबसे कमजोर वर्ग तक पहुंचकर ग्रामीण क्षेत्रों में चहुंमुखी आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन लाया है । पिछले तीन वर्षों के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्य को आगे बढ़ने के लिए न केवल अतिरिक्त धन और संसाधनों का आबंटन करके अपितु नए कार्यक्रम लागू करके तथा पुराने कार्यक्रमों को नया रूप देकर भी ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता दी गई है ।

भारत में चाहे किसी भी राजनीतिक गठबन्धन की सरकर क्यों न सत्ता में काबिज हो, वह ग्रामीण विकास की अवहेलना करते हुए विकास की गति त्वरित नहीं कर सकती है । ग्रामीण विकास की विचारधारा को बल प्रदान करते हुए भारत के प्रधानमंत्री ने 29 जून 2004 को ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज सम्मेलन में यह उद्‌गार प्रकट किये कि गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामीण समृद्धि ही भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार है । उनके द्‌वारा यह विचार व्यक्त किये गये कि कृषि को विकास का इंजन बनाया जाना चाहिए तथा पंचायतों को और अधिक सम्पन्न बनाये जाने की आवश्यकता है । भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की नये सिरे से समीक्षा किये जाने की आवश्यकता है ।

(2) भ्रष्टाचार में कमी ।

(3) राजनैतिक मूल्यों की स्थापना ।

(4) सत्ता का विकेन्द्रीकरण ।

2.10 ग्रामीण विकास के कार्यक्रम (Rural Development Programmes):

(1) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) :

परिचय (Introduction)

- स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) ग्रामीण गरीबों के स्वरोजगार के लिए चल रहा एक मुख्य कार्यक्रम है । पूर्ववर्ती एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) और इसके सहायक कार्यक्रमों अर्थात स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM), ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास (DWCRA), ग्रामीण क्षेत्रों में औजार-किटों की आपूर्ति (SITRA) और मिलियन वेल्स स्कीम (MWS) के अलावा गंगा कल्याण योजना (GKY) की पुन:संरचना कर 1.4.1999 को यह कार्यक्रम शुरू किया गया ।

उद्धेश्य (Objectives)

- स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना का मूल उद्देश्य बैंक ऋण और सरकारी अनुदान (सब्सिडी) के माध्यम से आयोपार्जक परिसम्पत्तियां उपलब्ध करा कर सहायता प्राप्त ग्रामीण परिवारों (स्वरोजगारियों) को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है । इस कार्यक्रम का लक्ष्य गरीबों के कौशल और प्रत्येक क्षेत्र की कार्यक्षमता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लघु उघमों की स्थापना करना है । कार्यक्रम का संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है:-

एक निश्चित समय सीमा के अंदर आय में पर्याप्त वृद्धि सुनिश्चित कर गरीबी रेखा से नीचे के सहायता प्राप्त परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना ।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. स्वंसहायता समूह में संगठित होने योग्य बनाने के लिये ग्रामीण निर्धनों को एकजुट करने पर बल ।
2. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना - एक ऋण सह सब्सिडी योजना है जिसमें ऋण प्रमुख घटक है और सब्सिडी मात्र सहायक घटक है ।
3. मुख्य क्रियाकलापों के चयन में सहभागी नीति ।
4. प्रत्येक मुख्य क्रियाकलाप के लिए परियोजना नीति ।
5. उपयुक्त हर संभव सहायता सुनिश्चित करने के लिये क्रियाकलाप समूहों के विकास पर बल ।
6. आवर्ती निधि सहायता के माध्यम से समूहों का सुदृढ़ीकरण ।
7. परियोजना के अभिन्न अंग के रूप में सामूहिक प्रक्रियाओं और कौशल विकास में लाभार्थियों का प्रशिक्षण ।
8. बाजार की खोज, उत्पादों में सुधार/ विविधीकरण, पैकेजिंग, बाजार सुविधाओं के सृजन आदि के माध्यम से विपणन सहायता ।
9. अप्राप्त महत्त्वपूर्ण कड़ी उपलब्ध कराकर ढांचागत विकास के लिए प्रावधान । ढांचागत विकास के लिए 20 प्रतिशत निधि निर्धारित है ।
10. स्वंसहायता समूहों के गठन और क्षमता निर्माण में गैर सरकारी संगठनों की सक्रिय भूमिका।

11. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जाति, महिला एवं विकलांग जैसे उपेक्षित समूहों पर ध्यान देना।
12. निश्चित संख्या में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम सुनिश्चित करने हेतु विशेष परियोजनाओं के लिए 15 प्रतिशत निधि का निर्धारण ।

2. **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम, 2005**

(National Rural Employment Guarantee Act, 2005)

परिचय (Introduction) :

- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (NREGA) 2005 के जरिये यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि अगर किसी ग्रामीण परिवार के कोई वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है तो एक वित्तीय वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाए । इस अधिनियम को प्रारम्भिक चरण में देश के 200 जिलों में लागू किया गया है । बाद में इस कानून को केन्द्र सरकार द्वारा अधिसूचित अन्य इलाकों में भी लागू कर दिया गया । यह कानून रोजगार के अधिकार को साकार करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है । इस कानून के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में आर्थिक और सामाजिक बुनियादी ढाँचा विकसित किया जायेगा जिससे लोगों को रोजगार के नियमित अवसर मिलेंगे ।
- एनआरईजीए में प्रावधान है कि इस कानून के लाग होने के बाद छह माह में प्रत्येक राज्य सरकार को अपने-अपने स्तर पर ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना (आरईजीएस) तैयार करनी होगी। रोजगार गारंटी योजना का लक्ष्य रोजगार की कानूनी गारन्टी साकार करने से है जिससे गांवों के ऐसे प्रत्येक परिवार को कम से कम 100 दिन का गारन्टीशुदा रोजगार उपलब्ध कराया जाय जिसके वयस्क सदस्य इस अधिनियम की शर्तों के तहत अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है । प्रत्येक ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में इस अधिनियम की अनुसूची- I तथा II में उल्लेखित न्यूनतम मानकों का अनिवार्य रूप से पालन किया जाएगा ।

उद्देश्य (Objectives)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम-2005 के अधीन संचालित राजस्थान ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्तीय वर्ष के दौरान 100 दिवस का गारंटी शुदा रोजगार उपलब्ध कराना है, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुरक्षा की स्थिति को बेहतर बनाया जा सके ।

ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना के अन्य उद्देश्य यथा-रोजगार गारन्टी से सम्पदाओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण, गांवों से शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लगाने और सामाजिक सुनिश्चित करना भी है 1

विशेषताएं (Characteristics):

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना अधिनियम-2005 के अधीन संचालित राजस्थान ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की मुख्य विशेषताएं अग्रानुसार है-

- योजना जिस क्षेत्र में लागू है, उस क्षेत्र के समस्त ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्य योजना में लाभ के पात्र होंगे ।
- योजनान्तर्गत प्रत्येक ग्रामीण परिवार को एक वित्तीय वर्ष में न्यूनतम 100 दिवस के गारंटी शुदा रोजगार के माध्यम से अपनी आजीविका का अधिकार होगा ।
- ऐसे प्रत्येक ग्रामीण परिवार प्रत्येक वयस्क सदस्य को रोजगार दिया जाएगा जो अकुशल शारीरिक कार्य करने का इच्छुक हो ।
- यह योजना पूर्ववर्ती मजदूरी रोजगार योजनाओं की तरह आपूर्ति आधारित योजना नहीं होकर एक मांग आधारित योजना हैं ।
- यदि राज्य सरकार किसी परिवार की मांग पर उसे 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध कराने में किन्हीं कारणों से असफल रहती है तो वह बेरोजगार व्यक्ति को निर्धारित दरों के अनुसार परिवार के हकदारी के हिसाब से पात्र आवेदकों को मुआवजे का भुगतान करेगी ।
- योजनान्तर्गत पंचायत राज संस्थाओं विशेष रूप से ग्राम पंचायत की विशेष भूमिका मानी गई है । इस योजनान्तर्गत ग्रामवासी स्वयं वार्ड या ग्राम सभा के माध्यम से योजनान्तर्गत अनुमत कार्यों में से अपने गांव के विकास के लिए कार्यो की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर कार्य कराने की अभिशंसा कर सकते हैं ।
- योजनान्तर्गत रोजगार के आवंटन में महिलाओं को प्राथमिकता दिये जाने का प्रावधान है। कम से कम एक तिहाई महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराना आवश्यक है ।
- योजना के नियोजन एवं क्रियान्वयन में ग्राम पंचायतों की विशेष भूमिका निर्धारित की गई है । योजना के क्रियान्वयन में ठेकेदारों को प्रतिबन्धित किया गया है ।
- योजनान्तर्गत ऐसे कार्य जो मानव श्रम से संभव है ऐसे कार्यो को मशीनों से कराने के लिए प्रतिबन्धित किया गया है ।
- योजनान्तर्गत कार्यस्थल पर छाया हेतु शेड, पेयजल, आवश्यक दवाईयां एवं क्रेज की व्यवस्था होना आवश्यक है ।
- श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान उनके द्वारा संपादित टास्क के आधार पर किया जाता है।
- योजनान्तर्गत मजदूरों को सम्पादित कार्य की मजदूरी का भुगतान साप्ताहिक रूप से अथवा 15 दिवस की अवधि में करना अनिवार्य है ।
- योजनान्तर्गत निर्धारित अवधि में भुगतान नहीं करने पर श्रमिक मजदूरी के भुगतान में हुए विलम्ब के लिए क्षतिपूर्ति का हकदार होगा ।
- पुरूष एवं महिलाओं के लिए मजदूरी एक समान होगी ।

3. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)

परिचय (Introduction):

- ग्रामीण क्षेत्रों में जरूरतमन्द लोगों को मजदूरी रोजगार के साथ-साथ खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करानेके उद्देश्य से सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना की घोषणा माननीय तत्कालीन प्रधानमंत्री महोदय द्वारा 15 अगस्त, 2001 को की गई थी । भारत सरकार के निर्देशानुसार जवाहर ग्राम समृद्धि योजना एवं सुनिश्चित रोजगार योजना को दिनांक 31.3.2002 तक सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना का भाग मानते हुए क्रियान्विति की गई । दिनांक 01.04.2002 से सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना भारत सरकार द्वारा विधिवत रूप से लागू की गई है । दिनांक 31.03.2004 तक यह योजना दो धाराओं के रूप में क्रियान्वित की जाती थी । दिनांक 01.04.2004 से योजना की दोनों धाराओं को समाहित करते हुए एक योजना "सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना" कर दी गई है जिसे भारत सरकार द्वारा जारी नई मार्गदर्शिका के आधार पर लागू किया गया हैं ।

उद्देश्य (Objectives) :

- कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार प्रदान करने के अलावा खाद्य सुरक्षा के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ स्वरूप की सामुदायिक, सामाजिक और आर्थिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना है । यह कार्यक्रम स्व-लक्षित स्वरूप का है, जिसमें महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और जोखिम भरे व्यवसायों से मुक्त कराये गये बच्चों के अभिभावकों को मजदूरी रोजगार मुहैया कराने पर विशेष जोर दिया जाता है ।
- यह योजना केवल पंचायती राज संस्थाओं द्वारा ही क्रियान्वित की जाती है तथा वर्ष 2003-2004 तक दो चरणों में क्रियान्वित की गई । वर्ष 2004-05 से यह कार्यक्रम एक समेकित योजना के रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है । इसके अन्तर्गत जिला परिषद, पंचायत समिति और ग्राम पंचायतों को भारत सरकार से आवंटित राशि में से क्रमश: 20:30:50 के आधार पर राशि का आवंटन किया जाता है । पंचायत का प्रत्येक स्तर कार्य योजना बनाने और योजना निष्पादित करने के लिये एक स्वतंत्र इकाई है ।

जिला तथा पंचायत समिति दोनों स्तरीय वार्षिक आवंटन (खाद्यान्नों सहित) का 22.5 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जाती/ अनुसूचित जनजाति के परिवारों की वैयक्तिक योजना के लिये निर्धारित है ।

4. इन्दिरा आवास योजना (IAY)

परिचय (Introduction) :

- मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवास एक मूल आवश्यकता है और बेहतर जीवन यापन का आधार वह घर है जहाँ अच्छी सुविधाएं मिलती हों । अपना घर होने से व्यक्ति को समाज में पर्याप्त आर्थिक सुरक्षा और सम्मान मिलता है । मकान के स्वामित्व से बीपीएल परिवार का बुनियादी आत्मविश्वास बढ़ता है और उसमें प्रगति करने की इच्छा पैदा होती है जो गरीबी उपशमन के लिए बेहद जरूरी है । सरकार द्वारा आवास की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे भारत निर्माण कार्यक्रम में

अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित किया गया है । भारत निर्माण पैकेज के अन्तर्गत अगले चार वर्षों के दौरान देश भर में 60 लाख आवासों के निर्माण की परिकल्पना की गई हैं यह आवास निर्माण कार्यक्रम इन्दिरा आवास योजना (आईएवाई) के माध्यम से कार्यान्वित की जानी है ।

- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 2.59 लाख अतिरिक्त आवासों की कमी है । इसके अलावा हर वर्ष अतिरिक्त मकानों की आवश्यकता बढ़ जाती है । वर्ष2001-02 से वर्ष 2005-06 तक इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत राज्य में लगभग 1.50 लाख आवासों का निर्माण कराया गया है । ग्रामीण गरीबों में आवासहीनता को समाप्त करने के लिए 3 वर्षों (2006-2009) के भारत निर्माण परिदृश्य में 1 लाख 20 हजार आवासों अर्थात् 2006-07 से प्रति वर्ष 40000 आवासों के निर्माण की आवश्यकता होगी । परन्तु भारत सरकार द्वारा वर्ष2008-2007 में 34094 आवासों के निर्माण के लिए बजट प्रावधान किया है और इससे मौजूदा कार्य को दृष्टि में रखते हुए प्रति वर्ष लगभग 6000 मकानों की कमी रह जायेगी ।

उद्देश्य (Objectives):

- इन्दिरा आवास योजना का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, मुक्त बन्धुआ मजदूरों के सदस्यों तथा गैर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति के गरीबी रेखा से नीचे के ग्रामीण लोगों को एक मुश्त वित्तीय सहायता देकर आवासीय इकाईयों के निर्माण या क्रमोन्नत में मदद करना हैं ।

इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत वित्तपोषण पद्धति केन्द्र और राज्य के बीच 75.25 के आधार पर है । वर्ष 2005-06 से आवंटन मानदण्ड को संशोधित करते हुए राज्य स्तर पर आवंटन के लिए आवास की कमी को 75 प्रतिशत महत्ता और गरीबी अनुपात को 25 प्रतिशत महत्ता दी जा रही है । जिलों में आवंटन करते समय आवास की कमी को 75 प्रतिशत महत्ता और अनुसूचित जाति एवं जनजाति घटक को 25 प्रतिशत महत्ता दी जाती है ।

1 अप्रैल, 2004 से इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत निर्माण सहायता की अधिकतम सीमा मैदानी क्षेत्रों के लिए प्रति इकाई 25,000/ - और पहाड़ी एवं दुर्गम क्षेत्रों के लिए 27,500/ - रुपये प्रति इकाई है । राजस्थान राज्य में सभी जिलों में आवास निर्माण हेतु 25000/ - रुपये की सहायता उपलब्ध कराई जा रही है । सभी क्षेत्रों के लिए, मरम्मत न किये जा सकने वाले कच्चे मकानों को पक्के एवं अर्द्ध पक्के मकानों में बदलने (Up gradation) के लिए अधिकतम सीमा 12000/ - रुपये है ।

2.11 सारांश (Summary):

भारत में ग्रामीण विकास की अवधारणा स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से चली आ रही है । प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही ग्रामीण विकास सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई । तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि "भारत की आत्मा गाँवों में

निवास करती है ।" सम्पूर्ण भारत का विकास तब तक संभव नहीं है जब तक ग्रामीण क्षेत्रों का विकास नहीं किया जाये । वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 72% भाग गाँवों में निवास करता है अत: इस जनसंख्या के वृहत भाग का विकास किये बिना भारत का विकास संभव नहीं है । ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन यापन करने वाले लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि एवं इसकी सहायक क्रियायें है । भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में पनपता है और कर्ज में ही मर जाता है । इसका मुख्य कारण उसके पास स्थायी आय के स्रोत का अभाव है । भारत में अधिकांश कृषि मानसून पर आश्रित है तथा परिवार के सभी सदस्य कृषि पर आश्रित होते हैं ।

अत: सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले किसानों को सर्वाधिक लाभ मिले जिससे उनकी गरीबी, बेकारी, अज्ञानता, अशिक्षा को दूर किया जा सके । सरकार द्वारा इस दिशा में सार्थक प्रयास किये गये हैं एवं अनेक कार्यक्रम यथा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, रोजगार गारंटी योजना, इंदिरा आवास योजना आदि संचालित किये ।

2.12 शब्दावली (Terminology)

1. राष्ट्रीय विकास
2. उत्पादकता
3. गरीबी रेखा
4. प्रवर्तित कार्यक्रम
5. सहायक -क्रियायें
6. कल्याण
7. विपणन
8. आधारभूत संरचना
9. आई.बी.आर.बी
10. पलायन
11. विकासशील राष्ट्र
12. अर्द्ध विकसित राष्ट्र
13. ग्रामीण विकास कार्यक्रम
14. आर्थिक क्षेत्र
15. सीमांत कृषक
16. राष्ट्रीय आय

2.13 स्व-परख

1. भारत की राष्ट्रीय आय का कितना भाग कृषि तथा उसकी सहायक क्रियाओं से प्राप्त होता है?

2. देश की कार्यशील जनसंख्या का कितना भाग जीवन-निर्वाह के लिए कृषि पर निर्भर करता है?
3. ग्रामीण विकास को परिभाषित कीजिए ।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता का स्तर नीचा होने के क्या कारण है?
5. ग्रामीण जनसंख्या के शहरों की ओर पलायन से क्या समस्याएँ उत्पन्न हुई?
6. ग्रामीण विकास का क्षेत्र क्या हैं?
7. ग्रामीण विकास के कोई 5 उद्देश्य लिखिए ।
8. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कोई पाँच विशेषताएँ लिखिए ।
9. ग्रामीण विकास से संबंधित किन्हीं 5 कार्यक्रमों के नाम लिखिए ।

व्यावहारिक प्रश्न (Practical Question) :

1. ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं महत्त्व की व्याख्या कीजिए ।
2. भारत में ग्रामीण विकास की आवश्यकता क्यों हैं? तथा इसके क्षेत्र का वर्णन करो ।
3. ग्रामीण विकास को परिभाषित करो । भारत में ग्रामीण विकास के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
4. ग्रामीण विकास को समझाइए तथा इसका महत्त्व स्पष्ट कीजिए ।
5. टिप्पणी लिखिये :
   (i) स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना ।
   (ii) इन्दिरा आवास योजना ।
   (iii) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005
   (iv) सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना ।

2.14 संदर्भ ग्रंथ (Bibliography) :

1. गुप्ता, स्वामी, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2008
2. मिश्र-पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिसिंग हाउस, मुम्बई, 2008
3. सी.एम. चौधरी, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास, शिवम बुक हाउस प्रात. लि., जयपुर, 2005
4. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, 2006-07
5. लक्ष्मी नारायण नाथुरामका, भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2007
6. जाट, वशिष्ठ, भिण्डा, भारत में आर्थिक पर्यावरण, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर, 2008

इकाई-3 : प्रमुख ग्रामीण विकास योजनाएँ
(Major Rural Development Programmes)

इकाई की रूपरेखा :

3.0 पृष्ठभूमि

3.1 स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY)

3.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (NREGA-2005)

3.3 सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)

3.4 इन्दिरा आवास योजना (IAY)

3.5 सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (MPLADP)

3.6 जलग्रहण विकास कार्यक्रम

3.7 मेवात क्षेत्रीय विकास योजना (MADP)

3.8 विधायक स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (MLALADP)

3.9 डांग क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम (DADP)

3.10 गुरु गोलवलकर जन भागीदारी विकास योजना (GGJVY)

3.11 अन्त्योदय अन्न योजना (AAY)

3.12 प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)

3.13 सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)

3.14 मरुभूमि विकास कार्यक्रम (DDP)

3.15 सारांश

3.16 शब्दावली

3.17 अभ्यास प्रश्न

3.18 स्व-परख

3.19 संदर्भ ग्रंथ

3.0 पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता प्राप्ति के तीसरे दशक से ही ग्रामीण क्षेत्र के योजनाबद्ध विकास ने नया मोड़ लिया और अति पिछड़े तथा गरीबी से ग्रस्त परिवारों को सीधे लाभ पहुँचाने की दिशा में प्रयास किये गये, लेकिन राज्य में ग्रामीण विकास को और अधिक प्राथमिकता एवं विशेष महत्त्व देते हुए वर्ष 1971 में विशिष्ट योजना संगठन की स्थापना की गई । वर्ष 1979 में पुर्नगठन के साथ-साथ इसका कार्य क्षेत्र बढ़ाकर इसे 'विशिष्ट योजनाएँ एवं एकीकृत ग्रामीण विकास विभाग' का नाम दिया गया । अप्रेल 1999 से इस विभाग का नाम'ग्रामीण विकास विभाग' किया गया । ग्रामीण विकास विभाग द्वारा क्रियान्वित अधिकांश योजनाओं का क्रियान्वयन जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से किया जा रहा है । अत: जिला स्तर पर समन्वय हेतु जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों का जिला परिषद में विलय करते हुये मुख्य कार्यकारी

अधिकारी के अधीन ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ का गठन किया गया । इसी तरह राज्य स्तर पर ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने एवं कार्यक्रमों के बेहतर क्रियान्वयन के उद्देश्यों से ग्रामीण विकास विभाग एवं पंचायती राज विभाग का विलय किया गया है । वर्तमान में इस विभाग का नाम 'ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग है । वर्ष 1999 से पूर्व चले आ रहे ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों का पुर्नगठन करके नये कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं । प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रम निम्नलिखित हैं :-

3.1 स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY)

परिचय (Introduction)

- स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY) ग्रामीण गरीबों के स्वरोजगार के लिए चल रहा एक मुख्य कार्यक्रम है । पूर्ववर्ती एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) और इसके सहायक कार्यक्रमों अर्थात् स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM), ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास (DWCRA), ग्रामीण क्षेत्रों में औजार-किटों की आपूर्ति (SITRA) और मिलियन वेल्स स्कीम (MWS) के अलावा गंगा कल्याण योजना (GKY) की पुन:संरचना कर1.4.1999 को यह कार्यक्रम शुरू किया गया ।

उद्देश्य (Objectives)

- स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना का मूल उद्देश्य बैंक ऋण और सरकारी अनुदान (सब्सिडी) के माध्यम से आयोपार्जक परिसम्पत्तियां उपलब्ध करा कर सहायता प्राप्त ग्रामीण परिवारों (स्वरोजगारियों) को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना है । इस कार्यक्रम का लक्ष्य गरीबों के कौशल और प्रत्येक क्षेत्र की कार्यक्षमता के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में लघु उघमों की स्थापना करना है । कार्यक्रम का संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है:-

एक निश्चित समय सीमा के अंदर आय में पर्याप्त वृद्धि सुनिश्चित कर गरीबी रेखा से नीचे के सहायता प्राप्त परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाना ।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. स्वंसहायता समूह में संगठित होने योग्य बनाने के लिये ग्रामीण निर्धनों को एकजुट करने पर बल ।
2. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना - एक ऋण सह सब्सिडी योजना है जिसमें ऋण प्रमुख घटक है और सब्सिडी मात्र सहायक घटक है ।
3. मुख्य क्रियाकलापों के चयन में सहभागी नीति ।
4. प्रत्येक मुख्य क्रियाकलाप के लिए परियोजना नीति ।
5. उपयुक्त हर संभव सहायता सुनिश्चित करने के लिये क्रियाकलाप समूहों के विकास पर बल ।
6. आवर्ती निधि सहायता के माध्यम से समूहों का सुदृढ़ीकरण ।

7. परियोजना के अभिन्न अंग के रूप में सामूहिक प्रक्रियाओं और कौशल विकास में लाभार्थियों का प्रशिक्षण ।
8. बाजार की खोज, उत्पादों में सुधार/विविधीकरण, पैकेजिंग, बाजार सुविधाओं के सृजन आदि के माध्यम से विपणन सहायता ।
9. अप्राप्त महत्त्वपूर्ण कड़ी उपलब्ध कराकर ढांचागत विकास के लिए प्रावधान । ढांचागत विकास के लिए 20 प्रतिशत निधि निर्धारित है ।
10. स्वंसहायता समूहों के गठन और क्षमता निर्माण में गैर सरकारी संगठनों की सक्रिय भूमिका।
11. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिला एवं विकलांग जैसे उपेक्षित समूहों पर ध्यान देना ।
12. निश्चित संख्या में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम सुनिश्चित करने हेतु विशेष परियोजनाओं के लिए 15 प्रतिशत निधि का निर्धारण ।

निर्धनों का सामाजिक संगठन

(Social Organisation of Poorest in the poor)

यह कार्यक्रम उन्मूलन हेतु सामाजिक संगठन की प्रक्रिया के माध्यम से सबसे निचले स्तर पर निर्धनों के संगठन पर बल देता है । एक स्वंसहायता समूह में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के 10-20 व्यक्ति हो सकते हैं । एक व्यक्ति एक से अधिक समूह का सदस्य नहीं होना चाहिए । लघु सिंचाई योजनाओं, विकलांग व्यक्तियों तथा दुर्गम क्षेत्रों जैसे पहाड़ी, मरुभूमि एवं बिखरी आबादी वाले क्षेत्रों मे एक समूह में व्यक्तियों की संख्या 5-20 तक हो सकती है । हालांकि, यदि आवश्यक हुआ तो 20 प्रतिशत और विशिष्ट मामलों में 30 प्रतिशत तक गरीबी रेखा से ऊपर के सदस्य (सीमांत रूप से गरीबी रेखा से ऊपर और गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों के साथ निरन्तर रहते हों) एक समूह में शामिल हो सकते हैं । बशर्ते समूह के गरीबी रेखा के नीच सदस्य सहमत हों । प्रत्येक स्वंसहायता समूह में महिला सदस्यों को शामिल करने का प्रयास किया जाना चाहिए । प्रत्येक ब्लॉक में 50 प्रतिशत स्वंसहायता समूह अलग से महिलाओं के लिए होने चाहिए । सामूहिक क्रियाकलापों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए तथा क्रमिक रूप से अधिकांश वित्तपोषण स्वंसहायता समूहों के लिए होना चाहिए ।

समूह के गठन में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

(Role of NGO's in Organisation of Group)

- समूह के गठन के साथ उनकी क्षमता निर्माण में गैर-सरकारी संगठनों या समुदाय आधारित संगठनों को शामिल किया जाना चाहिए ।
- स्वंसहायता समूह के गठन और विकास के लिए गैर सरकारी संगठनों को चार किस्त में 10000/- रुपये प्रति समूह तक दिए जायेंगे ।

3.2 राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (NREGA-2005)

परिचय (Introduction) :

- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (NREGA) 2005 के जरिये यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि अगर किसी ग्रामीण परिवार के कोई वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं। तो एक वित्तीय वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाए । इस अधिनियम को प्रारम्भिक चरण में देश के 200 जिलों में लागू किया गया है। बाद में इस कानून को केन्द्र सरकार द्वारा अधिसूचित अन्य इलाकों में भी लागू कर दिया गया। यह कानून रोजगार के अधिकार को साकार करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इस कानून के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में आर्थिक और सामाजिक बुनियादी ढाँचा विकसित किया जायेगा जिससे लोगों को रोजगार के नियमित अवसर मिलेंगे।
- एनआरईजीए में प्रावधान है कि इस कानून के लागू होने के बाद छह माह में प्रत्येक राज्य सरकार को अपने-अपने स्तर पर ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना (आरईजीएस) तैयार करनी होगी। रोजगार गारंटी योजना का लक्ष्य रोजगार को कानूनी गारन्टी को साकार करने से है जिससे गांवों के ऐसे प्रत्येक परिवार को कम से कम 100 दिन गारन्टीशुदा रोजगार उपलब्ध कराया जाय जिसके वयस्क सदस्य इस अधिनियम की शर्तों के तहत अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है। प्रत्येक ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में इस अधिनियम की अनुसूची- I तथा II में उल्लेखित न्यूनतम मानकों का अनिवार्य रूप से पालन किया जाएगा।

उद्देश्य (Objectives)

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम-2005 के अधीन संचालित राजस्थान ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्तीय वर्ष के दौरान कम से कम 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध कराना है, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुरक्षा की स्थिति को बेहतर बनाया जा सके।

ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना के अन्य उद्देश्य यथा-रोजगार गारन्टी से सम्पदाओं का निर्माण करने, पर्यावरण की रक्षा करने, ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण, गांवों से शहरों की ओर पलायन पर अंकुश लगाने और सामाजिक सुनिश्चित करना भी है।

विशेषताएं (Characteristics) :

- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना अधिनियम-2005 के अधीन संचालित राजस्थान ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की मुख्य विशेषताएं निम्नानुसार है-
- योजना जिस क्षेत्र में लागू है, उस क्षेत्र के समस्त ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्य योजना मेंलाभ के पात्र होंगे।
- योजनान्तर्गत प्रत्येक ग्रामीण परिवार को एक वित्तीय वर्ष में न्यूनतम 100 दिवस के रोजगार के माध्यम से अपनी आजीविका का अधिकार होगा।
- ऐसे प्रत्येक ग्रामीण परिवार प्रत्येक वयस्क सदस्य को रोजगार दिया जाएगा जो अकुशल शारीरिक कार्य करने का इच्छुक हो।

- यह योजना पूर्ववर्ती मजदूरी रोजगार योजनाओं की तरह आपूर्ति आधारित योजना नहीं होकर एक मांग आधारित योजना हैं।
- यदि राज्य सरकार किसी परिवार की मांग पर उसे 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध कराने में किन्हीं कारणों से असफल रहती है तो वह बेरोजगार व्यक्ति को निर्धारित दरों के अनुसार परिवार के हकदारी के हिसाब से पात्र आवेदकों को मुआवजे का भुगतान करेगी।
- योजनान्तर्गत पंचायत राज संस्थाओं विशेष रूप से ग्राम पंचायत की विशेष भूमिका मानी गई है। इस योजनान्तर्गत ग्रामवासी स्वयं वार्ड या ग्राम सभा के माध्यम से योजनान्तर्गत अनुमत कार्यों में से अपने गांव के विकास के लिए कार्यों की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर कार्य कराने की अभिशंसा कर सकते हैं।
- योजनान्तर्गत रोजगार के आवंटन में महिलाओं को प्राथमिकता दिये जाने का प्रावधान है। कम से कम एक तिहाई महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराना आवश्यक है।
- योजना के नियोजन एवं क्रियान्वयन में ग्राम पंचायतों की विशेष भूमिका निर्धारित की गई है।
- योजना के क्रियान्वयन में ठेकेदारों को प्रतिबन्धित किया गया है।
- योजनान्तर्गत ऐसे कार्य जो मानव श्रम से संभव है ऐसे कार्यों को मशीनों से कराने के लिए प्रतिबन्धित किया गया है।
- योजनान्तर्गत कार्यस्थल पर छाया हेतु शेड, पेयजल, आवश्यक दवाईयां एवं क्रेज की व्यवस्था होना आवश्यक है।
- श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान उनके द्वारा संपादित टास्क के आधार पर किया जाता है।
- योजनान्तर्गत मजदूरों को सम्पादित कार्य की मजदूरी का भुगतान साप्ताहिक रूप से अथवा 15 दिवस की अवधि में करना अनिवार्य है।
- योजनान्तर्गत निर्धारित अवधि में भुगतान नहीं करने पर श्रमिक मजदूरी के भुगतान में हुए विलम्ब के लिए क्षतिपूर्ति का हकदार होगा।
- पुरूष एवं महिलाओं के लिए मजदूरी एक समान होगी।

3.3 सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)

परिचय (Introduction) :

- ग्रामीण क्षेत्रों में जरूरतमन्द लोगों को मजदूरी रोजगार के साथ-साथ खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना की घोषणा माननीय तत्कालीन प्रधानमंत्री महोदय द्वारा 15 अगस्त, 2001 को की गई थी। भारत सरकार के निर्देशानुसार जवाहर ग्राम समृद्धि योजना एवं सुनिश्चित रोजगार योजना को दिनांक 31.3.2002 तक सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना का भाग मानते हुए क्रियान्विति की गई। दिनांक 01.04.2002 से सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना भारत सरकार द्वारा विधिवत रूप से लागू की गई है। दिनांक 31.03.2004 तक यह योजना दो धाराओं के रूप में क्रियान्वित की जाती थी।

दिनांक 01.04.2004 से योजना की दोनों धाराओं को समाहित करते हुए एक योजना "सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना" कर दी गई है जिसे भारत सरकार द्वारा जारी नई मार्गदर्शिका के आधार पर लागू किया गया हैं।

उद्देश्य (Objectives) :

- कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार प्रदान करने के अलावा खाद्य सुरक्षा के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ स्वरूप की सामुदायिक, सामाजिक और आर्थिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना है। यह कार्यक्रम स्व-लक्षित स्वरूप का है, जिसमें महिलाओं, अनु. जातियों, अनु. जनजातियों और जोखिम भरे व्यवसायों से मुक्त कराये गये बच्चों के अभिभावकों को मजदूरी रोजगार मुहैया कराने पर विशेष जोर दिया जाता है।
- यह योजना केवल पंचायती राज संस्थाओं द्वारा ही क्रियान्वित की जाती है तथा वर्ष 2003-2004 तक दो चरणों में क्रियान्वित की गई। वर्ष 2004-05 से यह कार्यक्रम एक समेकित योजना के रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत जिला परिषद, पंचायत समिति और ग्राम पंचायती को भारत सरकार से आवंटित राशि में से क्रमश: 20:30:50 के आधार पर राशि का आवंटन किया जाता है। पंचायत का प्रत्येक स्तर कार्य योजना बनाने और योजना निष्पादित करने के लिये एक स्वतंत्र इकाई है।

जिला तथा पंचायत समिति दोनों स्तरीय वार्षिक आवंटन (खाद्यान्नों सहित) का 22.5 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के परिवारों की वैयक्तिक योजना के लिये निर्धारित है।

3.4 इन्दिरा आवास योजना (IAY)

परिचय (Introduction) :

- मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवास एक मूल आवश्यकता है और बेहतर जीवन यापन का आधार वह घर है जहाँ अच्छी सुविधाएं मिलती हों। अपना घर होने से व्यक्ति को समाज में पर्याप्त आर्थिक सुरक्षा और सम्मान मिलता है। मकान के स्वामित्व से बीपीएल परिवार का बुनियादी आत्मविश्वास बढ़ता है और उसमें प्रगति करने की इच्छा पैदा होती है जो गरीबी उपशमन के लिए बेहद जरूरी है। सरकार द्वारा आवास की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे भारत निर्माण कार्यक्रम में अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित किया गया है। भारत निर्माण पैकेज के अन्तर्गत अगले चार वर्षा के दौरान देश भर में 60 लाख आवासों के निर्माण की परिकल्पना की गई हैं यह आवास निर्माण कार्यक्रम इन्दिरा आवास योजना (आईएवाई) के माध्यम से कार्यान्वित की जानी है।
- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 2.59 लाख अतिरिक्त आवासों की कमी है। इसके अलावा हर वर्ष अतिरिक्त मकानों की आवश्यकता बढ़ जाती है। वर्ष2001-02 से वर्ष 2005-06 तक इंदिरा आवास योजना

के अन्तर्गत राज्य में लगभग 150 लाख आवासों का निर्माण कराया गया है। ग्रामीण गरीबों में आवासहीनता को समाप्त करने के लिए 3 वर्षों (2006-2009) के भारत निर्माण परिदृश्य में 1 लाख 20 हजार आवासों अर्थात् 2006-07 से प्रति वर्ष 40000 आवासों के निर्माण की आवश्यकता होगी। परन्तु भारत सरकार द्वारा वर्ष 2006-2007 में 34094 आवासों के निर्माण के लिए बजट प्रावधान किया है और इससे मौजूदा कार्य को दृष्टि में रखते हुए प्रति वर्ष लगभग 6000 मकानों की कमी रह जायेगी।

उद्देश्य (Objectives) :

- इन्दिरा आवास योजना का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, मुक्त बन्धुआ मजदूरों के सदस्यों तथा गैर अनुसूचित जाति / अनुसूचित जन जाति के गरीबी रेखा से नीचे के ग्रामीण लोगों को एक मुश्त वित्तीय सहायता देकर आवासीय इकाईयों के निर्माण या क्रमोन्नत में मदद करना हैं ।

इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत वित्तपोषण पद्धति केन्द्र और राज्य के बीच 75.25 के आधार पर है। वर्ष 2005-06 से आवंटन मानदण्ड को संशोधित करते हुए राज्य स्तर पर आवंटन के लिए आवास की कमी को 75 प्रतिशत महत्ता और गरीबी अनुपात को 25 प्रतिशत महत्ता दी जा रही है। जिलों में आवंटन करते समय आवास की कमी को 75 प्रतिशत महत्ता और अनुसूचित जाति एवं जनजाति घटक को 25 प्रतिशत महत्ता दी जाती है।

1 अप्रैल, 2004 से इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत निर्माण सहायता की अधिकतम सीमा मैदानी क्षेत्रों के लिए प्रति इकाई 25,000/- और पहाड़ी एवं दुर्गम क्षेत्रों के लिए 27,500/- रुपये प्रति इकाई है। राजस्थान राज्य में सभी जिलों में आवास निर्माण हेतु 25000/- रुपये की सहायता उपलब्ध कराई जा रही है। सभी क्षेत्रों के लिए, मरम्मत न किये जा सकने वाले कच्चे मकानों को पक्के एवं अर्द्ध पक्के मकानों में बदलने (Up gradation) के लिए अधिकतम सीमा 12,000/- रुपये है।

प्रमुख प्रावधान:

(क) वर्ष 1993-84 से योजना में गरीबी रेखा से नीचे की गैर-अनुसूचित जातियों और जनजातियों के ग्रामीण गरीबों को भी शामिल किया गया है, बशर्ते कि गैर अनुसूचित जाति एवं जनजाति को मिलने वाला लाभ इन्दिरा आवास योजना के आवंटन के 40 प्रतिशत से अधिक न हो। इन्दिरा आवास योजना 1.1.1996 से पृथक योजना बन गई है।

(ख) वर्ष 2006-07 से ग्राम पंचायतों को आवंटित लक्ष्यों के विपरीत स्वीकृतियां बी.पी.एल. सेन्सस-2002 के आधार पर तैयार की गई आई.ए.वाई. प्रतीक्षा सूची में वरीयता क्रम से किये जाने का प्रावधान किया गया है।

(ग) ग्रामीण क्षेत्रों में, मरम्मत न किये जा सकने वाले मकानों के उन्नयन की अत्यावश्यकता है। अत: 1.4.2004 से कुल निधियों के 20 प्रतिशत तक का उपयोग मरम्मत न किये जा सकने वाले कच्चे मकानों को पक्के एवं अर्द्ध पक्के मकानों में

बदलने और ग्रामीण आवास योजना के अन्तर्गत ऋण-सह-सब्सिडी योजना का लाभ ने वाले लाभार्थी को सब्सिडी प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। मरम्मत न किये जा सकने वाले कच्चे मकानों को पक्के एवं अर्द्ध पक्के मकानों में बदलने के लिए, प्रति इकाई 12,500/- रुपये की अधिकतम सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत अधिकतम 50,000/- रुपये का ऋण लिया जा सकता है ।

(घ) मकान को निरपवाद रूप से लाभार्थी परिवार की महिला सदस्य के नाम आवंटित किया जाना चाहिए। वैकल्पिक रूप से उसे पति और पत्नी दोनों के संयुक्त नाम से आवंटित किया जा सकता है तथापि, केवल उस स्थिति में पात्र बीपीएल परिवार के पुरूष को मकान आवंटित किया जा सकता है। जहां पात्र महिला सदस्य नहीं है एवं जीवित नहीं है। प्रत्येक आईएवाई मकान में सेनिटरी लैटरीन और धुंआ रहित चूल्हा और उपयुक्त ड्रेनेज की आवश्यकता है। आईएवाई मकान से अलग, लाभार्थी की जगह पर शौचालय का निर्माण किया जा सकता है। आवास का निर्माण करना लाभार्थी की ही जिम्मेदारी है। आईएवाई मकान निर्माण के लिए ठेकेदारों को शामिल करना पूर्ण रूप से निषेद्य है। आईएवाई मकान के लिए किसी विशेष डिजाइन का निर्धारण नहीं किया गया है। आईएवाई मकान के निर्माण हेतु डिजाइन, प्रौद्योगिकी, तकनीक और सामान का चयन करना लाभार्थी का विवेकाधिकार है।

प्राकृतिक आपदाओं के लिए अतिरिक्त निधियों का प्रावधान :

आपातकालीन स्थितियों जैसे दंगा, आगजनी और आग से पीड़ित व्यक्तियों को तत्काल एवं समय रहते राहत देने की सुविधा प्रदान करने के जिला स्तर पर जिला कलेक्टर को आवंटित आईएवाई (राज्यांश सहित) निधियों का उपयोग करने के लिए प्राधिकृत किया गया है अथवा वे अपने ही संसाधनों में से क्षतिग्रस्त मकानों के निर्माण हेतु पीड़ितों को सहायता दे और बाद में उसकी प्रतिपूर्ति करें। ऐसी सहायता की अधिकतम सीमा प्रति जिला 50 लाख रुपये हैं। राहत सहायता आईएवाई के मानदण्डों के अनुसार होगी। कुल आईएवाई आवंटन में से 5 प्रतिशत उपर्युक्त उल्लेखित स्थितियों से उत्पन्न अत्यावशयकताओं और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अपने हिस्से के रूप में रखी जाती है। अन्य आपदाओं के कारण क्षतिग्रस्त मकानों के मामले में, जिला प्रबन्धन पूर्व अनुमोदन के लिए 5 प्रतिशत आवंटन के अंतर्गत, राज्य सरकार के माध्यम से प्रस्तावों को अतिरिक्त सहायता हेतु भेज सकता है। इस संबंध में अतिरिक्त निधियों को भी केन्द्र और राज्य के बीच में 75 : 25 आधार पर बांटा जायेगा।

3.5 सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (MPLADP)

परिचय (Introduction) :

सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम वर्ष 1993-94 में प्रारंभ किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक सांसद को प्रति वर्ष अपने संसदीय क्षेत्र में क्षेत्र की आवश्यकता अनुसार सामुदायिक उपयोग के विकास कार्यों को क्रियान्वित कराये जाने हेतु 200.00 लाख रूपये आवंटित किये जाते हैं।

विशेषताएं (Characteristics) :

- राज्य में 25 लोकसभा एवं 11 राज्य सभा सदस्यों के क्षेत्रों में योजना क्रियान्वित की जा रही है।
- यह शत-प्रतिशत केन्द्रीय प्रवर्तित योजना हैं।
- राज्य के ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में लागू है।
- निर्माण कार्यों का क्रियान्वयन पंचायती राज अथवा स्थानीय स्वायत्तशाषी निकाय अथवा राज्य सरकार के सम्बन्धित विभाग अथवा रेपूटेड गैर सरकारी संस्था, जो जिला कलक्टर की निगाह में कार्य कराने में सक्षम हो, से कराया जा सकता हैं।
- इस योजनान्तर्गत आवृति व्यय हेतु राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता हैं।
- जिला स्तर पर उक्त कार्यक्रम के संचालन हेतु जिला परिषद (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) नोडल संस्था है।
- योजनान्तर्गत करवाये जाने वाले कार्यों के प्रस्ताव सांसद द्वारा अभिशंषित कर कलेक्टर को प्रस्तुत किये जाते हैं तत्पश्चात इन कार्यों के कार्यक्रम की दिशा-निर्देशानुसार जांच कर कार्य करवाये जाते हैं।
- सांसदों द्वारा देश के किसी भी भाग में प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़, चक्रवात, सुनामी भूकम्प, तूफान, अकाल आदि की स्थिति में अपने कोटे से 10.00 लाख रुपये तक की राशि कार्यों की अभिशंषा मार्गदर्शिका में अनुमत कार्यों हेतु की जा सकती है।
- देश में विकराल प्राकृतिक आपदा आने एवं भारत सरकार द्वारा अधिसूचित किये जाने पर सांसद प्रभावित जिले के लिये अधिकतम 50.00 लाख रुपये के कार्यों की अभिशंषा कर सकते है।

3.6 जलग्रहण विकास कार्यक्रम

परिचय (Introduction) :

- क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों, यथा समेकित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (IWP) सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) मरुभूमि विकास कार्यक्रम (DDP) को वर्ष 1994 तक उनके अपने अलग-अलग मार्गदर्शी सिद्धातों, मानदण्डों, वित्त पोषण पद्धति के आधार पर कार्यान्वित किया जा रहा था। हनुमंत राव समिति की सिफारिशों के आधार पर इन क्षेत्र विकास कार्यक्रमों को 1 अप्रैल 1995 से जलग्रहण विकास संबंधी समान मार्गदर्शी सिद्धांतों के अनुसार कार्याविन्त किया जा रहा है।
- जलग्रहण विकास संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांतों को सितम्बर 2001 में आगे और संशोधित किया गया था। संशोधित मार्गदर्शी सिद्धांतों में अधिक लचीलापन, पंचायती राज संस्थाओं के लिए विषय केन्द्रित भूमि, द्विमार्गी दृष्टिकोण, बहिर्गमन व्यवस्था (प्रोटोकोल), परियोजना कार्यान्वयन में अधिक सामुदायिक भागीदारी तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों, महिलाओं, भूमिहीन श्रमिकों, ग्रामीण दस्तकारों आदि को शामिल करते हुए स्व-सहायता समूहों के जरिये परियोजनापरांत रख- रखाव आदि की परिकल्पना की गई है।

जलग्रहण विकास संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांतों की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है-

- गांव की सार्वजनिक भूमि पर अधिक ध्यान देना।
- लाभों के बंटवारे में समानता।
- परियोजनाओं के कार्यान्वयन तथा परियोजनापरांत रख-रखाव के लिए गाँव स्तर पर संस्थागत सामुदायिक भागीदारी।
- स्व-सहायता समूहों तथा प्रयोक्ता समूहों (User Groups) के जरिये सतत् सम्पोषणीय ग्रामीण जीविका सहायता प्रणालियों पर जोर देना।
- एक महत्त्वपूर्ण संघटक के रूप में क्षमता निर्माण।
- निगरानी तथा कार्यान्वयन के लिए राज्य तथा जिला स्तर पर समिति प्रणालियां।
- जलग्रहण क्षेत्र के स्थानीय लोगों द्वारा विकेन्द्रीकरण रूप में आयोजना तैयार करना और निर्णय लेना।

3.7 मेवात क्षेत्रीय विकास योजना (MADP)

परिचय (Introduction) :

अलवर एवं भरतपुर जिले का मेव बाहुल्य क्षेत्र जो मेवात क्षेत्र के नाम से जाना जाता है, उसके विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा वर्ष 1987-88 से मेवात क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया।

उद्देश्य (Objectives) :

- इस योजना का मुख्य उद्देश्य मेवात क्षेत्र के विकास को गति देना तथा इस क्षेत्र के लोगों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर ऊंचा उठाना है।

विशेषताएँ (Characteristics) :

- यह कार्यक्रम राज्य के 2 मेव बाहुल्य क्षेत्र जिलों यथा अलवर एवं भरतपुर में क्रियान्वित किया जा रहा है। कार्यक्रम अलवर जिले की 8 मेव बाहुल्य पंचायत समितियों (लक्षमणगढ़, रामगढ़, तिजार, मुण्डावर, किशनगढ़बास, कठूमर, उमरेण एवं कोटकासिम) तथा भरतपुर की 3 पंचायत समितियाँ(नगर, डीग एवं कामां) में क्रियान्वित किया जा रहा है।
- योजना शत प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा घोषित है।
- योजनान्तर्गत करवाये जाने वाले कार्य क्षेत्र विशेष की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जिला स्तर से कार्य प्रस्ताव प्राप्त कर मेवात क्षेत्रीय विकास मंडल की सहमति की प्रत्याक्षा में मेवात कार्यकारी समिति द्वारा अनुमोदित किये जाने का प्रावधान है। जिला स्तर पर इस योजना के संचालन हेतु जिला परिषद को नोडल संस्था बनाया हुआ है।
- योजनान्तर्गत कराये जाने वाले कार्यों का पर्यवेक्षण, क्रियान्विति की समीक्षा एवं उसमें सुधार हेतु मार्गदर्शन देने के लिये मेवात क्षेत्रीय विकास मंडल का गठन किया हुआ है। मंडल अपने कार्यों का प्रभावपूर्ण रूप से सम्पादन कर सके, इस हेतु राज्य सरकार द्वारा दिनांक 19.01.2006 को मेवात विकास मंडल के अध्यक्ष का मनोनयन किया गया है।

3.8 विधायक स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (MILALADP)

परिचय (Introduction) :

राज्य सरकार द्वारा वर्ष 1999-2000 में 'विधायक स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम' नाम से योजना आरम्भ की गई है। योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1999-2000 में प्रत्येक विधायक महोदय 25.00 लाख रुपये की लागत के कार्य अभिशंषित करने लिये अधिकृत थे जिसे बढ़ाकर वर्ष 2000-2001 में प्रति विधायक 40 लाख रुपये किया गया एवं वर्ष 2001-2002 में यह राशि 60.00 लाख रुपये प्रति विधायक की गई।

उद्देश्य (Objectives) :

- योजना का मुख्य उद्देश्य राज्य की प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्थानीय विधायक महोदय की अभिशंषा पर जनोपयोगी परिसम्पत्तियों का निर्माण करवाना तथा क्षेत्रीय विकास में असंतुलन को दूर करना है।

विशेषताएँ (Characteristics)

- यह योजना शत प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा घोषित है।
- राज्य के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में लागू है।
- निर्माण कार्य पंचायती राज, स्थानीय स्वायत्त्तशाषी निकाय, राज्य सरकार के संबंधित विभागों द्वारा, विशेष विधि के तहत गठित निगम, बोर्ड एवं अभिकरण द्वारा कराया जा सकता है।
- स्वैच्छिक संस्थाओं/ट्रस्ट/पंजीकृत सहकारी संस्थाओं के द्वारा कार्यों के क्रियान्वयन कराने के लिये संस्था द्वारा कार्य की लागत का कम से कम 30 प्रतिशत अंश भागीदारी के रूप में देना आवश्यक है।
- वार्षिक आवंटन के 20 प्रतिशत राशि के प्रस्ताव योजनान्तर्गत पूर्व में निर्मित सामुदायिक उपयोग की परिसम्पत्तियों की मरम्मत कराने हेतु प्रस्तावित किये जा सकते हैं।
- जिला स्तर पर उक्त कार्यक्रम के संचालन हेतु जिला परिषद (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) नोडल संस्था है।

3.9 डांग क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम (DADP)

परिचय (Introduction) :

राज्य के पूर्वी एवं दक्षिणी-जिलों के दस्युओं से प्रभावित डांग क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक एवं आधारभूत सुविधाओं के विकास तथा अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डांग क्षेत्रीय विकास योजना को वर्ष 2005-06 के बजट में पुन: प्रारम्भ करने की घोषणा के अनुसरण में यह योजना प्रारम्भ की गई है।

उद्देश्य (Objectives) :

- दस्युओं से प्रभावित डांग क्षेत्र की आवश्यकता एवं क्षेत्र में जन-आकांक्षाओं के अनुरूपआर्थिक, सामाजिक एवं आधारभूत सुविधाओं के विकास के कार्य स्वीकृत कर रोजगार के अवसर सृजित करना।
- सामुदायिक परिसम्पत्तियों एवं अन्य आधारभूत भौतिक सम्पत्तियों का सृजन।
- स्थानीय समुदाय को रोजगार की उपलब्धता एवं उनके जीवन स्तर में सुधार।
- स्थानीय लोगों के परम्परागत कार्यों को विकसित करने एवं उनको जीवकोपार्जन के लिये संसाधन उपलब्ध कराना।

विशेषताएं (Characteristics) :

- डांग क्षेत्रीय विकास योजना राज्य के 8 जिलो यथा सवाईमाधोपुर, करौली, कोटा, बून्दी, बारा, धौलपुर, भरतपुर एवं झालावाड़ की 21 पंचायत समितियों की 357 ग्राम पंचायतों में क्रियान्वित की जा रही है।

योजना शत-प्रतिशत राज्य वित्त पोषित है।

- योजना डांग क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित की जा रही है।
- योजनान्तर्गत प्रमुख रूप से ऐसे कार्य प्रस्तावों को प्राथमिकता दी जाती है जो राज्य के अन्य योजनाओं के तहत कवर नहीं होते है एवं स्थानीय लोगों के आर्थिक उन्नयन के लिये लाभप्रद है।
- राज्य स्तर पर डांग क्षेत्रीय विकास मण्डल का गठन माननीय मंत्री महोदय, ग्रामीण विकास की अध्यक्षता में किया गया है जिसके माध्यम से कार्यक्रम की प्रगति की समीक्षा एवं कार्यक्रम के तहत कराये जाने वाले कार्य जिलो से प्राप्त प्रस्तावों के आधार पर स्वीकृत किये जाते हैं।

3.10 गुरू गोलवलकर जन भागीदारी विकास योजना (GGJVY)

परिचय (Introduction) :

ग्रामीण क्षेत्रों में विकास एवं रोजगार सृजन तथा सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण एवं रख-रखाव में स्थानीय समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए "गुरू गोलवलकर जन भागीदारी विकास योजना" वर्ष 2004-05 से प्रारंभ करने की माननीय मुख्यमंत्री द्वारा बजट भाषण में घोषणा की गयी हैं। "गुरू गोलवलकर जन भागीदारी विकास योजना" अन्तर्गत विकास कार्यों का चयन जन समुदाय की आवश्कयता के अनुसार किया जाकर कार्य करवाये जाते हैं।

उद्देश्य (Objectives) :

- गांव के विकास के लिए आवश्यक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण।
- रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन।
- स्थानीय समुदाय में स्वावलम्बन एवं आत्म निर्भरता को प्रोत्साहन।
- सामुदायिक परिसम्पत्तियों के निर्माण एवं रख-रखाव में स्थानीय समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहन।
- ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों के जीवन स्तर में सुधार।

विशेषताएं (Characteristics) :

- योजना राज्य के 32 जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में क्रियान्वित की जा रही हैं।
- यह योजना शत-प्रतिशत राज्य वित्त पोषित है।
- इस योजनान्तर्गत प्रस्तावित कार्य हेतु सामान्य क्षेत्र में कम से कम 30 प्रतिशत जन सहयोग एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति बाहुल्य क्षेत्र में जन सहयोग 20 प्रतिशत होना आवश्यक है। शेष राशि राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।

3.11 अंत्योदय अन्न योजना (AAY) :

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 25, दिसम्बर, 2000 को अपने 76वें जन्म-दिवस के अवसर पर दो नई योजनाओं का शुभारम्भ किया, इनमें से एक योजना निर्धनों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अंत्योदय अन्न योजना नाम से प्रारम्भ की गई इसके तहत देश के एक करोड़ निर्धनतम परिवारों को प्रति माह 35 किग्रा (1 अप्रैल, 2002 से) अनाज विशेष रियायती मूल्य पर उपलब्ध कराया जाता है, इससे एक वर्ष में सरकार पर 2300 करोड़ रुपये का अतिरिक्त खाद्य सब्सिडी का भार पड़ने का अनुमान है, इस योजना के तहत जारी किये जाने वाले गेहूँ व चावल का केन्द्रीय निर्गम मूल्य क्रमश: 2 रुपये व 3 रुपये किग्रा है इस योजना से एक करोड़ निर्धनतम परिवार (लगभग 5 करोड़ लोग) लाभान्वित होते हैं। यह योजना केन्द्रीय उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के तहत प्रारम्भ की गई है।

सरकार ने गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले 50 लाख अतिरिक्त परिवारों को इस योजना में शामिल करने के लिए अंत्योदय अन्न योजना का विस्तार किया गया है, जिनमें निम्नांकित प्राथमिकता समूहों से परिवारों को शामिल किया गया है (i) ऐसे परिवार जिनकी प्रमुख विधवा या मरणासन्न बीमार व्यक्ति या विकलांग व्यक्ति या 60 वर्ष या उससे अधिक आयु का ऐसा व्यक्ति हो, जिसके पास आजीविका का सुनिश्चित साधन अथवा सामाजिक सहारा न हो, (ii) विधवाएं या मरणासन्न व्यक्ति या विकलांग व्यक्ति या 60 वर्ष या अधिक आयु का व्यक्ति अथवा ऐसी अकेली महिला या अकेला पुरूष, जिसका कोई पारिवारिक या सामाजिक सहारा न हो; (iii) सभी मूल जनजातीय परिवार (विस्तारित अंत्योदय अन्न योजना के अन्तर्गत जनजातीय लाभार्थियों को राज्य अथवा केन्द्र शासित प्रदेश में जनजातिय आबादी के अनुपात में होना चाहिए)

राज्यों अथवा केन्द्रशासित प्रदेशों से कहा गया है कि वे इन अतिरिक्त परिवारों की पहचान करके उन्हें विशेष राशन कार्ड जारी करें ताकि वे अंत्योदय अन्न योजना का लाभ उठा सके।

वर्ष 2004-05 के लिए 60.25 लाख टन अनाज इस योजना के लिए आवंटित किया गया था, जिसमें से 54.38 लाख टन उठाया गया, इस तरह आवंटित अनाज का 90-95 प्रतिशत इस्तेमाल किया गया।

3.12 प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) :

ग्रामीण सड़कों द्वारा गाँवों को जोड़ने का उद्देश्य न केवल देश के ग्रामीण विकास में सहायक है, बल्कि इसे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में एक प्रभावी घटक स्वीकार किया गया है। स्वतन्त्रता के

5 दशकों के बाद भी लगभग 40% भारत के गाँव अच्छी सड़कों से जुड़े हुए नहीं है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 25 दिसम्बर, 2000 से यह योजना प्रारम्भ की गई।

इस योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

(i) योजना के पहले चरण में 1000 से अधिक आबादी वाले गाँवों को अगले तीन वर्षों (वर्ष 2003 तक) में अच्छी बारहमासी सड़कों (Good all weather roads) से जोड़ने की योजना।

(ii) दूसरे चरण में 500 से अधिक आबादी वाले गाँवों को सन् 2007 तक अच्छी, बारहमासी सड़कों से जोड़ने की घोषणा।

(iii) पहाड़ी राज्यों (पूर्वोत्तर, सिक्किम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर तथा उत्तराखण्ड) तथा रेगीस्तानी एवं जनजातीय क्षेत्रों (अनुसूची-V) में 250 या इससे अधिक आबादी वाले गाँवों को सड़कों से जोड़कर (नोट- वित्त मंत्री ने 28 फरवरी, 2005 को अपने बजट भाषण में ग्रामीण सड़कों की पहचान भारत निर्माण योजना के 6 घटकों में से एक के रूप में की थी और सरकार की ओर से लक्ष्य निर्धारित किया गया था कि वर्ष 2009 तक 1000 की आबादी (पर्वतीय या जनजाति वाले क्षेत्रों के मामले में 500 की आबादी) वाले सभी गाँवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ दिया जायेगा।

(iv) इस योजना पर 60,000 करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान।

(v) इस योजना का वित्तीय केन्द्रीय सड़क निधि से किये जाने की घोषणा अप्रैल 2000 में डीजल पर लगाए गए उपकरण की धनराशि का 50% भाग ग्रामीण सड़कों के विकास के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय को उपलब्ध कराया जाता है इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम के लिए विश्व बैंक तथा एशियाई बैंक की वित्तीय सहायता प्राप्त करने का भी प्रयास किया जा रहा है।

इस कार्यक्रम का प्राथमिक ध्यानाकर्षण नई सड़कों के निर्माण पर है। ताजा आकलन के अनुसार देश में 1.72 लाख बस्तियां ऐसी है जिन्हें प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत बारहमासी सड़कों से जोड़ा जाना है, जिनके लिए कुल 3,68,500 किमी लंबी सड़कों का निर्माण किया जाएगा। दिसम्बर 2007 तक 27382.24 करोड़ रुपये के व्यय से 142750 किमी लंबी सड़क का निर्माण कार्य पूरा हो चुका था। वर्ष 2008-09 के बजट में इस योजना के तहत 7530 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

3.13 सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) :

सूखे की संभावना वाले (Drought prone) चुनींदा क्षेत्रों में यह राष्ट्रीय कार्यक्रम 1973 में प्रारम्भ किया गया था, कार्यक्रम का उद्देश्य इन क्षेत्रों में भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम (Optimum) विकास करके पर्यावरण संतुलन को बहाल करना है 1 अप्रैल, 1995 से यह कार्यक्रम जलसंभर विकास के लिए तय किए गए साझा दिशा-निर्देशों के तहत क्रियान्वित किया जा रहा है। कार्यक्रम हेतु वित्त की व्यवस्था केन्द्र व संबंधित राज्य द्वारा 1

अप्रैल, 1999 से 75:25 के अनुपात में की जाती है। वर्तमान में यह कार्यक्रम 16 राज्यों के 182 जिलों के 972 ब्लॉकों में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ब्लॉकों की पहचान वर्ष 1994 में हनुमंत राज समिति की सिफारिशों के आधार पर की गई। इसके अधीन कुल क्षेत्र 7.46 लाख वर्ग किमी है। 1995-96 से 2004-05 तक इस योजना के अधीन 21,353 परियोजनाओं के अधीन 106.77 लाख हेक्टेयर क्षेत्र सम्मिलित किया जा चुका है और केन्द्र सरकार द्वारा 1742.40 करोड़ रुपये की राशि जारी की जा चुकी है। वर्ष 2005-06 के दौरान 3000 नए प्रोजेक्ट स्वीकृत किए गए जिनका कार्यान्वयन हरियाली योजना के तहत किया जायेगा। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है। योजना के सदस्य डॉ. जयन्त पाटिल की अध्यक्षता में सूखा क्षेत्रों के लिए 25 वर्षीय भावी योजना तैयार करने के निमित एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति का गठन किया गया है।

3.14 मरुभूमि विकास कार्यक्रम (DDP):

मरुभूमि (Deserts) को बढ़ने से रोकने, मरुभूमि में सूखे के प्रभावों को समाप्त करने, प्रभावित क्षेत्रों में पारिस्थितिकीय (Ecological) सन्तुलन बहाल करने व इन क्षेत्रों में भूमि की उत्पादकता तथा जल संसाधनों को बढ़ाने के उद्देश्य से मरुस्थल विकास कार्यक्रम चुने हुए क्षेत्रों में 1977-78 में प्रारम्भ किया गया था। यह कार्यक्रम शत-प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर कार्यान्वित किया जा रहा है। तथापि गर्म शुष्क क्षेत्रों (Hot arid areas) में निधियों (Funds) का विभाजन केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 75:25 के आधार पर किया जाता है। 1 अप्रैल, 1995 से यह कार्यक्रम जलसंभर विकास के लिए तय किये गए साझा दिशा-निर्देशों के तहत क्रियान्वित किया जा रहा है। 1995-96 में गर्म मरूस्थलीय क्षेत्रों में प्रति एक हजार का आवंटन किया गया, किंतु किसी भी जिले के लिए अधिकतम आवंटन 8.50 करोड़ रुपये का ही हो सकता था। इसी प्रकार ठण्ड मरूस्थलीय क्षेत्रों में हिमाचल प्रदेश में 2 से 3 करोड़ रुपये प्रति जिले तथा जम्मू-कश्मीर में 3 करोड़ रुपये प्रति जिले के आधार पर आवंटन किया गया था। यह कार्यक्रम अब देश के 7 राज्यों के 4.58 लाख वर्ग किमी क्षेत्रफल वाले 40 जिलों के 235 ब्लॉकों में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत खण्डों की पहचान हनुमंत राव समिति द्वारा वर्ष 1994-95 में की गई सिफारिशों के आधार पर की गई है। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाया जा रहा है। 1995-96 से 2004-05 तक इस योजना के अधीन स्वीकृत 11,476 परियोजनाओं के अन्तर्गत57.38 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को सम्मिलित किया जा चुका है और केन्द्र सरकार द्वारा 1301.01 करोड़ रुपये की राशि जारी की जा चुकी थी। 2005-06 में DDP के लिए 268 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया गया था, जिससे 10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को शामिल करने के लिए 2000 नई परियोजनाएं स्वीकृत की गई।

3.15 सारांश

संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही निरन्तर ग्रामीण के लिए समय-समय पर अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। वर्तमान समय में स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार

योजना, ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना, इंदिरा आवास योजना आदि प्रमुख है। राज्य सरकारों ने भी क्षेत्रीय समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए क्षेत्र एवं जाति के विकास के लिए कुछ विशेष कार्यक्रम प्रारम्भ किये यथा मेवात क्षेत्रीय विकास योजना, डांग क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम आदि है। सरकार द्वारा किये गये प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने निर्धन, असहाय, सीमान्त एवं लघु कृषक, भूमिहीन श्रमिक, वृद्ध एवं बेसहारा आदि के जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

3.16 शब्दावली

- ग्रामीण विकास
- जिला परिषद
- मुख्य कार्यकारी अधिकारी
- SGSY
- IRDP
- TRYSEM
- SITRA
- DKICRA
- SKIS
- NGO
- NREGA-2005
- SGRY
- IAY
- MPLADP
- MLALADP
- MADP
- DADP
- GGJVY

3.17 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नांकित का पूरा अर्थ लिखिए-
   (i) SGSY
   (ii) TRYSEM
   (iii) IAY
   (iv) NREGA
2. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के दो उद्देश्य लिखो।
3. गैर सरकारी संगठन से आप क्या समझते हैं ?
4. राष्ट्रीय रोजगार संगठन से आप क्या समझते हैं ?

5. MPLAD क्या है?
6. जलग्रहण विकास कार्यक्रम से आप क्या समझते हैं ?
7. मेवात क्षेत्र में कितने जिलें हैं ? उनके नाम लिखो।

3.18 स्व-परख प्रश्न

1. ग्रामीण विकास के नवीन विकास कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।
2. राजस्थान में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
3. टिप्पणी लिखो-
   (i) SGS
   (ii) IAY
   (iii) SGRY
   (iv) DADP

3.19 संदर्भ ग्रंथ

1. स्वामी-गुप्ता, ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2008
2. रूद्र, दत्त, सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली 2008
3. माथुर, यादव, कटेवा, माथुर, मिश्रा, ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, वाइड़ विजन, जयपुर 2005
4. लक्ष्मी नारायण नाथुरामका, भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2007
5. मिश्र-पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिसिंग हाउस, मुम्बई, 2008
6. भारत, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2006-07
7. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार वित्त मंत्रालय (आर्थिक प्रभाग) नई दिल्ली, 2006-07
8. आर्थिक समीक्षा, राजस्थान सरकार आर्थिक एवं सांख्यिकीय विभाग, जयपुर 2007-08
9. भारतीय अर्थव्यवस्था प्रतियोगिता दपर्ण, दिल्ली, 2008
10. वार्षिक प्रतिवेदन, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, 2008

इकाई-4 : भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि
(Agriculture in Indian Economy)

इकाई की रूपरेखा :

4.1 परिचय

4.2 भारत में कृषि विकास

4.3 भारत की प्रमुख फसलें एवं उनका उत्पादन क्षेत्र

4.4 भारतीय कृषि की विशेषताएँ

4.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व

4.6 भारतीय कृषि की समस्याएँ तथा पिछड़ेपन के कारण

4.7 भारतीय कृषि की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 स्व-परख प्रश्न

4.11 व्यावहारिक प्रश्न

4.12 संदर्भ ग्रंथ

4.1 परिचय (Introduction)

प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान रही हैं। उस समय देश में विस्तृत कृषि पद्धति प्रचलित थी। औपनिवेशिक शासन काल में कृषि क्षेत्र में न तो संवृद्धि हुई और न ही समता रह पाई। स्वतंत्र भारत के नीति-निर्माताओं को इन मुद्दों पर विचार करना पड़ा तथा उन्होंने भू-सुधारों तथा चमत्कारी बीजों के प्रयोग द्वारा भारतीय कृषि में एक क्रांति का संचार किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की भू-धारण पद्धति में जमींदार-जागीरदार आदि का वर्चस्व था। ये लोग भूमि में कोई सुधार किये बिना, मात्र लागत की वसूली किया करते थे। कृषि में समानता लाने के लिए भू-सुधारों की आवश्यकता हुई, जिसका मुख्य ध्येय जोतों के स्वामित्व में परिवर्तन करना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के एक वर्ष बाद ही देश में बिचौलियों के उन्मूलन तथा वास्तविक कृषकों को ही भूमि का स्वामी बनाने जैसे कदम उठाये गये।

बिचौलियों के उन्मूलन का नतीजा यह था कि लगभग 200 लाख काश्तकारों का सरकार से सीधा संपर्क हो गया तथा वे जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण से मुक्त हो गए। भू-स्वामित्व से उन्हें उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन मिला। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु बिचौलियों के उन्मूलन कर समानता के लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाई। कानून की कमियों का लाभ उठाकर कुछ भूतपूर्व जमींदारों ने कुछ क्षेत्रों में बहुत बड़े-बड़े भूखंडों पर अपना स्वामित्व बनाए रखा। कुछ मामलों में काश्तकारों को बेदखल कर दिया गया और भू-स्वामियों ने अपने किसान भू-स्वामी (वास्तविक कृषक) होने का दावा किया। कृषकों को भूमि का स्वामित्व

मिलने के बाद भी निर्धनतम कृषि श्रमिकों (जैसे बटाईदार तथा भूमिहीन श्रमिक) को भूमि-सुधारों से कोई लाभ नहीं हुआ। अधिकतम भूमि सीमा निर्धारण कानून में भी अनेक बाधाएँ आई। बड़े जमींदारों ने इस कानून को न्यायालयों में चुनौती दी, जिसके कारण इसे लागू करने में देर हुई। इस अवधि में वे अपनी भूमि निकट संबंधियों आदि के नाम कराकर कानून से बच गये। कानून में भी अनेक कमियाँ थी, जिनके द्वारा बड़े जमींदारों ने भूमि पर अधिकार बनाए रखने के लिए लाभ उठाया। केरल और पश्चिम बंगाल की सरकारें वास्तविक किसान को भूमि देने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थीं, इसी कारण इन प्रांतों में भू-सुधार कार्यक्रमों को विशेष सफलता मिली। दुर्भाग्यवश, अन्य प्रांतों की सरकारों में इस स्तर की प्रतिबद्धता नहीं थी, इसीलिए आज तक जोतों में भारी असमानता बनी हुई है।

वर्तमान में भी भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि और उससे संबंधित क्षेत्रों का योगदान लगभग 18 प्रतिशत हैं। जबकि देश की लगभग 65-70 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए इसी पर निर्भर करती है। हालांकि कृषि उत्पादन मानसून पर भी निर्भर करता है, क्योंकि लगभग 60 प्रतिशत कृषि-क्षेत्र मानसून पर निर्भर है। समूचे देश के संदर्भ में दीर्घावधि औसत के अनुसार 1 जून से 30 सितंबर तक मानसून की बारिश 99 प्रतिशत हुई। 5 मई 2006 को जारी खाद्यान्न और व्यवसायिक फसलों के तृतीय अग्रिम अनुमानों के अनुसार वर्ष 2005-06 के दौरान 21.001 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन का अनुमान है। जो कि वर्ष 2004-05 के खाद्यान्न उत्पादन 1.165 करोड़ टन का 5.9 प्रतिशत अधिक है। 2004-05 की तुलना में चावल के उत्पादन का अनुमान 8.988 करोड़ टन रखा गया था। यह पिछले साल की तुलना में 67.5 लाख टन और 8.1 प्रतिशत अधिक है। वर्ष 2005-06 के दौरान गेहूं का 7.154 करोड़ टन का उत्पादन का अनुमान रखा गया था जो कि पिछले वर्ष की तुलना में 29 लाख टन और 4.2 प्रतिशत अधिक है। मोटे अनाज की पैदावार 3.467 करोड़ टन है जो कि पिछले वर्ष की तुलना में 12.1 लाख टन यानी 3.6 प्रतिशत अधिक है । इस वर्ष बाजरे की पैदावार 83.1 लाख टन होने की उम्मीद है जो कि पिछले वर्ष के 79.3 लाख टन के उत्पादन से 4.8 प्रतिशत अधिक है। मकई की पैदावार 1.489 करोड़ आंकी गई है जो कि पिछले वर्ष से 71 हजार टन यानी 5 प्रतिशत अधिक है। दलहनों की कुल अनुमानित पैदावार 1.392 करोड़ टन है जो कि पिछले साल के उत्पादन 1.313 करोड़ टन यानी 6 प्रतिशत अधिक है।

वर्ष 2005-06 में तिलहन की पैदावार 2.670 करोड़ टन आंकी गई है जो कि पिछले वर्ष की तुलना में 23.4 लाख और 9.6 प्रतिशत अधिक है। वर्ष 2005-06 में कपास की अनुमानित पैदावार 1.893 करोड़ गांठ (प्रत्येक गांठ का वजन 170 किलोग्राम होता है) रखी गई थी, जो पिछले वर्ष की तुलना में 25.0 लाख गांठ अधिक यानी पिछले वर्ष से 15.2 प्रतिशत अधिक है।

वर्ष 2005-06 में पटसन और मेस्ता का अनुमानित उत्पादन 1.083 गांठें (प्रत्येक गांठ का वजन 180 किलोग्राम होता है) रखा गया था जो पिछले वर्ष के उत्पादन से 1.027 करोड़ गांठें और 5.5 प्रतिशत अधिक है। इस वर्ष गन्ने का उत्पादन 27.316 करोड़ टन होने का अनुमान

है, जो पिछले साल की तुलना में 3.607 करोड़ टन और पिछले वर्ष के उत्पादन 23.709 करोड़ टन से 15.2 प्रतिशत अधिक है।

4.2 भारत में कृषि विकास (Agriculture Development in India)

भारतीय नियोजन में कृषि विकास को आधारभूत दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार किया गया। देश की तत्कालीन खाद्यान्न समस्या को ध्यान में रखकर ही पहली योजना, जो आकार में बहुत छोटी थी, में कृषि क्षेत्र के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। यह योजना अपने वांछित उद्देश्य को पूरा करने में सफल रही। खाद्यान्न उत्पादन लक्ष्य से अधिक रहा और खाद्यान्न आयात में कमी दर्ज की गई, लेकिन दूसरी और तीसरी योजना में प्राथमिकताएं भारी उद्योगों के विकास एवं आयात प्रतिस्थापन की ओर मोड़ दी गई जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि इस सीमा तक पिछड़ गई कि तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष 1965-66 में देश के सामने गम्भीर खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया जिसके समाधान के लिए भारत को अमरीका के PL-480 कानून के अन्तर्गत गेहूं का आयात करना पड़ा। भारत में बढ़ते खाद्यान्न के इस आयात ने देश को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक रूप से कमजोर बनाया और अमरीका ने गेहूं के इसी आयात को लेकर देश की नीतियों में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। चीन युद्ध (1962), पाक युद्ध (1965) एवं भयंकर सूखे (1965-66) से जर्जर हुई अर्थव्यवस्था के कारण चौथी पंचवर्षीय योजना समय पर आरम्भ नहीं हो पाई, किन्तु खाद्यान्न संकट के समाधान के लिए तीन वार्षिक योजनाओं (1966-69) में कृषि विकास को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए कृषि उत्पादकता वृद्धि की नवीन रणनीति का सूत्रपात किया गया जिसे 'हरित क्रान्ति' (Green Revolution) के नाम से जाना जाता है। इस 'हरित क्रान्ति आन्दोलन' के उद्गम से भारतीय कृषि अपनी परम्परागत स्थिति से तकनीकी परिवर्तनों की दिशा में मुड़ गई तथा भारतीय कृषि में एक नए युग की शुरुआत हुई।

भारत में कृषि विकास की दो महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं

नियोजनकाल में भारत के कृषि विकास को दो अवस्थाओं में बांटा जा सकता है-

(क) 1950-51 से 1965-66 तक की अवधि-इस अवधि में भारतीय कृषि मुख्यत: परम्परागत पद्धति पर आधारित रही जिसके प्रमुख प्रयासों में सम्मिलित हैं-

- संस्थागत सुधारों को वरीयता।
- सामुदायिक विकास कार्यक्रम (2 अक्टूबर, 1952) द्वारा प्रसार एवं सामुदायिक विकास में स्थानीय उपलब्ध संसाधनों एवं जन सहयोग से कृषि उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास।
- जिला सघन कृषि कार्यक्रम द्वारा कुछ चुनिन्दा स्थानों पर कुछ विशेष फसलों के उत्पादन वृद्धि के प्रयास।
- कम उत्पादन क्षमता वाले परम्परागत बीजों का प्रयोग।
- कम उत्पादकता के कारण खाद्यान्न संकट।
- सीमित सिंचाई सुविधाएं एवं कृषि मुख्यत: मानसून पर आधारित।

- खाद्यान्न का बढ़ता आयात (1960-61(3.5 मिलियन टन), 1965-66(10.36 मिलियन टन) ।

(ख) 1966-67 के बाद की अवधि-इस अवधि में भारतीय कृषि में संरचनात्मक परिवर्तन हुए जिनमें प्रमुख हैं-

- HYV बीजों का प्रयोग।
- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग।
- कीटनाशक दवाओं का प्रयोग।
- कृषि यन्त्रीकरण को बढ़ावा।
- सिंचाई की लघु एवं मध्यम परियोजनाओं का विस्तार।
- भूमि संरक्षण।
- कृषि उत्पादों के समर्थन मूल्य द्वारा उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रोत्साहन।
- कृषि शोध एवं भूमि परीक्षण को बढ़ावा।
- कृषि विपणन सुविधाओं का विस्तार ।
- प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं द्वारा किसानों को कृषि विकास के प्रयासों में सम्मिलित होने के लिए अभिप्रेरण।

हरित क्रांति :

स्वतंत्रता के समय देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी। इस क्षेत्र में उत्पादकता बहुत ही कम थी, क्योंकि पुरानी प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता था और अधिसंख्य किसानों के पास आधारित संरचना का भी नितांत अभाव था। भारत की कृषि मानसून पर निर्भर है। यदि मानसून स्तर कम होता था तो किसानों को कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें सिंचाईं सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। यह सुविधा कुछ ही किसानों के पास थी। औपनिवेशिक काल का कृषि गतिरोध हरित क्रांति से स्थायी रूप से समाप्त हो गया। इसका तात्पर्य **उच्च पैदावार वाली किस्मों के बीजों (HYV)** के प्रयोग से है, विशेषकर गेहूँ तथा चावल उत्पादन में वृद्धि से। इन बीजों के प्रयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों, कीट नाशकों तथा निश्चित जल पूर्ति की भी आवश्यकता थी। इन आगतों का सही अनुपात में होना भी अति आवश्यक है। बीजों की अधिक पैदावार वाली किस्मों से लाभ उठाने वाले किसानों को सिंचाई की विश्वसनीय सुविधाओं और उर्वरकों तथा कीट नाशकों आदि की खरीददारी के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी। अत: हरित क्रांति के पहले चरण में (लगभग 1960 के दशक के मध्य से 1970 के दशक के मध्य तक) HYV बीजों का प्रयोग पंजाब, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे अधिक समृद्ध राज्यों तक ही सीमित रहा। इसके अतिरिक्त, HYV बीजों का लाभ केवल गेहूं पैदा करने वाले क्षेत्रों, को ही मिल पाया।

हरित क्रांति के द्वितीय चरण (1970 के दशक के मध्य से 1980 के दशक के मध्य तक) में HYV बीजों की प्रौद्योगिकी का विस्तार कई राज्यों तक पहुँचा और कई फसलों को लाभ हुआ। इस प्रकार, हरित क्रान्ति प्रौद्योगिकी के प्रसार से भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। अब हम अपने राष्ट्र की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिका या किसी अन्य देश की कृपा पर निर्भर नहीं है।

यदि किसान बाजार में बेचने की जगह इस उत्पादन का अधिकांश भाग स्वयं ही उपभोग करे, तो अधिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था पर कुल मिलाकर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि किसान पर्याप्त मात्रा में उत्पादन बाजार में बेच सकें, तो अधिक उत्पादन का निश्चय ही अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। किसानों द्वारा उत्पादन का बाजार में बेचा गया अंश ही 'विपणन अधिशेष' कहलाता है। प्रसिद्ध **अर्थशास्त्री सी.एच. हनुमंथ राव** का कहना है कि सौभाग्यवश हरित क्रांति काल में किसान गेहूँ और चावल के अतिरिक्त उत्पादन का अच्छा खासा भाग बाजार में बेच रहे थे। इसके फलस्वरूप खाद्यानों की कीमतों में, उपभोग की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा, कमी आई। अपनी कुल आय के बहुत बड़े प्रतिशत का भोजन पर खर्च करने वाले निम्न आय वर्गों को कीमतों में इस सापेक्षिक कमी से बहुत लाभ हुआ। हरित क्रांति के कारण सरकार पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त कर सुरक्षित स्टॉक बना सकी जिसे खाद्यान्नों की कमी के समय प्रयोग किया जा सकता था।

यद्यपि हरित क्रांति से देश बहुत लाभान्वित हुआ है पर यह प्रोद्योगिकी पूरी तरह निरापद नहीं है। एक जोखिम यह था कि इससे छोटे और बड़े किसानों के बीच असमानताएँ बढ़ने की संभावनाएँ थी, क्योंकि केवल बड़े किसान अपेक्षित आगतों (Inputs) को खरीदने में सक्षम थे, जिससे उन्हें हरित क्रांति का अधिकांश लाभ प्राप्त हो जाता था। इसके अतिरिक्त, इन फसलों में कीट नाशकों के आक्रमण की भी संभावनाएँ अधिक होती है। ऐसी दशा में, इस प्रोद्योगिकी को अपनाने वाले छोटे किसानों की फसल का सब कुछ नष्ट हो जाता है। सौभाग्यवश, सरकार द्वारा किये गये कुछ उपायों के कारण ये आशंकाएँ सत्य साबित नहीं हुई। सरकार ने निम्न ब्याज दर पर छोटे किसानों को ऋण दिये और उर्वरकों पर आर्थिक सहायता दी, ताकि छोटे किसानों को ये आवश्यक आगत उपलब्ध हो सकें। छोटे किसानों को, इन आगतों की प्राप्ति से छोटे खेतों की उपज और उत्पादकता भी समय के साथ बड़े खेतों की पैदावार के बराबर हो गई। इस प्रकार, हरित क्रांति से छोटे-बड़े सभी किसानों को लाभ मिला। सरकार द्वारा स्थापित अनुसंधान संस्थानों की सेवाओं के कारण, छोटे किसान की जोखिम भी कम हो गई, जो कीट नाशकों के आक्रमण से उनकी फसलों की बर्बादी का कारण थे। यदि सरकार ने इस प्रौद्योगिकी का लाभ छोटे किसानों को उपलब्ध कराने के लिए व्यापक प्रयास नहीं किये होते, तो इस क्रांति का लाभ केवल धनी किसानों को ही मिलता।

आर्थिक सहायता (Subsidy) पर बहस :

इस बात से तो सभी सहमत हैं कि किसानों द्वारा सामान्यत: छोटे किसानों द्वारा विशेष रूप से नई HYV प्रोद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु आर्थिक सहायता दी जानी आवश्यक थी। किसान प्राय: किसी भी नई प्रौद्योगिकी की परख के लिये आर्थिक सहायता आवश्यक थी। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक बार प्रौद्योगिकी का लाभ मिल जाने तथा उसके व्यापक प्रचलन के बाद यह धीरे-धीरे समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है। यही नहीं, यद्यपि, आर्थिक सहायता का ध्येय तो किसानों को लाभ पहुँचाना हैं, किंतु उर्वरक-पर दी जाने वाली सहायता का लाभ बड़ी मात्रा में प्राय: उर्वरक उद्योग तथा अधिक समृद्ध क्षेत्र के किसानों को ही पहुँचता है। अत: यह तर्क दिया जाता है कि उर्वरकों पर आर्थिक

सहायता जारी रखने का कोई लाभ नहीं होता और सरकारी कोष पर अनावश्यक भारी बोझ पड़ता है। दूसरी ओर कुछ विशेषज्ञों का मत है कि कृषि एक बहुत ही जोखिम भरा व्यवसाय है। अधिकांश किसान बहुत गरीब है और आर्थिक सहायता समाप्त करने से वे अपेक्षित आगतों का प्रयोग नहीं कर पाएंगे। आर्थिक सहायता समाप्त करने से गरीब और अमीर किसानों के बीच असमानता और बढ़ेगी तथा समता के लक्ष्य का उल्लंघन होगा। इन विशेषज्ञों का तर्क है कि यदि सहायता से बड़े किसानों तथा उर्वरक उद्योग को अधिक लाभ हो रहा है, तो सही नीति आर्थिक सहायता की समाप्त करना नहीं बल्कि ऐसे कदम उठाना है जिनसे कि केवल निर्धन किसानों को ही इनका लाभ मिल सके।

1960 के दशक के अंत तक देश में कृषि उत्पादकता की वृद्धि से भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया। यह निश्चय ही गौरवपूर्ण उपलब्धि रही है। इसके बावजूद, नकारात्मक पहलू यह रहा है कि 1990 तक भी देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी थी। अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि जैसे-जैसे देश सम्पन्न होता है, सकल घरेलू उत्पाद में, कृषि के योगदान में और उस पर निर्भर जनसंख्या में पर्याप्त कमी आती है। भारत में 1950-90 की अवधि में यद्यपि जी.डी.पी. में कृषि के अंशदान में तो भारी कमी आई है, पर कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अनुपात में नहीं (जो 1950 में 67.50 प्रतिशत थी और 1990 तक घटकर 64.9 प्रतिशत ही हो पाई) इस क्षेत्र में इतनी उत्पादन वृद्धि तो न्यूनतम श्रम के प्रयोग द्वारा भी संभव थी, फिर इस क्षेत्र में इतनी बड़ी संख्या में लोगों के लगे रहने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यही है कि उद्योग क्षेत्र में रोजगार के अवसर सीमित है।

4.3 भारत की प्रमुख फसलें एवं उनका उत्पादन क्षेत्र:

- **गेहूं-** उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, उत्तराचंल तथा गुजरात।
- **चावल-** पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार,तमिलनाडु, उड़ीसा एवं असम।
- **बाजरा-** राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक एवं मध्यप्रदेश।
- **जौ-** उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार एवं पंजाब।
- **चना व दालें-** मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, पंजाब एवं कर्नाटक।
- **मक्का-** आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, कनार्टक, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पंजाब।
- **तिलहन-** गुजरात, मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल।
- **मूंगफली-** गुजरात, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश (मूंगफली उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है)
- **चाय-** असम, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, केरल, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश।
- **कहवा-** कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल।

- **तम्बाकू-** आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु एवं कर्नाटक।
- **गन्ना-** उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार एवं गुजरात।
- **कपास-** गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, पंजाब, कर्नाटक, राजस्थान एवं तमिलनाडु।
- **जूट-** पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, असम, मेघालय एवं उड़ीसा।
- **अफीम-** उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर।
- **रबड़-** केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं अण्डमान-निकोबार द्वीपसमूह में मुख्य रूप से पैदा होती है।(भारत की 90 प्रतिशत रबड़ केरल में पैदा होती है।)
- **मसाले-** (काली मिर्च)-केरल तथा तमिलनाडु, (लाल मिर्च)- आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, एवं बिहार, (छोटी इलायची)- केरल, कर्नाटक एवं तमिलनाडु (लौंग)-तमिलनाडु एवं केरल, (हल्दी)- आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र, (सुपारी)-कर्नाटक, केरल, असम एवं पश्चिम बंगाल।
- **काजू-** केरल, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, गोवा एवं उड़ीसा।
- **सन-** आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश।
- **रेशम-** कर्नाटक, कश्मीर, असम एवं पश्चिम बंगाल।

ग्रामवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में स्वावलम्बी थे। जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण स्वतन्त्रता के समय से ही खाद्यान्नों की कमी महसूस होनी शुरू हो गई थी। खाद्यानों का भारी मात्रा में प्रतिवर्ष आयात किये जाने के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई। कृषि विकास के लिए देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सघन कृषि योजना, उन्नत बीजों का आविष्कार एवं उपयोग, उर्वरकों व कीटनाशी दवाईयों का अधिक उत्पादन एवं उनका उपयोग, कृषि की उन्नत विधियों का आविष्कार, लघु एवं सीमान्त कृषक विकास योजनाएँ, कृषि क्षेत्र में आवश्यक ऋण की उपलब्धि हेतु बैंकों का राष्ट्रीयकरण, कृषि बीमा आदि कार्यक्रम शुरू किये गये। कृषि विकास के इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप देश में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन देश अनेक कृषि उत्पादों के उत्पादन में आत्म-निर्भर नहीं हो सका। भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी कृषि क्षेत्र में अन्य विकसित देशों के समान प्रगति नहीं कर सका। इसका प्रमुख कारण भारतीय कृषि की अपनी ही कुछ विशेषताओं का होना है।

4.4 भारतीय कृषि की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Agriculture)-

भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. जोतों के औसत आकार में कमी एवं जोतों की संख्या में वृद्धि-

भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषता जोत की इकाइयों की संख्या का बहुत अधिक होना एवं जोतों के औसत आकार का कम होना है। कृषि जनगणना 1990-91 के अनुसार देश में कार्यशील जोतों की संख्या बढ़कर 106.64 मिलियन हो गई। इस अवधि में प्रति जोत औसत क्षेत्रफल 2.28 हैक्टर से कम होकर 1.55 हैक्टर ही रह गया। देश में जोतों के आकार के अनुसार कार्यशील जोतों की संख्या व उनके अन्तर्गत क्षेत्रफल की तालिका 4.1 व 4.2 के द्वारा दर्शाया गया है।

सारणी 4.1

भारत में कार्यशील जोतों की संख्या

(संख्या मिलियन में)

जोत का आकार	**1970-71 कृषि जनगणना**	**1976-77 कृषि जनगणना**	**1980-81 कृषि जनगणना**	**1985-86 कृषि जनगणना**	**1990-91 कृषि जनगणना**
1. सीमान्त जोत (एक हैक्टर से कम)	35.68 (50.6)	44.52 (54.6)	50.12 (56.4)	56.15 (57.8)	63.39 (59.4)
2. लघु जोत(1 से 2 हैक्टर)	13.43 (19.1)	14.73 (18.1)	16.07 (18.1)	17.92 (18.5)	20.09 (18.8)
3. अर्द्ध मध्यम जोत(4 से 10 हैक्टर)	10.68 (15.2)	11.67 (14.3)	12.45 (14.0)	13.25 (13.6)	13.92 (13.1)
4. मध्यम जोत(4 से 10 हैक्टर)	7.93 (11.3)	8.21 (10.0)	8.07 (9.1)	7.92 (8.1)	7.58 (7.1)
5. दीर्घ जोत(10 हैक्टर से अधिक)	2.77 (3.9)	2.44 (3.0)	2.17 (2.4)	1.92 (2.0)	1.65 (1.6)
कुल जोत संख्या	**70.49 (100)**	**81.57 (100)**	**88.88 (100)**	**97.16 (100)**	**106.64 (100)**

टिप्पणी : कोष्ठक में दिये आँकड़ें कुल जोत संख्या का प्रतिशत है।

स्रोत: Indian Agriculture in Brief, Various Issues, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi.

देश में दो हैक्टर क्षेत्र तक की जोते कुल जोत संख्या का 78.2 प्रतिशत है तथा इनके पास कुल कृषित क्षेत्र का मात्र 32.4 प्रतिशत भाग ही है। दूसरी ओर 8.7 प्रतिशत दीर्घक्षेत्र की जोतों (4 हैक्टर से अधिक) के पास कुल कृषित क्षेत्र का 44.4 प्रतिशत भाग है। देश में मात्र 1.6 प्रतिशत जोतों का आकार 10 हैक्टर क्षेत्र से अधिक है, लेकिन इनके पास कुल भूमि का 17.3 प्रतिशत भाग है भारत में जोत आकार के अनुसार कार्यशील जोतों की संख्या एवं उनके अन्तर्गत क्षेत्रफल के असमानता खाद्यानों के उत्पादन वृद्धि में प्रमुख बाधक है। देश में विभिन्न

भूमि-सुधार कार्यक्रम समय-समय पर अपनाए गए, लेकिन भू-स्वामित्व का यह असमान वितरण आज भी विद्यमान है।

वर्ष 1970-71 की कृषि जनगणना की तुलना में वर्ष 1980-81 वर्ष 1985-86 एवं वर्ष 1990-91 की कृषि जनगणना में सभी आकार की जोतों (दीर्घ एवं मध्यम जोत के अतिरिक्त) की संख्या में वृद्धि हुई है, लेकिन यह वृद्धि सर्वाधिक सीमांत जोत के अन्तर्गत हुई है। पिछले 20 वर्षों में कुल 36.15 मिलियन जोत संख्या में वृद्धि हुई है, इनमें से 26.71 मिलियन जोतों की वृद्धि सीमांत जोतों की संख्या में हुई है।

सारणी 4.2

भारत में कार्यशील जोतों के अन्तर्गत क्षेत्रफल

(क्षेत्रफल मिलियन हैक्टर में)

जोत का आकार	**कार्यशील जोतो के अन्तर्गत क्षेत्रफल (कृषि जनगणना के आधार पर)**					**जोत का औसत आकार (हैक्टर में)**	
	1970-71	1976-77	1980-81	1985-86	1990-91	1985-86	1990-91
1. सीमान्त जोत (1 हैक्टर से कम)	14.56 (9.0)	17.5 (10.7)	19.74 (12.13)	22.04 (13.4)	24.89 (15.0)	0.39	0.40
2. लघु जोत (1 से 2 हैक्टर)	19.28 (11.9)	20.90 (12.8)	23.00 (14.13)	25.71 (15.6)	28.83 (17.4)	1.43	1.44
3. अर्द्ध मध्यम जोत (4 से 10 हैक्टर)	30.0 (18.5)	32.43 (19.9)	34.53 (21.22)	36.67 (22.3)	38.38 (23.2)	2.77	2.76
4. मध्यम जोत (4 से 10 हैक्टर)	48.24 (29.7)	49.63 (30.4)	48.31 (29.68)	47.14 (28.6)	44.75 (27.1)	5.96	5.90
5. दीर्घ जोत (10 हैक्टर से अधिक)	50.06 (30.0)	42.87 (26.2)	32.17 (22.84)	33.0(20.1)	28.66 (17.3)	17.21	17.33

कुल जोत क्षेत्रफल	**162.14 (100)**	**163.34 (100)**	**162.75 (100)**	**164.56 (100)**	**165.51 (100)**	**1.69**	**1.55**

टिप्पणी : कोष्ठक में दिए गए आँकड़े कुल जोत क्षेत्रफल का प्रतिशत है ।

स्रोत : (i)Agricultural Statistics at a Glance, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi.

(ii) Indian Agriculture in Brief-Various Issues, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi.

इस काल में जोतों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र में मात्र 3.37 मिलियन हैक्टर की ही वृद्धि हुई है। जोतों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने एवं उनके अन्तर्गत क्षेत्रफल के स्थिर रहने के कारण देश में जोतों के औसत आकार में कमी हुई है। देश में जोत का औसत आकार कम होकर इस काल में 2.28 हैक्टर से 1.55 हैक्टर ही रह गया। अत: स्पष्ट है कि देश में जोतों की संख्या बहुत अधिक है और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है। जोतों के अन्तर्गत भूमि के क्षेत्र में असमानता भी व्याप्त है और यह असमानता भी बढ़ती जा रही है। लघु एवं सीमांत जोतों पर सिंचाई के लिए कुआं बनाने, पंप-सैट लगाने, उन्नत कृषि विधियों एवं मशीनों का उपयोग करना आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होता है। परिणामत: जोत के प्रति इकाई क्षेत्र से उत्पादन की मात्रा कम प्राप्त होती है और उत्पाद की उत्पादित प्रति इकाई मात्रा पर उत्पादन लागत भी अधिक आती है।

भारत में जोत का औसत आकार अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। वर्ष 1970-71 की कृषि जनगणना के अनुसार देश में जोत का औसत आकार 2.28 हैक्टर था, जो कम होकर वर्ष 1976-77 में 2.0 हैक्टर, वर्ष 1980-91 में 1.84 हैक्टर, वर्ष 1985-86 में 1.69 हैक्टर एवं वर्ष 1990-91 में 1.55 हैक्टर ही रह गया। जोत का यह औसत आकार आस्ट्रेलिया देश में 1992.58 हैक्टर, अर्जेन्टाइना में 270.13 हैक्टर, कनाडा में 187.54 हैक्टर, अमेरिका में 157.61 हैक्टर, मैक्सिको में 142.28 हैक्टर, इंग्लैण्ड में 55.07 हैक्टर, फ्रांस में 22.07 हैक्टर, नार्वे में 17.64 हैक्टर एवं बेल्जियम में 8.35 हैक्टर था।

2. जोत उपखण्ड :

भारतीय कृषि की दूसरी विशेषता जोत के अन्तर्गत कुल भूमि का क्षेत्रफल एक खण्ड में नहीं होकर अनेक खण्ड़ो में विभक्त होना है। भूमि के यह खण्ड एक-दूसरे से बहुत दूरी पर स्थित होते हैं। जोत के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्र विभिन्न खण्डों में विभक्त होने एवं उन भू-खण्डों का एक-दूसरे से दूर स्थित होने के कारण कृषक सभी भूखण्ड़ों पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं करा पाते हैं। विभिन्न खण्ड़ों की देख-रेख भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाती है। प्रत्येक भू-खण्ड पर बहुत्सा क्षेत्रफल मेड़, नालियों, भवन, सड़क बनाने में निकल जाता है, जिससे कृषक की जोत का कृषित क्षेत्र कम हो जाता है। भारत में कृषकों की जोत औसतन 4 खण्ड़ों में विभक्त है, जबकि अन्य देशों में कृषकों की जोत एक या दो खण्ड़ों में ही विभक्त होती है । भारत में

जोत के बिखरे हुए खण्ड़ों को एक खण्ड में लाने का प्रयास चकबंदी विधि द्वारा किया जा रहा है जिससे भूमि की उत्पादकता एवं कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो सके।

3. **भारतीय कृषि में पूँजी निवेश का कम होना :**

भारतीय कृषि की तीसरी प्रमुख विशेषता कृषि क्षेत्र में पूँजी निवेश का कम होना है। भारतीय कृषक मुख्यतया गरीब है। गरीबी के कारण कृषि व्यवसाय में पूँजी निवेश कम मात्रा में कर पाते हैं। पूँजी के अभाव में कृषक फार्म पर कृषि उत्पादन में उन्नत तकनीकी विधियों एवं प्रस्तावित मात्रा में उत्पादन-साधनों की उपयोग कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। इससे उनकी भूमि की उत्पादकता का स्तर कम होता है। वर्ष 1950-51 में कृषि क्षेत्र में निवेश की गई पूँजी, कृषि क्षेत्र में प्राप्त आय की 6.3 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1960-61 तक समान प्रतिशत में बनी रही। पूँजी निवेश की राशि कम होकर वर्ष 1961-62 में 5.3 प्रतिशत, वर्ष 1963-64 में 5.0 प्रतिशत व वर्ष 1967-68 में मात्र 4.9 प्रतिशत ही रह गई। देश के समग्र राष्ट्रीय उत्पाद की प्रतिशतता के रूप में भी कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश बहुत कम है। वर्ष 1993-94 से 1996-97 के काल में यह प्रतिशतता मात्र 1.6 थी, जो कम होकर वर्ष 2001-01 में 1.3 प्रतिशत ही रह गई। देश में वर्ष 2001-01 में कृषि क्षेत्र में कुल पूँजी निर्माण मात्र 16,545 करोड़ रुपयों का ही था, जिसमें से 75.8 प्रतिशत अंश निजी क्षेत्र एवं 24.2 प्रतिशत अंश सार्वजनिक क्षेत्र में था। कृषकों द्वारा सामाजिक उत्सवों पर अधिक धनराशि व्यय करने एवं कृषि में उन्नत तकनीकी ज्ञान के स्तर पर कम उपयोग करने से उनको कृषि व्यवसाय से कुल लाभ एवं बचत की राशि कम प्राप्त होती है। अन्य देशों में कृषि व्यवसाय में प्राप्त बचत की राशि अधिक होने से वहाँ के कृषक निरन्तर कृषि व्यवसाय में पूँजी अधिक निवेश करते है। कृषि में पूँजी निवेश की राशि एवं भूमि की उत्पादकता में धनात्मक संबंध होता है।

4. खाद्यान्न उत्पादन को प्राथमिकता प्रदान करना :

भारतीय कृषक खाद्यान्न वाली फसलों के अन्तर्गत गैर-खाद्यान्नों, वाणिज्यिक एवं नकदी फसलों की अपेक्षा अधिक क्षेत्रफल फार्म पर लेते हैं। इसका प्रमुख कारण कृषकों द्वारा पारिवारिक आवश्यकता वाले उत्पादों के उत्पादन को प्राथमिकता देना एवं वाणिज्यिक तथा नकदी फसलों के उत्पादन के उत्पादन की विधि एवं उनसे प्राप्त होने वाले लाभ की अज्ञानता का होना है। खाद्यान्नों के अन्तर्गत अधिक क्षेत्रफल लेने से कृषकों को प्रति हैक्टर भूमि के क्षेत्र एवं कुल फार्म क्षेत्र से लाभ कम प्राप्त होता है। वाणिज्यिक एवं नकदी फसलों से प्रति हैक्टर लाभ, खाद्यान्नों की अपेक्षा अधिक प्राप्त होता है। भारत में खाद्यान्नों की फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल वर्ष 1950-51 में निरन्तर कुल कृषित क्षेत्रफल का 70 से 75 प्रतिशत के मध्य रहा है। भारतीय कृषि प्रमुखतया खाद्यान्नों पर आधारित है।

5. कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अधिक भार :

भारत की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र पर अधिक जनसंख्या के आश्रित होने से भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होता है और प्रति व्यक्ति उपलब्ध कृषित क्षेत्र कम होता जाता है। विकसित देशों में विकासशील देशों की अपेक्षा कम प्रतिशत जनसंख्या का 61 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि क्षेत्र पर आधारित थी। अन्य विकासशील देशों में यह प्रतिशतता 40 से 90 प्रतिशत थी। सर्वाधिक

नेपाल में 93.3 प्रतिशत व्यक्ति कृषि क्षेत्र पर आधारित थे। विकसित देशों में यह प्रतिशतता 2 से 4 थी। इंग्लैण्ड में 1.9 प्रतिशत, अमेरिका में 2.3 प्रतिशत, कनाडा में 2.6 प्रतिशत जापान एवं आस्ट्रेलिया में 4.8 प्रतिशत तथा फ्रांस में 3.9 प्रतिशत जनंसख्या ही कृषि क्षेत्र पर आधारित थी। विकसित देशों में कृषि क्षेत्र पर आधारित जनसंख्या का भार निरन्तर कम होता जा रहा है, जबकि विकासशील देशों में यह प्रतिशतता निरन्तर समान या इसमें वृद्धि हुई है। भारत में यह निर्भरता पिछले कई दशकों से 60 से 70 प्रतिशत के मध्य में बनी हुई है जो भारत देश के विकास के लिए अभिशाप है। सारणी 4.3 में विभिन्न देशों में कृषि पर आधारित जनसंख्या एवं प्रति व्यक्ति उपलब्ध क्षेत्र दर्शाया गया है।

सारणी 4.3

विभिन्न देशों में कृषि क्षेत्र पर आधारित जनसंख्या एवं प्रति व्यक्ति उपलब्ध भू-क्षेत्र, 1997

देश	**कृषि क्षेत्र पर आधारित जनसंख्या(प्रतिशत)**	**प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूक्षेत्र(हैक्टर)**
कनाडा	2.6	33.59
अमेरिका	2.3	3.48
इंग्लैण्ड	1.9	0.42
फ्रांस	3.9	0.95
आस्ट्रेलिया	4.8	42.88
जापान	4.8	0.30
अर्जेन्टीना	10.4	7.89
मैक्सिको	23.3	2.11
मिस्र	25.3	1.58
बांग्लादेश	58.6	0.12
चीन	68.5	0.78
भारत	61.0	0.35
पाकिस्तान	48.4	0.57
नेपाल	93.3	0.67
संसार	**46.0**	**2.32**

स्रोत : FAO Production Year Book,1997. Taken from Indian Agriculture in Brief, 27th Edition, Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi, 2000, pp. 261-262.

6. कृषि उत्पादन का प्रकृति पर निर्भर होना :

भारत में कृषि उत्पादन प्रकृति की अनुकूलता पर निर्भर है । प्रकृति की अनुकूलता वाले वर्ष में देश में खाद्यान्नों का उत्पादन अधिक होता है तथा प्रतिकूलता वाले वर्ष में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता है। भारतीय कृषि का प्रकृति पर निर्भरता का मुख्य कारण देश में सिंचाई की

पर्याप्त सुविधा का नहीं होना है। भारत में वर्ष 1951-52 में 23.2 मिलियन हैक्टर क्षेत्र (कुल कृषित क्षेत्र का 17.4 प्रतिशत) में सिंचाई सुविधा उपलब्ध थी। योजना काल में सिंचाई सुविधाओं के निरन्तर विस्तार के फलस्वरूप सिंचित क्षेत्र वर्ष 1996-97 में 80 मिलियन हैक्टर (कुल कृषित क्षेत्र का 42 प्रतिशत) हो गया सिचाई सुविधाओं के विकास वरन बहुत धन व्यय करने के बाद आज भी देश का 58 प्रतिशत कृषित क्षेत्रफल कृषि उत्पादन के लिए वर्षा पर निर्भर हैं वर्षा के कम होने तथा सिंचाई सुविधाओं के अभाव में कृषि उत्पादन में अनिश्चितता बनी रहती है तथा देश में सूखा का प्रकोप निरन्तर होता रहता है। वर्ष 1965 से 1995 के मध्य देश में 15 वर्ष विभिन्न स्तर के सूखा वाले वर्ष थे।

7. भारतीय कृषि में पशु-शक्ति का प्रमुख स्थान :

भारतीय कृषि में अधिकांश कृषि कार्य, जैसे-जुताई, बुवाई, सिंचाई, खाद डालना, उत्पाद का गायटा, उत्पाद की ढुलाई आदि पशुओं की सहायता से ही किये जाते हैं। पशु-शक्ति के अधिक उपयोग के कारण उत्पादन लागत अधिक आती है तथा कार्य भी समय पर पूरा कर पाना सम्भव नहीं होता है। विकसित देशों में कृषि क्षेत्र में पशु-शक्ति के स्थान पर यान्त्रिक-शक्ति-ट्रेक्टर, सिंचाई के लिए डीजल एवं विद्युत-इंजन, रीपर, सीड ड्रील आदि का उपयोग अधिक होता है। इससे वहाँ उत्पादन का स्तर भारत की अपेक्षा अधिक होता है।

8. देश में भू-धृति की दोषयुक्त पद्धति का प्रचलित होना :

भारतीय कृषि में भू-धृति की दोषयुक्त पद्धति प्रचलित है, जिससे कृषक भूमि से उत्पादकता बढ़ाने में इच्छुक नहीं होते हैं। प्रचलित दोषयुक्त पद्धतियों में कृषक एवं सरकार के मध्य मध्यस्थों का होना, जोत अपखण्डन, जोत का क्षेत्रफल कम व असमान होना, भू-राजस्व की अधिक राशि वसूल करना, कृषकों को भूमि पर स्थायी स्वामित्व अधिकार प्राप्त न होना आदि प्रमुख हैं इस प्रकार की दोषयुक्त भू-धृति पद्धतियों के होने से कृषि विकास मे बाधा पहुँचती है सरकार ने स्वतन्त्रता के पश्चात् भू-धृति की दोषयुक्त पद्धतियों की समाप्ति के लिए अनेक भूमि-सुधार कार्यक्रम अपनाए गये है।

9. कृषि जीवन-निर्वाह का साधन :

भारत मे कृषकों द्वारा कृषि को व्यवसाय के रूप मे न अपनाकर जीवन-निर्वाह के साधन के रूप मे अपनाया जाता है। कृषक कृषि में होने वाले आय-व्यय का लेखा नहीं रखते हैं और न ही उत्पादन एवं आय में वृद्धि के लिए व्यावसायिक सिद्धान्तों का उपयोग करते है अन्य देशों में कृषि को भी अन्य उद्योगों के समान व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है और कृषि व्यवसाय से भी व्यापारिक बुद्धिमत्ता के आधार पर अधिक लाभ कमाने का प्रयास किया जाता है।

4.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व :

भारतीय अर्थव्यवस्था का कृषि एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। निम्नांकित तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं-

1. **राष्ट्रीय आय में कृषिका अंश-** विश्व बैंक के विश्व विकास वृत्तान्त के अनुसार भारत में वर्ष 1992 में कृषि क्षेत्र का देश के सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic

Product) में अंश 32 प्रतिशत था, जबकि फ्रांस में 3 प्रतिशत, जर्मनी, स्वीडन व जापान में 2 प्रतिशत ही था। भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र सम्मिलित रूप में शेष 68 प्रतिशत अंश ही सकल घरेलू उत्पाद प्रदान करते हैं। स्पष्ट है कि भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान काफी अधिक है। कृषि क्षेत्र का यह अंश निरन्तर कम होता जा रहा है। कृषि क्षेत्र का यह अंश वर्ष 1950-51 में 55.40 प्रतिशत, जो वर्ष 2006-07 में औसत आधार पर घटकर 18.50 प्रतिशत ही रह गया।

2. **देश के नागरिकों एवं पशुओं के लिए खाद्यान्न एवं चारा उपलब्ध कराना-**कृषि क्षेत्र देश के 102.7 करोड़ नागरिकों के लिए खाद्यान्न एवं 47.08 करोड़ पशुओं के लिए चारा उपलब्ध कराता है। भोजन उपलब्धि के क्षेत्र में भी कृषि एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।
3. **जीवन-निर्वाह के लिए साधन उपलब्ध कराना-**कृषि क्षेत्र पर देश की 61.0 प्रतिशतजनसंख्या प्रत्यक्ष एवं अपरोक्ष रूप से जीवन-निर्वाह के लिए निर्भर है। अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र सम्मिलित रूप से शेष 39.0 प्रतिशत जनसंख्या को जीवन-निर्वाह के साधन उपलब्ध कराते हैं। रोजगार उपलब्धि की दृष्टि से भी कृषि क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है। कुल रोजगार उपलब्धि का 52 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र उपलब्ध कराता है।
4. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में कृषि का अंश-** भारत के विदेशी व्यापार का अधिकांश भाग कृषि से प्राप्त होता है। कुल निर्यात में कृषि वस्तुओं का अनुपात वर्ष 2004-05 के आँकड़ों के अनुसार 14.7 प्रतिशत था। पिछले कुछ वर्षों से भारत के कुल निर्यात एवं कृषि वस्तुओं के निर्यात की मात्रा एवं मूल्य में बढ़ोतरी हुई है जो आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र से निर्यात किए जाने वाले उत्पादों में चाय, कॉफी, तम्बाकू, काजू, जूट, कपास, ऊन, बादाम, खाद्य तेल, सुपारी, गोंद, किशमिश, चमड़ा, खली, मसालें एवं फल प्रमुख है।

सारणी 4.4 देश से कृषि उत्पादों के निर्यात से प्राप्त आय एवं उसका देश के कुल निर्यात में प्रतिशत प्रदर्शित करती है। कृषि क्षेत्र की वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त आय में वर्ष 1997-98 तक निरन्तर वृद्धि हुई है, लेकिन इनकी देश के कुल निर्यात में प्रतिशतता में निरन्तर कमी आई है। यह प्रतिशतता वर्ष 1960-61 में 44.24 थी, जो वर्तमान में 26.6 प्रतिशत ही रह गई। समग्र घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र के निर्यात से प्राप्त अंशदान में वृद्धि हुई है। कृषि क्षेत्र से निर्यात बढ़ाने की देश में प्रबल संभावना है।

सारणी 4.4

कृषि-उत्पादों के निर्यात से प्राप्त आय एवं उसका देश की कुल निर्यात आय में अंश

वर्ष	कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त आय (करोड़ रु.)	भारत के कुल निर्यात आय का देश की (करोड़ रु.)	कृषि-उत्पादों से प्राप्त निर्यात आय का देश की कुल निर्यात आय में अंश (प्रतिशत)
1960-61	284	641.95	44.24
1970-71	565	1535	36.8
1980-81	2376	6683	35.5
1990-91	7340	32553	22.5
1995-96	29588	106353	27.8
1996-97	32888	118817	27.6
1997-98	34714	130100	26.6

स्रोत : Directorate of Economics & Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India, New Delhi, p.72

5. **प्रमुख उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति-** कृषि क्षेत्र देश के प्रमुख उद्योगों-कपड़ा. जूट, चीनी, तिलहन, वनस्पति, चाय, रबर, कागज आदि के लिए आवश्यक मात्रा में कच्चा माल प्रदान करता है। अत: इन उद्योगों के विकास में कृषि महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।
6. **अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास में कृषि क्षेत्र का स्थान-** देश की अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र-आन्तरिक व्यापार, परिवहन, संचार, संग्रहण, संसाधन बैकिंग एवं अन्य सहायक क्षेत्रों के विकास में कृषि क्षेत्र महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि इन क्षेत्रों का व्यवसाय में मुख्यतया: कृषि क्षेत्र महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि इन क्षेत्रों को व्यवसाय मुख्यतया कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है।
7. **विभिन्न उद्योगों से निर्मित वस्तुओं के उपभोग में कृषि क्षेत्र की महत्ता-** देश के अनेक उद्योगों से निर्मित वस्तुएँ, जैसे - उर्वरक, कीटनाशी दवाइयाँ, कृषि यन्त्र एवं मशीनें, बीज आदि का उपयोग कृषि क्षेत्र में ही पूर्णतया होता है। इन उद्योगों का विकास भी कृषि क्षेत्र के विकास पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र में विभिन्न उद्योगों से निर्मित उत्पादों के अधिक उपयोग करने से इन उद्योगों का विकास भी द्रुत गति से होता है। अत: कृषि एवं उपर्युक्त उद्योग एक-दूसरे के पूरक कहलाते हैं, क्योंकि एक उद्योग का विकास दूसरे उद्योग के विकास में सहायक होता है।
8. **देश में व्याप्त निर्धनता के स्तर में कमी लाने में कृषि क्षेत्र का योगदान-**देश में व्याप्त निर्धनता की प्रतिशतता को कम करने में भी कृषि क्षेत्र महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। देश में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही जनसंख्या के प्रतिशत में कमी भी कृषि क्षेत्र के विकास द्वारा ही हो पाना सम्भव है।

9. **उपभोक्ताओं की आय का कृषि वस्तुओं के क्रय पर व्यय का अंश-**देश के उपभोक्ताओं की आय का लगभग 70 से 80 प्रतिशत भाग कृषि वस्तुओं के क्रय पर ही व्यय होता है। अत: उपभोक्ताओं को अपनी प्राप्त आय से उचित जीवन-स्तर प्रदान करने में कृषि क्षेत्र महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। खाद्यान्नों की मांग की लोच के अधिक होने के कारण कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव का प्रभाव उपभोक्ताओं के रहन-सहन के स्तर को सीधे रूप में प्रभावित करता है।

4.6 भारतीय कृषि की समस्याएँ तथा पिछड़ेपन के कारण (Problems of Indian Agriculture and Causes of its Backwardness) :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कृषि में मूलभूत परिवर्तन आये हैं। हरित क्रान्ति का प्रभाव देश के अधिकांश राज्यों में दृष्टिगोचर होने लगता है, तथापि भारतीय कृषि अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। कृषि क्षेत्र में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के कारण आज भी देश में कृषि पिछड़ी हुई है। प्रति हेक्टेयर एवं प्रति व्यक्ति उत्पादकता की दृष्टि से विश्व के अनेक देशों की तुलना में भारतीय कृषि बहुत पीछे है। यह स्थिति भारतीय कृषि के पिछड़ेपन का द्योतक है। भारतीय कृषि की विभिन्न समस्याएँ अथवा पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी घटक निम्नांकित हैं :

1. **सिंचाई सुविधाओं की कमी-**वर्तमान में शुद्ध कृषि क्षेत्र (142.6 मिलियन हेक्टेयर) का 40 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित है तथा शेष 60 प्रतिशत वर्षा पर आधारित है। वर्षा पर आधारित क्षेत्र प्रकृति (मानसून) पर निर्भर करता है। अत: मानसून की अनियमितता एवं अनिश्चितता के कारण देश में कृषि उत्पादन अत्यधिक प्रभावित होता है।
2. **प्राकृतिक आपदाएँ-**भारतीय कृषि को अनेक प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। अतिवृष्टि, बाढ़, सूखा, तूफान, ओलावृष्टि, पाला, शीत लहर, लूइत्यादि प्राकृतिक आपदाओं से देश के किसी न किसी भाग में कृषि अवश्य ही प्रभावित होती है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण अनेक बार फसलें या तो उगाई ही नहीं जा सकतीं अथवा उगने के बाद नष्ट हो जाती हैं ।
3. **भू-स्खलन की समस्या-**देश के अनेक भागों में मिट्टी के कटाव एवं भू-स्खलन की समस्या का सामना करना पड़ता है। इससे मिट्टी का उपजाऊपन कम हो जाता है तथा कृषि उत्पादन में कमी आती है। इस समस्या के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं, यथा-वनों की अन्धाधुन्ध कटाई, भारी वर्षा तथा अति चराई (overgrazing) आदि।
4. **कीट-पतंगें एवं कृषि रोग-**फसलों का एक महत्त्वपूर्ण भाग प्रतिवर्ष कीट-पतंगों एवं कृषि रोगों के कारण नष्ट हो जाता है।
5. **किसानों की ऋण ग्रस्तता-**अधिकांश भारतीय किसान सदैव ऋण ग्रस्त रहते हैं। प्राय: किसान अनेक अनुत्पादक कार्यों जैसे शादी-विवाह, मृत्यु भोज, मुंडन-नामकरण संस्कार इत्यादि पर अत्यधिक राशि व्यय करते हैं। परिणामस्वरूप वह साहूकार अथवा आढ़तियों के चंगुल में फँसे रहते हैं तथा ऋणों पर ऊँची दर से ब्याज चुकाना पड़ता है।

6. **ऊँची ब्याज दरों पर ऋण-**किसानों को आसानी से ऋण नहीं मिल पाता। सेठ-साहूकार,आढ़तियों इत्यादि बहुत ऊँची ब्याज दर पर किसानों को ऋण देते हैं। यद्यपि पिछले 2-3 दशक में बैंकों एवं सहकारी संस्थाओं द्वारा किसानों को काफी मात्रा में ऋण दिया जाने लगा है। लेकिन इन ऋणों को प्राप्त करने में किसानों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा ब्याज की दर भी अधिक रहती है।
7. **दोषपूर्ण विपणन व्यवस्था-**भारतीय कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। देश के अनेक भागों में आधुनिक कृषि उपज मंडियों की स्थापना की गई है लेकिन आवश्यकता की तुलना में यह कम है। परिणामस्वरूप किसान को अपनी उपज मध्यस्थों के हाथ बेचनी पड़ती है। देश में भण्डारण सुविधाओं का अभाव है तथा ऋण ग्रस्तता के कारण किसान को अपनी उपज तुरन्त बेचनी पड़ती है जिससे उसे अपनी उपज का लाभकारी मूल्य नहीं मिल पाता।
8. **कम पूँजी निवेश-**कृषि पर किये जाने वाले पूँजी निवेश में निरन्तर कमी आ रही है। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के कुल उद्व्यय (Total outlay) का 3.9 प्रतिशत कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं के लिए निर्धारित किया गया है। जबकि छठी तथा सातवीं योजना में कुल परिव्यय का 5.8 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर व्यय किया गया था। लेकिन आठवीं तथा नौवीं पंचवर्षीय योजना में यह क्रमश: घटकर 5.2 प्रतिशत एवं 4.9 प्रतिशत रह गया।

तालिका 4.5

योजना व्यय में कृषि का हिस्सा

(Share of Agriculture in Plan Expenditure)

कृषि क्षेत्र में व्यय में सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण पर व्यय को भी शामिल किया गया हैं निम्नलिखित तालिका में विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र पर किए गए व्यय का ब्यौरा दिया गया है :

करोड़ रूपये में

योजना	कुल योजना व्यय	कृषि, सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर व्यय	कुल व्यय का प्रतिशत
पहली योजना (1951-56)	1960	600	31.00
दूसरी योजना (1956-61)	4600	950	20.00
तीसरी योजना (1961-66)	8600	1750	21.00
वार्षिक योजनाएँ (1966-69)	6625	1578	23.80
चौथी योजना (1969-74)	15780	3670	23.00
पाँचवीं योजना (1974-79)	39430	8740	22.00
छठी योजना (1980-85)	109290	26130	24.00
सातवीं योजना (1985-90)	218730	48100	22.00
आठवीं योजना (1992-97)	485460	102730	21.00
नौवीं योजना (1997-02)	859200	170230	20.00
दसवीं योजना (2002-07)	1525640	305060	20.00

स्रोत-आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 2007-08

9. **कृषि संसाधन उद्योगों का अभाव-** भारत में कृषि पदार्थों विशेषकर फल-सब्जियों को संस्करण (Processing) करने वाले उद्योगों का अभाव है। परिणामस्वरूप फल-सब्जियों का 30-40 हिस्सा खराब हो जाता है तथा कृषक को इनका उचित मूल्य नहीं मिल पाता।
10. **परिवहन सुविधाओं का अभाव-** योजनाबद्ध विकास के बावजूद अभी लाखों गाँव पक्की सड़कों से नहीं जुड़ पाये हैं। अत: कृषि उत्पादों को कृषि मंडियों तक लाने में बहुत अधिक लागत आती है। परिवहन साधनों के अभाव के कारण प्राय: किसान अपनी उपज को गाँव में ही कम कीमत पर सेठ-साहूकारों को बेच देते हैं।
11. **भूमि सुधारों की धीमी गति-** अनेक राज्यों में भूमि सुधारों को ठीक तरह से क्रियान्वित नहीं किया गया। जिन राज्यों में भूमि सुधार लागू किये गये, उनमें इनके क्रियान्वयन की गति बहुत धीमी है।

12. अन्य कारण-

(i) कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी के कारण लाखों किसानों की सीमान्त उत्पादकता नगण्य अथवा शून्य है।

(ii) हजारों-लाखों भारतीय किसान अशिक्षा के कारण अभी भी परम्परागत तरीके से ही खेती करते हैं तथा कृषि की वैज्ञानिक विधियों को अपनाने में हिचकिचाते हैं।

4.7 भारतीय कृषि की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

1. **सिंचाई सुविधाओं का विस्तार-** भारत में 139.89 मिलियन हेक्टेयर अन्तिम सिंचाई सम्भाव्य का अनुमान है। लेकिन अभी तक केवल 66% सिंचाई सुविधाओं का ही विदोहन किया जा सका है। अत: सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करके पूर्ण क्षमता का विदोहन किया जाना चाहिए।
2. **सस्ती ब्याज दरों पर वित्त की उपलब्धता-** बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से किसानों को सस्ती ब्याज दरों पर पर्याप्त मात्रा में वित्त की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
3. **कृषि क्षेत्र में निवेश में वृद्धि-** कृषि क्षेत्र में निवेश के लिए निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत भी निवेश में वृद्धि की जाए।
4. **कृषि संसाधनों उद्योगों की स्थापना-** निजी क्षेत्र को रियायतें देकर ग्रामीण क्षेत्र में कृषि संसाधन उद्योगों का विकास किया जाए।
5. **परिवहन सुविधाओं का विकास-** परिवहन सुविधाओं का विकास करके प्रत्येक गाँव तथा ढाणी को कृषि उपज मंडियों से जोड़ा जाए ताकि किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य मिल सके।
6. **भूमि-सुधारों का क्रियान्वयन-** भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू किया जाये।
7. **भण्डारण सुविधाओं का विकास-** ग्रामीण क्षेत्रों ने भण्डारण सुविधाओं का विकास किया जाए ताकि किसान अपनी उपज को गोदामों में रखकर इसकी जमानत पर वित्तीय संस्थाओं से ऋण ले सके।

8. **विपणन व्यवस्था में सुधार-** कृषि विपणन व्यवस्था में व्याप्त दोषों को दूर करना चाहिए तथा कृषि उपज मंडी समितियों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।
9. **कृषि आदानों की उपलब्धता-** उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, कीटनाशक इत्यादि कृषि आदानों की उपयुक्त कीमतों पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
10. **विद्युत आपूर्ति में सुधार-** ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति में सुधार किया जाए तथा शत-प्रतिशत गांवों को विद्युतीकरण किया जाए।
11. **फसल बीमा-** बाढ़, सूखा, तूफान, ओलावृष्टि आदि की जोखिम से किसानों को बचाने के लिए देश के सभी राज्यों में फसल बीमा योजना को व्यापक रूप से लागू किया जाए। इसे कुछ फसलों या कुछ क्षेत्रों तक सीमित नहीं रखना चाहिए।
12. **कृषि खेती-** देश के लगभग 60% कृषित क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं होनेके कारण अधिकांश खेती वर्षा पर आधारित है। अत: ऐसे बीजों का विकास किया जाए जो कम पानी में उग सके, तथा अच्छी उपज दे सके। इसके लिए शुष्क खेती पर अधिकाधिक अनुसंधान किया जाए। इजरायल ने शुष्क खेती के माध्यम से काफी विकास किया है, अत: हमें इसका अनुकरण करना चाहिए।
13. **कृषि की सहायक क्रियाओं का विकास-** देश में पशुपालन, कुक्कुट-पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, सूअर पालन, मत्स्य पालन आदि के विकास की विपुल संभावनाएं हैं । अत: कृषि इन क्रियाओं का विकास करके न केवल रोजगार अवसरों में वृद्धि की जा सकती है अपितु किसानों की आय एवं जीवन स्तर में भी वृद्धि की जा सकती है ।

इन क्रियाओं का विकास करके न केवल रोजगार अवसरों में वृद्धि की जा सकती है अपितु किसानों की आय एवं जीवन स्तर में भी वृद्धि की जा सकती है ।

14. **अन्य सुझाव-**
    (i) ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास किया जाए ।
    (ii) सहकारी कृषि एवं विपणन व्यवस्था को बढ़ावा दिया जाए ।
    (iii) वैज्ञानिक कृषि को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।
    (iv) गौचर एवं बंजर भूमि पर ईंधन एवं चारागाह हेतु पेड़-पौधे लगाये जाएं ।
    (v) किसानों का पर्याप्त मात्रा में संस्थागत साख उपलब्ध करायी जाए जिससे साहूकार या महाजन पर किसान की निर्भरता कम हो सके ।

4.8 सारांश (Summary)

भारत की 71 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है जिसमें से 65-70 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका कृषि एवं इसकी सहायक क्रियाओं पर निर्भर करती है । देश की श्रम शक्ति का 58.20 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र से आजीविका प्राप्त करता है । कृषि एवं संबंधित कार्यो से उत्पन्न वास्तविक जीडीपी वृद्धि2005-06 के 6.00 प्रतिशत घटकर 2006-07 में 2.7 प्रतिशत रह गई । जिसका आंशिक कारण असंतुलित मानसून से उत्पादन में कमी आना था ।

कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में 24 प्रतिशत का योगदान देता है तथा देश के कुल निर्यात मूल्य में कृषि क्षेत्र का अंशदान 11.80 प्रतिशत है एवं कुल आयात में इस क्षेत्र का अंशदान 4.6 प्रतिशत है ।

गेहूँ उत्पादक प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा आदि, चावल उत्पादक राज्य पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि, मक्का उत्पादक राज्य आन्ध्रप्रदेश, राजस्थान, मध्य- प्रदेश आदि, मोटा अनाज उत्पादक राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक आदि प्रमुख है । सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में सफलता भी प्राप्त की है । कृषि क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई है जिसके प्रमुख कारण सिंचाई के साधनों की कमी, वर्षा का अनियमित एवं अपर्याप्त होना, सरकार द्वारा योग्य भूमियों का अधिग्रहण करना, आदि है ।

4.9 शब्दावली (Terminology):

- जमींदार
- बिचौलिया
- भू-स्वामी
- भूमि सुधार
- जीडीपी
- समर्थन मूल्य
- हरित क्रांति
- कृषि यंत्रीकरण
- पी.एल. 480
- कृषि विपणन
- कृषि शोध
- कृषि वित्त
- निर्यात
- आयात
- विपणन अधिशेष
- जोत
- वाणिज्यिक फसलें
- खाद्यान्न फसलें
- भू-राजस्व
- राष्ट्रीय आय
- कृषि की सहायक क्रियाएं
- प्राकृतिक आपदाएँ
- ऋण ग्रस्तता
- शुष्क खेती

4.10 स्व-परख

1. कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार हैं । स्पष्ट कीजिए ।
2. भारतीय कृषि को मानसून का जुआ क्यों कहा जाता है?
3. भारतीय कृषि की विशेषताएँ लिखिऐं ।
4. क्या कृषि भारतीय अर्थ व्यवस्था में रोजगार का प्रमुख स्रोत हैं? स्पष्ट कीजिए ।
5. भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का योगदान बताइए ।
6. भारत में शुद्ध कृषि क्षेत्र का कितना प्रतिशत भाग सिंचित हैं?
7. कृषि में पूंजी निवेश से आप क्या समझते हैं?
8. विपणन अधिशेष क्या है?

4.11 व्यावहारिक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्त्व की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
2. भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएं बताते हुए इसके पिछड़ेपन को दूर करने के सुझाव दीजिए
3. टिप्पणी :-
    1. हरित क्रांति
    2. भारत की प्रमुख फसलें एवं उनके उत्पादक क्षेत्र
    3. भारतीय कृषि की समस्याएँ

4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

1. मिश्र-पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, 2007
2. गुप्ता-स्वामी, भारत में आर्थिक पर्यावरण, रमेश बुक डिपो, जयपुर-2008
3. प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2008
4. जाट, वशिष्ठ, भिण्डा, जैन, भारत में आर्थिक पर्यावरण, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर-2008
5. वार्षिक रिपोर्ट, भारतीय रिर्जव बैंक, मुम्बई, 2007
6. भारत, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 2008
7. प्रतियोगिता साहित्य सीरिज, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2007
8. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार वित्त मंत्रालय, 2007
9. राजू सिंह, भारतीय अर्थव्यवस्था, नई दिल्ली, 2007-08
10. लक्ष्मी नारायण नाथूरामका, भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर-2007

इकाई-5 : ग्रामीण वित्त (Rural Finance)

इकाई की रूपरेखा :

5.1 परिचय

5.2 ग्रामीण वित्त की आवश्यकता

5.3 ग्रामीण वित्त के प्रकार

5.4 भारत में कृषि वित्त के स्त्रोत

5.5 भारत में कृषि वित्त की कमियाँ अथवा दोष

5.6 कृषि वित्त व्यवस्था के सुधार हेतु सुझाव

5.7 क्रेडिट कार्ड

5.8 कठिनाइयाँ

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 स्व-परख प्रश्न

5.12 व्यावहारिक प्रश्न

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 परिचय (Introduction)

वर्तमान युग में पूँजी उत्पादन का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता हैं बिना पूँजी के उत्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । जिस प्रकार उद्योगों को उत्पादन कार्यो के लिए पूंजी की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली जनता को भी कृषि एवं इसकी सहायक क्रियाओं के लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है । भारतीय किसान अशिक्षित, अज्ञान व गरीब है, उसके पास कृषि कार्यो के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं है । उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने से उसे आसानी से ऋण भी नहीं मिल पाता है जिसके परिणामस्वरूप वह साहूकार के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाता है । आदिकाल से चली आ रही कहावत आज भी चरितार्थ होती है-"भारतीय किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में पनपता है और कर्ज में ही मर जाता है । "ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों को वित्त प्रदान करने के लिए साख संस्थाओं की आवश्यकता पड़ती हैं । कृषकों व दस्तकारों को शोषण से मुक्त कराने, स्वावलम्बी बनाने व कृषि के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करवाने के उद्देश्य वित्त महत्त्व पूर्ण कारक है। कृषि साख उपलब्ध न होना एक समस्या है, लेकिन उसका उचित उपयोग न होना दूसरी समस्या है । कृषि क्षेत्र में साख की कुछ विशेष समस्याएं है । भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण वित्त का अत्यधिक महत्त्व है ।

5.2 ग्रामीण वित्त की आवश्यकता (Need of Rural Finance)

वर्ष 2005-06 के आकड़ों के अनुसार देश की श्रम शक्ति का लगभग 54.19 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है । अत: देश के विकास के लिए ग्रामीण वित्त की प्रमुख आवश्यकता है । भारतीय किसान को अग्रलिखित आवश्यकताओं के लिए ऋण लेना पड़ता है-

1. **कृषि कार्य (Agricultural Work) :** किसानों को कृषि कार्यो को सम्पन्न करने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है जैसे खेत की जुताई-बुवाई, बीज, खाद, कीटनाशक दवाई तथा डीजल आदि के लिए अल्पकालीन ऋण की जरूरत होती है जिसे हम नियमित आवश्यकता भी कह सकते हैं।
2. **कृषि का यंत्रीकरण (Mechanisation of Agriculture) :** कृषक के पास संग्रहित धन का अभाव रहता है । हरित क्रान्ति में कृषि का यंत्रीकरण बढ़ा है तथा यंत्रीकरण में भी मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता रहती है । जैसे-ट्रेक्टर, हार्वेस्टर, थ्रेसर, पम्पसैट, डीजल इंजन, जरनेटर सेट आदि ।
3. **भूमि सुधार (Land Reform) :** यंत्रीकरण करने तथा आधुनिक तकनीक का उपयोग करने के लिए नलकूप निर्माण, भूमि का समतलीकरण, पक्की नाली निर्माण, टैंक निर्माण, मेड़बन्दी आदि के लिए भी वित्त की आवश्यकता होती है ।
4. **सिंचाई सुविधाएं (Irrigation Facilities) :** हरित क्रान्ति के अन्तर्गत खेतों में सिंचाई की नयी-नयी पद्धतियों का आविष्कार हो रहा है । जैसे-फव्वारा सिंचाई, बूंद-बूंद सिंचाई, पाईप सिंचाई, नाली आदि । इन सब के लिए वित्त की आवश्यकता रहती है ।
5. **आकस्मिक आवश्यकता (Casual needs) :** किसानों को कई बार आकस्मिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु ऋण की आवश्यकता होती है । जैसे-अकाल, बाढ, भूकम्प, अतिवृष्टि, शीत लहर, बैलों की मौत, पम्पसेट खराबी, ट्रेक्टर एवं अन्य यंत्रों का खराब होना आदि ।
6. **पशुधन (Animal Husbandary) :** किसान को बैल, ऊंट, भैंस, गाय, भेड़, बकरी खरीदने के लिए भी धन की आवश्यकता रहती है तथा इसकी पूर्ति किसान ऋण लेकर ही कर सकता है ।
7. **गैर कृषि कार्य (Non Agricultural Works) :** भारतीय किसान गैर-कृषि कार्यो के लिए भी ऋण लेता है तथा इस ऋण का प्रभाव कृषि विकास पर भी अनुकूल-प्रतिकूल दोनों रूप में पड़ता हैं गैर-कृषि कार्य भी दो प्रकार के होते हैं, प्रथम-जिन कार्यो के लिए ऋण जरूरी होता है जैसे-भोजन, कपड़ा, दवाई, पशु-चिकित्सा, बच्चों की शिक्षा आदि तथा दूसरे, जो रीति-रिवाज एवं तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए ऋण लेता है, जैसे-शादी-विवाह, नेग, पुत्र-जन्मोत्सव, मृत्यु भोज, मुकदमेबाजी आदि । गैर-कृषि ऋणों को गैर-उत्पादक होने के कारण चुकाने में कठिनाई आती है । साथ ही ऐसे कार्यो के लिए वित्तीय संस्थाओं से ऋण मिलना कठिन रहता है । ऐसी स्थिति में पुन: किसान साहूकार के चंगुल में फंस जाता है ।

8. **पुराने ऋणों का भुगतान (Repayment of Old Debt) :** भारतीय किसान भावनाओं में बहकर अपने बाप-दादाओं का ऋण चुकाना अपना धर्म समझते हैं । इससे देशी साहूकारों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी बकाया चल रहे मनमाने ब्याज से युक्त ऋण चुकाने के लिए किसान को ऋण लेना पड़ता है ।

5.3 ग्रामीण वित्त के प्रकार (Types of Rural Finance)

ग्रामीण वित्त को आवश्यकता एवं उद्देश्य तथा अवधि के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है:

(अ) आवश्यकता एवं उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण ।

(आ) अवधि या समय के आधार पर वर्गीकरण ।

(अ) आवश्यकता एवं उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण : उद्देश्य के आधार पर ऋणों को दो भागों में बांटा जाता है :-

1. **कृषि वित्त:-** खाद, बीज, दवा आदि की खरीद, विद्युत बिल आदि कार्यो के लिए जो ऋण किसान द्वारा लिया जाता है उसे कृषि वित्त कहा जाता है ।
2. **गैर-कृषि वित्त:-** भण्डारण, परिवहन व्यवस्था, कृषि यंत्रों की खरीद आदि कार्यों के लिए जो ऋण किसान द्वारा लिया जाता है उसे गैर-कृषि वित्त कहते है ।

(आ) अवधि या समय के आधार पर वर्गीकरण:-

(1) **अल्पकालीन ऋण (Short Term Loan) -** सामान्यतया अल्पकालीन ऋण की अवधि एक फसल से दूसरी फसल तक या एक वर्ष की होती है । इस प्रकार के ऋण बीज, खाद, मजदूरी, औजार, जोत आदि के व्ययों का भुगतान करने के लिए प्राप्त किये जाते हैं और कृषि फसल की बिक्री होते ही चुका दिये जाते हैं । लेकिन अल्पकालीन ऋण के भुगतान की अधिकतम अवधि 15 माह होती है ।

(2) **मध्यकालीन ऋण (Medium Term Loan) -** इन ऋणों की अवधि दो से पाँच वर्ष तक मानी जाती है । इसके अन्तर्गत किसान मवेशियों की खरीद, भूमि सुधार, पम्प लगाने या इसी प्रकार के अन्य औजारों को खरीदने के लिए ऋण प्राप्त करना चाहते है । इस ऋण की राशि किसान की साधारण देय क्षमता से अधिक होती है और वह फसल पर किस्तों द्वारा ही इसका भुगतान कर सकता हैं । मध्यकालीन ऋण के भुगतान की अधिकतम अवधि 5 वर्ष होती हैं ।

(3) **दीर्घकालीन ऋण (Long Term)-**इन ऋणों की अवधि पांच वर्ष से बीस वर्ष तक की हो सकती है । इतनी लम्बी अवधि वाले ऋणों की आवश्यकता भूमि में स्थाई सुधार करने के लिए, कुँआ खुदवाने, स्थाई नालियाँ बनवाने, पशु पालन एवं डेयरी व्यवसाय, गोदाम बनवाने, नई भूमि खरीदने, पुराने ऋणों का भुगतान करने आदि के लिए होती हैं । इन कार्यो में पूँजी निवेश से कृषकों को अनेक वर्षों तक निरन्तर आय प्राप्त होती है ।

5.4 भारत में कृषि वित्त के स्त्रोत
(Sources of Agricultural Finance Sources)

भारत में किसान अपनी दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार के स्त्रोत से ऋण प्राप्त करता है-

1. गैर संस्थागत स्त्रोत (Non-Institutional Sources) तथा
2. संस्थागत स्त्रोत (Institutional Sources)

गैर संस्थागत स्त्रोत में साहुकार, महाजन, सेठ, व्यापारी एवं भू-स्वामी आदि को सम्मिलित किया जाता है । संस्थागत स्त्रोतों में सरकार, सहकारी समितियों तथा वाणिज्यिक बैंकों आदि को सम्मिलित किया जाता है ।

(i) **गैर संस्थागत स्त्रोत (Non-Institutional Sources)-** कृषि वित्त के गैर संस्थागत स्त्रोत में साहूकार, महाजन, सेठ, देशी बैंकर्स व भू-स्वामियों को सम्मिलित किया जाता हैं । ये लोग गाँवों में किसानों की अधिकांश वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । साहूकार तथा देशी बैंकर प्राय: ऋण देने की समान पद्धतियों का प्रयोग करते है । अन्तर केवल इतना हैं कि देशी बैंकर प्राय: बड़े व्यापारियों को ऋण देते हैं, जबकि साहूकार के ग्राहक सामान्य किसान, मजदूर अथवा मध्यम वर्ग के लोग होते है । अनेक बार भूमि, मकान तथा दुकान आदि बन्धकर रखकर ऋण दिये जाते हैं । कभी-कभी तो ऋणदाता को बन्धक रखी सम्पत्ति का कब्जा नहीं दिया जाता, केवल उसका अधिकार पत्र दिया जाता है, और ऋणी उस सम्पत्ति को बेच भी नहीं सकता ।

साहूकारों व भू-स्वामियों की कार्य पद्धति अत्यन्त लोचदार होती है और वह समय, परिस्थिति तथा व्यक्ति के अनुसार उनमें परिवर्तन करता है । उसकी सर्वत्र आलोचना की गयी है । क्योंकि अनेक बार साहूकार ब्याज की रकम अग्रिम मांगते है । प्राय: यह रकम मूल रकम से काट ली जाती है। यही नहीं इस वर्ग द्वारा हिसाब किताब में गड़बड़ करने के आरोप भी लगाये जाते हैं । साहूकार न तो प्राप्त रकम के लिए रसीद देता है और न ही ऋणी को यथा समय हिसाब की जानकारी देता है । अनेक बार उसके विरूद्ध रकम जमा न करने की शिकायत भी की जाती है । सामान्य ऋणों पर ब्याज की दरें 12 से लेकर 36 प्रतिशत तक होती है । जबकि किस्त में भुगतान वाले ऋणों पर ब्याज की दर 40 प्रतिशत तक भी पाई जाती है ।

(ii) **संस्थागत स्त्रोत (Institutional Sources)-**कृषि वित्त के संस्थागत स्त्रोतों में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं, सहकारी समितियों व सरकार आदि को सम्मिलित किया जाता है । वर्तमान में लगभग 58 प्रतिशत ऋण संस्थागत स्त्रोतों द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं । संस्थागत स्त्रोतों से कृषि, साख की कुल राशि 1997-98 में 31956 करोड़ रूपये थी, जो 2008-07 में बढ़कर 141455 करोड़ रूपये हो गई ।

कृषि के कुल संस्थागत ऋण में अल्प कालीन ऋण का अंश वर्ष 2006-07 में 58 प्रतिशत अनुमानित किया गया था, जबकि मध्यम तथा दीर्घकालीन ऋण का अंश 39 प्रतिशत

अनुमानित किया गया था । रिजर्व बैंक के निर्देशों के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्यिक बैंकों को अपनी कुल साख का 18 प्रतिशत कृषि क्षेत्रों को उपलब्ध कराना होता है, किन्तु दिसम्बर 2008 तक इन बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराई गई बकाया साख कुल बैंक साख का 65 (137755.56 करोड़ रूपये) प्रतिशत ही रही थी ।

भारत में विभिन्न संस्थागत स्त्रोतों द्वारा कृषि क्षेत्र को उपलब्ध करवायी जाने वाली कुल साख में प्रतिशत को तालिका-1 में प्रस्तुत किया गया है :

तालिका-1

भारत में संस्थागत कृषि साख का प्रतिशत वितरण (प्रतिशत में)

वर्ष	सहकारी बैंक	श्रेत्रीय ग्रामीण बैंक	वाणिज्यक बैंक	कुल साख में संस्थागत स्त्रोतों का प्रतिशत
1997-98	44	6	5	21
1998-99	43	7	5	15
1999-2000	40	7	53	26
2000-01	39	8	53	14
2001-02	38	8	54	17
2002-03	34	8	58	14
2003-04	31	9	60	22
2004-05	28	11	61	-
2005-06	22.20	8.39	69.01	39
2006-07	20.90	10.05	69.05	58
2007-08	24.01	11.56	64.63	65

*आँकड़े दिसम्बर 2004 तक हैं । स्रोत: वार्षिक प्रतिवेदन, नाबार्ड।

भारत में विभिन्न संस्थागत स्त्रोतों द्वारा कृषि क्षेत्र को उपलब्ध करवायी जाने वाली वास्तविक साख की राशि का विवरण तालिका-2 में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका- 2

भारत में संस्थागत कृषि साख का वितरण (करोड़ रूपये)

वर्ष	सहकारी बैंक	श्रेत्रीय ग्रामीण बैंक	वाणिज्यक बैंक	कुल संस्थागत साख
1997-98	14,085	2040	15,831	31,956
1998-99	15,957	2460	18,443	33,860
1999-2000	18,363	3172	24,733	46,268
2000-01	20,801	4219	27,807	52,827

2001-02	23,604	4854	33,587	62,405
2002-03	23,716	6070	39774	69560
2003-04	26,959	7, 581	52,441	86,981
2004-05	37424	12404	81481	125309
2005-06	37252	14076	116449	167777
2006-07	42479.80	20434.65	140381.93	203296.38
2007-08	33070.17	15924.56	88764.83	137759.56

* आंकड़े दिसम्बर 2004 तक हैं ।

स्रोत: वार्षिक प्रतिवेदन, नाबार्ड ।

(क) **वित्तीय संस्थाएँ (Financial Institutions)-**इनमें मुख्य रूप से नाबार्ड, रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, भूमि विकास बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक आदि को सम्मिलित किया जाता है । इनका वर्णन निम्न प्रकार है:

1. **नाबार्ड (National Bank of Agriculture and Rural Development-NABARD)-**यह देश में कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु वित्त उपलब्ध करने वाली शीर्ष संस्था है । राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना 12 जुलाई 1982 को की गई थी । नाबार्ड की चुकता पूँजी 100 करोड़ रूपये में भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक का बराबर (50:50) का योगदान था । वर्ष 1998 में इसे बढ़ाकर 1000 करोड़ रूपये कर दिया गया था । जिसमें रिजर्व बैंक का योगदान 800 करोड़ रूपये तथा केन्द्र सरकार का 200 करोड़ रूपये था ।

   नाबार्ड ग्रामीण ऋण ढाँचे में एक शीर्षस्थ संस्था के रूप में अनेक, वित्तीय संस्थाओं (राज्य भूमि विकास बैंक, राज्य सहकारी बैंक, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आदि) को पुनर्वित सुविधाएँ प्रदान करता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक गतिविधियों के क्षेत्रों को बढ़ावा देने के लिए ऋण देती है । अपनी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत सरकार, नाबार्ड, विश्व बैंक तथा अन्य ऐजेन्सियों से राशियाँ प्राप्त करता है । यह केन्द्र सरकार की गारण्टी प्राप्त बॉण्ड तथा ऋणपत्र जारी करके भी संसाधन जुटा सकता है । इसके अतिरिक्त यह राष्ट्रीय ग्रामीण साख (स्थिरीकरण) निधि के संसाधनों का भी प्रयोग करता है । 1 अप्रैल 1995 से नाबार्ड के तहत एक नई ग्रामीण आधारित संरचनात्मक विकास निधि (Rural Infrastructure development Fund) की स्थापना की गई । इस कोष के लिए उन बैंकों से अंशदान स्वीकार किया गया था जो प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) को लक्ष्य के अनुरूप साख उपलब्ध नहीं करा सके थे । वर्ष 2001-02 के दौरान एक लाख अतिरिक्त स्व-सहायता समूहों को नाबार्ड से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है । नाबार्ड और भारतीय रिजर्व बैंक प्रत्येक के द्वारा 40 करोड़ रूपये के अंशदान से नाबार्ड में एक लघु वित्त विकास निधि की भी स्थापना कर दी गई है, RIDF का ऋण देने

का क्षेत्र भी बढ़ाया गया है । इससे ग्राम स्तर की संरचनात्मक परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए ग्राम पंचायत, सेल्फ हैल्फ ग्रुप तथा गैर सरकारी संगठनों को ऋण उपलब्ध कराया जाता है । वर्ष 1999-2000 के दौरान नाबार्ड द्वारा अनुसूचित व्यापारिक बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को कुल 6080.54 करोड़ रूपये की सहायता उपलब्ध कराई गई । नाबार्ड ने वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंकों के माध्यम से अक्टूबर 2006 तक लगभग 645 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किए । यह किसान क्रेडिट कार्ड स्कीम एक निरन्तर चलने वाली स्कीम है जिसका उद्देश्य अल्पकालीन फसल ऋण जारी करने में पारम्परिक तरीकों को धीरे- धीरे समाप्त करना है । इसके अन्तर्गत दिए जाने वाले ऋणों को कृषि बीमा योजना के अधीन लाया गया है ।

2. **भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of इंडिया)-**यह भारत का केन्द्रीय बैंक हैं । इसकी स्थापना रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम 1934 के तहत 1 अप्रैल 1935 को 5 करोड़ रूपये की अधिकृत पूँजी से हुई थी । इसका राष्ट्रीयकरण 1 जनवरी 1949 को किया गया, जिससे यह देश के कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के विकास में योगदान दे सके । बैंक रिजर्व कृषकों को कोई प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान नहीं करता है । 12 जुलाई 1982 के बाद से रिजर्व बैंक ने कृषि वित्त का समस्त भार नाबार्ड को सौंप दिया है, जो कृषि वित्त सम्बन्धी ऋणों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है ।
3. **व्यापारिक बैंक (Commercial Banks)-**सन् 1968 तक व्यापारिक बैंक कृषि में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं देता था, लेकिन 14 व्यापारिक बैंकों का 19 जुलाई 1969 को और 6 बैंकों का 15 अप्रैल, 1980 को राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात् इन बैंकों के द्वारा अब कृषि वित्त में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जाने लगा है । इनके अतिरिक्त अन्य व्यापारिक बैंक भी इस सम्बन्ध में सरल नीति का अनुसरण कर कृषि वित्त सुलभ करा रहे हैं । ये बैंक अल्पकालीन व मध्यकालीन दोनों प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं ।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का कृषि साख प्रवाह में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है । तालिका-3 में प्रस्तुत आंकड़ें दर्शाते हैं कि वाणिज्यिक बैंकों द्वारा 2002-03 में कुल 39774 करोड़ रूपये की साख कृषि क्षेत्र को प्रदान की गई । वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि साख प्रवाह की राशि निरन्तर बढ़ते हुए 2006-07 तक 88755 करोड़ रूपये हो गई । तालिका-3 में वाणिज्य बैंकों द्वारा कृषि साख का प्रवाह दर्शाया गया है ।

तालिका-3

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि साख प्रवाह (करोड़ रूपये)

वर्ष	कृषि साख की कुल राशि
1994-95	8,265
1995-96	10,172

1996-97	12,783
1997-98	15,831
1998-99	18,443
1999-2000	24,733
2000-01*	27,711
2001-02*	41,217
2002-03	39774
2003-04	52421
2004-05	81481
2005-06	116449
2006-07	88755

स्त्रोत - वार्षिक प्रतिवेदन, नाबार्ड ।

4. भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)-

1. भारतीय स्टेट बैंक का जन्म 2 जून 1806 को बैंक ऑफ कलकत्ता के रूप में हुआ था, सन् 1921 में इसे बैंक ऑफ मद्रास (1843) तथा बैंक ऑफ बम्बई (1840) के साथ मिला कर इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया का नाम दे दिया गया । संसद द्वारा पारित एक कानून के तहत 1 जुलाई 1955 को इसे भारतीय स्टेट बैंक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया । सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक सबसे बड़ा बैंक है । 30 जून 2007 को इसके सहयोगी बैंकों सहित इसकी 14082 शाखाएँ थी । 7 सहयोगी बैंकों के समस्त अथवा अधिकांश शेयर पूँजी भारतीय स्टेट बैंक के पास है । स्टेट बैंक तथा उसके सहयोगी बैंक मिलकर देश के कुल बैंकिंग कारोबार का 262 प्रतिशत कारोबार संभालते हैं तथा सरकारी क्षेत्र के बैंकों द्वारा किए गए कारोबार का 319 प्रतिशत कारोबार सँभालते है। यह बैंक अपनी स्थापना से ही कृषि वित्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहा है । जिसके परिणामस्वरूप यह निम्न प्रकार की सुविधाएँ देता है ।

(1) जिन स्थानों पर केन्द्रीय बैंक नहीं है या सहकारी समितियाँ ऋण देने में असमर्थ हैं वहाँ सहकारी समितियों को यह बैंक प्रत्यक्ष ऋण देता है ।

(2) यह बैंक सहकारी बैंकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन भेजने की निःशुल्क सुविधा प्रदान करता है ।

(3) यह कृषि गोदामों को बनाने के लिए ऋण की सुविधा देता है ।

(4) कृषकों को ट्रैक्टरों व अन्य मशीन क्रय करने एवं सिंचाई के पम्प सेट लगाने के लिए यह बैंक उनको सीधा ऋण प्रदान करता है ।

(5) यह ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखाएँ खोलकर कृषि क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप से ऋण देने का प्रयास कर रहा है । इस समय स्टेट बैंक व उसकी सहायक बैंकों की 77.1 प्रतिशत शाखाएँ ग्रामीण या अर्ध ग्रामीण क्षेत्रों में हैं ।

स्टेट बैंक ने गाँव अंगीकृत योजना (Village Adoption Scheme) प्रारम्भ की है । इस योजना का उद्देश्य गोद लिये गये अर्थात् अंगीकृत गांव को वित्तीय सुविधा प्रदान करना है।

2. यह देश का पहला वाणिज्यिक बैंक है जिसे नाबार्ड ने स्वयं सहायता प्रोन्नयन संस्था का दर्जा दिया है ।

5. **भूमि विकास बैंक (Land Development Banks)-**किसानों की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूमि विकास बैंकों की स्थापना की गई है । ये बैंक किसानों को भूमि खरीदने, भूमि पर स्थाई सुधार करने अथवा पुराने ऋणों का भुगतान करने आदि के लिए दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करते हैं । इन बैंकों का ढाँचा दो स्तर वाला है, राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा जिला स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंकों की स्थापना की गई है। भूमि विकास बैंक किसानों की अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर ऋण प्रदान करते हैं । साधारणतया प्रतिभूति के मूल्य का 50 प्रतिशत ऋण दिया जाता है ।

भूमि विकास बैंक के उद्देश्य :-

(i) कुल स्वीकृत ऋण का 90 प्रतिशत भाग उत्पादक कार्यो के लिए दिया जाता है ।

(ii) शेष 10 प्रतिशत ऋण किसानों को उनका पुराना कर्ज चुकाने के लिए दिया जाता है ।

6. **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks)-**समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों एवं कारीगरों को संस्थागत उधार उपलब्ध कराने के लिए देश में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई है । आरम्भ में 2 अक्टूबर 1975 को पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए गए । उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद और गौरखपुर, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में जयपुर तथा पश्चिम बंगाल में माल्दा में इन बैंकों की स्थापना की गई । बाद में देश के अन्य भागों में भी इन बैंकों का विस्तार किया गया ।

30 जून 2005 को 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 523 जिलों में 480 जिलों के अन्तर्गत 14,464 शाखाएँ कार्य कर रही थी, जिनमें से 12,158 शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में हैं । ये ग्रामीण शाखाएँ अनुसूचित व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रदत्त कुल ग्रामीण साख में 37.4 प्रतिशत का योगदान देती है। 31 अगस्त, 2006 तक 134 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को मिलाकर 42 नये बैंक गठित किये गए हैं, इन बैंकों की संख्या वर्तमान में 196 से घटाकर 104 हो गई हैं । पिछले वर्षों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में कई संरचनात्मक परिवर्तन किये गये हैं ताकि ग्रामीण साख को अधिक प्रभावी बनाया जा सके ।

प्रत्येक ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूँजी एक करोड़ रूपये निर्धारित की गई हैं । यह अधिकृत पूँजी केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक एवं समर्थक बैंक की सलाह से कम कर सकता है, किन्तु वह 25 लाख रूपये से कम नहीं होगी । प्रत्येक बैंक की निर्गमन पूँजी 25 लाख रूपये होगी । इसमें से 50 प्रतिशत केन्द्रीय सरकार, 15 प्रतिशत राज्य

सरकार एवं 35 प्रतिशत समर्थक बैंक द्वारा प्रदान की जाएगी । 12 जुलाई 1982 को इन बैंकों का नियन्त्रण रिजर्व बैंक ने नाबार्ड को सौंप दिया था ।

7. **सहकारी बैंक (Co-operative Banks)-**भारत में सहकारी बैंकों का गठन त्रिस्तरीय है । राज्य सहकारी बैंक सम्बन्धित राज्य में शीर्ष संस्था होती है । इसके बाद केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक जिला स्तर पर कार्य करते हैं । तृतीय स्तर प्राथमिक ऋण समितियों का स्थान होता है, जो ग्राम स्तर पर कार्य करती है ।

   (i) **प्राथमिक साख समितियाँ (Primary Credit Societies)-**इनकी स्थापना कृषि क्षेत्र की अल्पकालीन ऋणों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए की गई है । एक गांव अथवा क्षेत्र के कोई भी कम से कम दस व्यक्ति मिलकर एक प्राथमिक साख समिति का गठन कर सकते हैं । ये समितियॉ प्राथमिक कृषि साख समितियाँ भी कहलाती हैं तथा सामान्यत: यह उत्पादक कार्यों के लिए अल्पकालीन (एक वर्ष के लिए) ऋण देती है, परन्तु विशेष परिस्थितियों में इनकी अवधि तीन वर्ष तक के लिए बढ़ाई जा सकती है ।

   (ii) **केन्द्रीय सहकारी बैंक (Central Co-operative Banks)-**इन्हें जिला सहकारी बैंक भी कहा जाता है, इनका कार्य क्षेत्र एक जिले तक ही सीमित रहता है । केन्द्रीय सहकारी बैंकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं- (1) सहकारी बैंकिंग संघ, तथा (2) मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक। सहकारी बैंकिंग संघ की सदस्यता सिर्फ सहकारी समितियों को ही प्राप्त होती हैं, जबकि मिश्रित सहकारी बैंकों के सदस्य सहकारी समितियाँ तथा व्यक्ति दोनों ही हो सकते हैं । भारत के समस्त राज्यों में प्राय: मिश्रित सदस्यता वाले केन्द्रीय सहकारी बैंक हैं । ये बैंक सहकारी साख समितियों को आवश्यकतानुसार ऋण प्रदान करते हैं, जिससे कि ये समितियाँ कृषकों तथा सदस्यों को समुचित आर्थिक सहायता उपलब्ध करा सकें ।
   केन्द्रीय सहकारी बैंक अपनी चालू पूँजी में राज्य सहकारी बैंक से ऋण लेकर वृद्धि करते हैं तथा सहकारी समितियों को ऋण देते हैं । इनके ऋण की अवधि भी एक वर्ष से तीन वर्ष तक की हो सकती है । इस प्रकार अधिकांश केन्द्रीय बैंक, राज्य सहकारी बैंक तथा प्राथमिक ऋण समितियों के मध्य अन्तर्वर्ती (Mediator) का कार्य करते हैं ।

   (iii) **राज्य सहकारी बैंक (State Co-operative Bank)-**इस बैंक को राज्य का शीर्ष सहकारी बैंक भी कहते हैं । यह बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंकों को ऋण देता है, और उनके कार्यों का नियमन एवं नियंत्रण भी करता है । यह बैंक रिजर्व बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा प्राथमिक सहकारी समितियों के मध्य एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय कड़ी का कार्य सम्पन्न करता है ।

तालिका-4

सहकारी साख संस्थाओं द्वारा कृषि साख प्रवाह

(करोड़ रुपये)

वर्ष	कृषि साख की कुल राशि
2002-03	23716.00
2003-04	26959.00
2004-05	31424.00
2005-06	37252.00
2006-07	42479.80
2007-08	33070.17

स्त्रोत - वार्षिक प्रतिवेदन, नाबार्ड ।

सहकारी साख संस्थाओं द्वारा कृषि वित्त प्रवाह को तालिका-4 में दर्शाया गया है । इन संस्थाओं द्वारा 2002-03 में 23716 करोड़ रूपये की कृषि साख का प्रवाह हुआ था । विगत कुछ वर्षों में सहकारी साख संस्थाओं द्वारा कृषि साख प्रवाह में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है । तकावी ऋण पर ब्याज 4 प्रतिशत की दर से वसूल किया जाता है तथा किसान को यह ऋण तहसीलदार द्वारा उपलब्ध कराया जाता है ।

(ब) सरकार (Government)-कृषि साख की व्यवस्था राज्य तथा केन्द्रीय सरकार भी करती है। राज्य द्वारा कृषि भूमि सुधार ऋण अधिनियम, 1883 तथा कृषक ऋण अधिनियम 1884 के अन्तर्गत किसानों को तकावी (ऋण) दिये जाते हैं । तकावी ऋणों का प्रारम्भ अकाल अथवा बाढ़ आदि के उत्पन्न संकट की स्थिति में सहायता देने के लिए किया गया था, परन्तु धीरे-धीरे यह सरकार का नियमित कार्य बन गया ।

5.5 भारत में कृषि वित्त की कमियाँ अथवा दोष (Shortcomings and Demerits of Agricultural Finance in India)

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को पर्याप्त साख उपलब्धि की दृष्टि से ऐसी वित्तीय संस्थाओं की स्थापना का जाल सा बिछा गया है जो कृषकों के हितों में सर्वथा अनुकूल हो । कृषि क्षेत्र को साख प्रवाह करने वाली संस्थाओं के विशेष प्रयासों के बावजूद आज भी भारतीय कृषि की समस्याओं में अपर्याप्त वित्तीय संसाधनों की आपूर्ति महत्त्वपूर्ण समस्या है इसके लिए प्रमुख रूप से भारत में कृषि वित्त की कमियाँ अथवा दोष प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। भारतीय कृषि वित्त की प्रमुख कमियां अथवा दोष निम्नलिखित है :

1. कृषक की अधिकांश आवश्यकताएँ आज भी साहुकारों एवं महाजनों द्वारा ही पूरी की जाती है, क्योंकि उन्हें संस्थागत वित्त प्राप्त नहीं होता ।
2. कृषि साख की पूर्ति में व्यापारिक बैंक अपने हित साधने के लिए ऋण का अधिक वितरण धनी तथा बड़े कृषकों को करते हैं, जिससे छोटे कृषकों को साहुकारों पर निर्भर रहना पड़ता है ।

3. भारतीय कृषक को साहुकार से प्राप्त ऋण की ऊँची ब्याज दर से भुगतान करना पड़ता है ।
4. कृषक को संस्थागत वित्त भूमि की व्यवस्था उचित मात्रा में न होने के कारण किसान को न तो साख का पूरा लाभ मिल पाता है और न ही वह साहुकारों के चंगुल से निकल पाता है ।
5. सहकारी ऋणों के वितरण में अत्यधिक भ्रष्टाचार है, तथा अब यह व्यापारिक बैंकों व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में भी पहुँच गया है । इससे ऋण की लागत बढ़ जाती है ।

5.6 कृषि वित्त व्यवस्था के सुधार हेतु सुझाव (Suggestion for Improvement in the of Agriculture Finance)

1. कृषि वित्त प्रदान करने वाली वित्तीय संस्थाओं का प्रबन्ध कुशल ईमानदार व्यक्तियों के हाथों में होना चाहिए ।
2. कृषि वित्त प्रदान करने वाली विभिन्न सहकारी व गैर सरकारी संस्थाओं में उचित समन्वय होना चाहिए ।
3. ऋण उधार देते समय कृषक की भूमि पर जोर न देकर उसकी उपज अर्थात् ऋण अदायगी पर जोर दिया जाना चाहिए ।
4. सहकारी समितियों के पूँजीगत संसाधनों में वृद्धि की जानी चाहिए, जिससे वे किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकें ।
5. सहकारिता आन्दोलन को और अधिक सुदृढ़, प्रभावी व विश्वसनीय बनाने के हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए ।
6. सरकार द्वारा ऋण माफी योजना से नियमित रूप से ऋण चुकाने वाले किसानों के मन में भेदभाव का मनोभाव पैदा होता है इससे किसान ऋण का भुगतान नहीं करने में विश्वास करना है। सरकार को ऐसी योजनाओं को नहीं अपनाना चाहिए ।

अत: भारत में कृषि वित्त की व्यवस्था की दृष्टि से सहकारी साख समितियों को और अधिक मजबूत बनाना चाहिए । इसके लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं:

(1) देश में उपलब्ध सीमित साधनों से अधिकतम लाभ उठाने के लिए प्रारम्भ में चुने हुए क्षेत्रों में ही सहकारी संस्थाओं के भरपूर उपयोग किए जाने पर जोर देना चाहिए ।

(2) शिक्षा, अनुसंधान, गांवों में सामाजिक सुधार व रोजगार के अवसर बढ़ाने की ओर काफी ध्यान देना चाहिए ।

(3) इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि खेती सम्बन्धी सभी कार्य सहकारी आधार पर किए जाएं, जिससे खेती में उन्नति के साथ-साथ गाँवों में एक नए समाज का भी निर्माण हो सके ।

भारत की पंचवर्षीय योजना में भी कृषि विकास के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण उपायों का समावेश किया गया है । योजनाओं में उद्देश्य यह रखा गया है कि करोड़ों किसानों, विशेषकर छोटे व कमजोर खेतीहरों की दशा सुधारने के साथ-साथ अनाज के सम्बन्ध में देश को आत्मनिर्भर

बनाया जाए और कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने की व्यवस्था इस तरह की जाए कि उद्योग और निर्यात की आवश्यकताएँ पूरी हो सके ।

5.7 क्रेडिट कार्ड (Credit Card)

क्रेडिट कार्ड वर्तमान समय में भुगतान किये जाने की एक अत्यन्त सुविधाजनक प्रणाली सिद्ध हुई है । बढ़ती हुई अराजकता के कारण नकद पैसा सदैव अपने पास रखना जोखिमपूर्ण है ऐसे में बैंकों द्वारा आम आदमी के जीवन को सुगम बनाने के उद्देश्य से क्रेडिट कार्ड की सुविधा प्रदान की गयी है । क्रेडिट कार्ड एक छोटा-सा प्लास्टिक कोटेड कार्ड है जो आसानी से जेब में रखा जा सकता है । इस कार्ड का प्रयोग कर बिना नकद भुगतान किये खरीददारी की जा सकती है । इस कार्ड में एक कोड तथा पिन नम्बर अंकित होता है । कार्ड के सम्बन्ध में निर्धारित सीमा के अन्तर्गत नकद राशि का आहरण अथवा वस्तुओं का क्रय किया जा सकता है क्रेडिट कार्ड धारक अपना क्रेडिट कार्ड विक्रेता को दिखाता है और विक्रेता उसका कोड नम्बर, भुगतान रसीद जिस पर कार्ड धारक के हस्ताक्षर होते हैं तथा बिल कार्ड जारी कर्त्ता को भेज देता है । बिल का भुगतान ग्राहक के बैंक खाते से हो जाता है ।

क्रेडिट कार्ड को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से इसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को अत्यन्त सरल बनाया गया हैं । क्रेडिट कार्ड प्राप्त करने के लिए किसी भी बैंक से आवेदन किया जा सकता है कार्ड जारी कर्त्ता बैंक न्यूनतम और नियमित आय स्त्रोत पर ध्यान देते हुए क्रेडिट कार्ड जारी कर देते है । क्रेडिट कार्ड के लिये एक बार प्रवेश शुल्क देना पड़ता है । इसके अलावा वार्षिक शुल्क भी देना होता है । बैंक अपने प्रतिष्ठित ग्राहकों को प्रारम्भ में यह सुविधा मुफ्त भी उपलब्ध कराती है । साधारण क्रेडिट कार्ड पूरे देश में कही भी स्वीकार्य होता है जबकि ग्लोबल या अन्तर्राष्ट्रीय कार्ड विदेशों में भी चल सकता है । क्रेडिट कार्ड से नकद पैसा भी निकाला जा सकता है । यदि क्रेडिट कार्ड खो जाये तो इसकी सूचना तुरन्त बैंक को की जानी चाहिए जिससे उसके अवैध प्रयोग को रोका जा सके ।

किसान क्रेडिट कार्ड (Kisan Credit Card)

किसान क्रेडिट कार्ड योजना ना केवल किसानों में बल्कि बैंकों के बीच भी अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई है । किसान कार्ड योजना के प्रारम्भ के पश्चात ऋण की स्वीकृति में होने वाले विलम्ब और निर्गमन की अनेक समस्याओं का स्वत: ही समाप्त हो जाने के कारण किसानों के लिए ऋण प्रवाह सुगम हो गया है।

किसान क्रेडिट कार्ड की विशेषताएँ (Salient Feature of Kisan Credit Card)

किसान क्रेडिट कार्ड योजना का प्रारम्भ वाणिज्यक बैंकों तथा क्षेत्रिय ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि साख को सुगम बनाने की दृष्टि से अगस्त 1998 से प्रारम्भ की गई । किसान क्रेडिट कार्ड योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार है:

1. किसान क्रेडिट कार्ड ऐसे किसानों को निर्गमित किये जायेंगें जो 5,000 रू. और इससे अधिक उत्पादन साख और इससे अधिक राशि की उत्पादन साख प्राप्त करने हेतु योग्य है।
2. योग्य किसानों को किसान क्रेडिट कार्ड तथा पासबुक अथवा किसान क्रेडिट कार्ड के साथ पास बुक निर्गमित की जायेगी ।

3. किसान क्रेडिट धारकों को घूमती हुई नकद साख (Revolving Cash Credit) की सुविधा प्रदान की जायेगी । किसान अपनी निर्धारित राशि की सीमा में कितनी ही बार आहरण (Drawals) तथा पुनर्भुगतान (Re-Payment) की सुविधा प्राप्त कर सकेगा।
4. किसान क्रेडिट कार्ड पर राशि की सीमा निर्धारित करते समय किसान की सम्पूर्ण वर्ष की साख आवश्यकता, कृषि उत्पादन के लिये सहायक क्रियाओं से सम्बन्धित वित्तीय आवश्यकता को ध्यान में रखा जायेगा । यह स्पष्ट किया गया है कि आगे आने वाले समय में कृषि सम्बन्धित समस्त गतिविधियों तथा गैर फार्म कृषि साख आवश्यकता को भी साख राशि के निर्धारण में ध्यान रखा जायेगा ।
5. बैंक के विवेक के आधार पर किसान कार्ड पर राशि की उप-सीमा (Sublimit) भी निर्धारित की जायेगी ।
6. किसान क्रेडिट कार्ड तीन वर्ष के लिये मान्य होगा, किन्तु इसका प्रत्येक वर्ष पुर्ननिरिक्षण करवाना आवश्यक होगा ।
7. प्राकृतिक विपदा से कृषि फसल को हानि पहुँचने की स्थिति में ऋणों के परिवर्तन या पुन: सूचियन (Conversion/Resuchedulement) भी मान्य होगा ।
8. किसान क्रेडिट कार्ड पर प्रलोभन देने के प्रयोजन से कृषि उत्पादन की बढ़ी हुई लागत तथा फसल प्रणाली इत्यादि में हुए अत्यधिक व्यय के सम्बन्ध में किसान क्रेडिट पर निर्धारित सीमा की राशि में वृद्धि की जा सकती है ।
9. किसान क्रेडिट कार्ड पर सुरक्षा, मार्जिन तथा ब्याज दर भारतीय रिजर्व बैंक के मापदण्डों के अनुसार निर्धारित होती है ।
10. किसान क्रेडिट कार्ड का प्रयोग जिस साखा द्वारा इसे निर्गमित किया गया है अथवा बैंक के विवेक द्वारा किसी अन्य साखा को अधिकृत किया गया है, उसमें ही किया जा सकेगा ।
11. किसान क्रेडिट कार्ड पर राशि का आहरण, स्लीप अथवा चैक के द्वारा किया जा सकता है । इसके साथ किसान क्रेडिट को प्रस्तुत करना आवश्यक होगा ।
12. भारत में किसान क्रेडिट कार्ड को निर्गमित करने का प्रारम्भिक उत्तरदायित्व 27 वाणिज्यक बैंकों, 183 केन्द्रीय सहकारी बैंकों तथा 144 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दिया गया था ।
13. किसान क्रेडिट कार्ड धारकों को वैयक्तिगत दुर्घटना बीमा की सुविधा प्रदान की गई है । इस सुविधा के अन्तर्गत किसान क्रेडिट कार्ड धारकों को, दुर्घटना से उनकी मृत्यु या स्थायी अपंगता और आंशिक अपंगता के लिए क्रमश: रू. 50,000 और रू. 25,000 का प्रावधान किया गया है ।
14. प्रत्येक आहरण का भुगतान 1 वर्ष से करना अनिवार्य होगा ।

किसान क्रेडिट कार्ड कारोबार (Kisan Credit Card Business)

कृषकों को अल्पकालीन साख सुविधायें प्रदान करने के सम्बन्ध में यह एक अत्यन्त ही नव प्रवर्तीत योजना सिद्ध हुई है । वर्तमान में इस योजना को अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हुई है ।

इस योजना के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व वर्तमान में 27 वाणिज्यक बैंकों, 278 जिला केन्द्रिय सहकारी बैंकों एवं राज्य सहकारी बैंकों तथा 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा सम्पूर्ण देश में लागू की गयी है । इस योजना के अन्तर्गत निर्गमित किये गये किसान क्रेडिट कार्ड तथा उन पर स्वीकृत राशि में उत्तरोत्तर वर्षों में इन्हें लागू किये जाने के पश्चात निरन्तर वृद्धि हुई है इस योजना को लागू किये जाने से नवम्बर 2007 तक 705.55 लाख किसान क्रेडिट कार्ड जारी किये जा चुके है । विभिन्न वित्तीय ऐजेन्सियों द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड योजना के सम्बन्ध में की गयी प्रगति को तालिका-5 में दर्शाया गया है ।

तालिका-5

किसान क्रेडिट कार्डों की संख्या तथा उन पर स्वीकृत राशि

वर्ष	सहकारी बैंक		क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक		वाणिज्य बैंक		कुल	
	जारी कार्ड (लाख)	स्वीकृत राशि (करोड़)	जारी कार्ड (लाख)	स्वीकृत राशि (करोड़)	जारी कार्ड (लाख)	स्वीकृत राशि (करोड़)	जारी कार्ड (लाख)	स्वीकृत राशि (करोड़)
1998-99	155	826	7	11	445	1247	607	2084
1999-00	35.95	3606	1.73	405	13.66	3537	5134	7548
2000-01	56.14	9412	6.48	1400	23.90	5615	86.52	16427
2001-02	54.36	15952	8.33	2382	30.71	7564	93.40	25858
2002-03	45.79	15841	9.69	2955	26.81	7387	82.24	26,183
2003-04	48.78	9855	12.74	2599	31.00	9331	92.50	21,785'
2004-05 (सित.2004)	16.00	9741	5.6	1513	उ.न.	उ.न.	21.6	11,254
2005-06	18.00	19831	7.3	2364			270.60	71479
2006-07							85.11	46729
2007-08								25263

वार्षिक प्रतिवेदन, नाबार्ड ।

किसान क्रेडिट कार्ड का प्रारूप

किसान क्रेडिट कार्ड

किसान ऋण कार्ड सह पास बुक का प्रपत्र

जारी करने वाली शाखा :

वैधता की अवधि :

जिन शाखाओं में मान्य है : ..... शाखा पी.ए.सी.एस.....

कार्ड धारक का नाम :

पिता/पति का नाम :

पी.ए.सी.एम. का नाम :

(सहकारिता के मामले में) :

पता :

गांव का नाम :

प्रखण्ड :

डाकघर :

कार्ड धारक के हस्ताक्षर अथवा
बायें हाथ से अंगूठे का निशान

जारी करने वाले प्राधिकारी
का नाम तथा मुहर

क्र.सं.:	सिंचित	असिंचित
जोत भूमिका क्षेत्रफल : (हेक्टेयर में)		
स्वामित्व:		
पट्टे की तिथि :		
कुल सी.सी. :		
खाता संख्या बहि ऋण :		
स्वीकृति की तिथि :		
जारी करने वाले प्राधिकारी के हस्ताक्षर में)		पी.ए.सी.एस. के सचिव का हस्ताक्षर (सहकारिता के मामले)

पास बुक कारोबार का विवरण

तिथि	विवरण	जमा रू.	ऋण रू.	शेष रू.	बैंक/पी.ए.सी.एस. अधिकारी के हस्ताक्षर

पास बुक में किसान का पूर्ण परिचय भूमि का विवरण, ऋण आवेदन व स्वीकृति का विवरण तथा कारोबार का विवरण अंकित किया गया है ।

5.8 कठिनाइयाँ (Dificulties) :

1. किसान क्रेडिट कार्ड योजना में सर्वप्रथम प्रभावशाली एवं शिक्षित किसानों ने ही इसका लाभ उठाया है ।
2. बैंक मैनेजर किसानों को अभी भी चक्कर लगवाते हैं ।
3. भूमि की किस्में कई दशकों बाद बदलती है जब भू प्रबन्ध किया जाता है । पुरानी किस्म के आधार पर ऋण कम प्राप्त होता है ।
4. अशिक्षा के कारण सामूहिक खाता बन्दी तथा नामान्तरण न खुलने के कारण भी असली खेतिहर किसान इस योजना का लाभ नहीं उठा पा रहा है ।
5. बैंक व्यवहार में किसान की कृषि को आधार न बनाकर उसकी अन्य आय को प्राथमिकता देकर अन्य आय वाले विशेष कर नौकरी पेशा वाले किसानों को तुरन्त कार्ड जारी कर देते हैं।
6. सुदूर क्षेत्र में रहने वाले किसानों को अभी भी किसान क्रेडिट कार्ड योजना का ज्ञान नहीं है ।
7. विभिन्न बैंकों की ब्याज दर भी भिन्न हैं ।
8. कृषि आय के अनुरूप किसान क्रेडिट कार्ड के तहत ब्याज दर को रियायती बनाकर 5 प्रतिशत तक लाना चाहिए जिससे भुगतान भी शीघ्र होगा तथा योजना के दायरे में सभी किसान आ जायेंगे
9. किसान अन्य उद्देश्यों के लिए भी कार्ड का उपयोग करता है ।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना से कृषि क्षेत्र में पूँजी निवेश बढ़ा है । किसान को ऋण लेने में सुगमता हो गयी है तथा अपने आपको सुरक्षित महसूस करता है ।

5.10 सारांश

ग्रामीण भारत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । परम्परागत ग्रामीण वित्त के स्रोत के रूप में सेठ, साहूकार, महाजन, सूदखोर आदि प्रमुख है । वर्तमान समय में सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, स्टेट बैंक एवं समूह आदि प्रमुख है । सरकार द्वारा इस दिशा में सकारात्मक प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से निरस्त किये जा रहे है । ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण वित्त के परम्परागत एवं आधुनिक स्रोत सफलता के साथ कार्य कर रहे है । भारतीय किसान आज भी बैंकिंग संस्थाओं की तुलना में साहूकार या महाजन से ऋण लेना ज्यादा पसंद करता है जबकि साहूकार बैंकों की तुलना में किसान से अधिक ब्याज वसूल करता है। सरकार को वास्तव में उन कारणों का पता लगाना चाहिए जिसके कारण किसान बैंक की तुलना में महाजन को पसंद करता हैं एवं इन कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5.11 शब्दावली

1. वित्त
2. सहायक क्रियाएं
3. उत्पादकता
4. यंत्रीकरण
5. भूमि सुधार
6. गैर-कृषि कार्य
7. सीमांत किसान
8. गैर-कृषि वित्त
9. कृषि वित्त
10. अल्पकालीन ऋण
11. मध्यम कालीन ऋण
12. दीर्घकालीन ऋण
13. गैर संस्थागत स्रोत
14. संस्थागत स्रोत
15. नाबार्ड
16. भारतीय रिजर्व बैंक
17. व्यापारिक बैंक
18. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
19. सहकारी बैंक
20. किसान क्रेडिट कार्ड

5.11 स्व-परख

1. कृषि वित्त का अर्थ बताइये ।
2. भूमि विकास बैंक क्या है?
3. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना का क्या उद्देश्य है?
4. राष्ट्रीयकृत बैंक क्या है?
5. कृषि वित्त की क्या आवश्यकता है?
   What is the need of Agriculture Finance?
6. कृषि वित्त के प्रकार बतलाइये ।
   What are the types of Agriculture Finance?
7. कृषि वित्त के गैर संस्थागत स्रोत क्या है?
   What are the non institutional sources of Agriculture Finance?
8. कृषि वित्त के प्रमुख प्रकार बतलाइये ।

What are the main types of Agriculture Finance?

9. कृषि वित्त की कोई चार प्रमुख समस्याएँ समझाइये ।
   Explain any four problems of Agriculture Finance.
10. किसान क्रेडिट कार्ड क्या है?
    What is Kisan Credit Card?

5.12 व्यावहारिक प्रश्न

1. भारत में कृषि वित्त के विभिन्न स्रोतों का विस्तार से वर्णन कीजिये ।
2. किसान क्रेडिट कार्ड योजना की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ।
3. भारत में ग्रामीण वित्त संस्थाओं की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ।

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता-स्वामी, भारत में आर्थिक पर्यावरण, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2008
2. जाट, वशिष्ठ, भिण्डा, जैन, भारत में आर्थिक पर्यावरण, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर, 2008
3. भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, 2008
4. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, 2006-07
5. भिण्डा-पुरी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2007
6. लक्ष्मी नारायण नाथूरामका, भारतीय अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2007

इकाई-6 : विश्व व्यापार संगठन एवं भारतीय कृषि
(World Trade Organisation & Indian Agriculture)

इकाई की रूपरेखा :

6.1 प्रस्तावना

6.2 इतिहास एवं विकास

6.3 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

6.4 स्पष्टीकरण

6.5 विश्व व्यापार संगठन की कार्यप्रणाली

6.6 कृषि पर वार्ताएँ

6.7 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत

6.8 भारतीय कृषि तथा विश्व व्यापार संगठन

6.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 स्व-परख प्रश्न

9.12 संदर्भ ग्रंथ

6.1 प्रस्तावना

आज विश्व का कोई भी देश स्वावलम्बी नहीं है । सभी देशों को किसी न किसी रूप में अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध रखने होते हैं । अत: अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सुगम एवं व्यवस्थित बनाने के लिए गैट की स्थापना की गई । वैश्वीकरण के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आकार बढ़ता गया । इसलिए 15 दिसम्बर, 1993 को विश्व के 117 देशों ने गैट समझौते (GATT Agreement) को स्वीकार कर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के इतिहास में सबसे बड़े बहुपक्षीय व्यापार समझौते को स्वीकृति प्रदान की। फलस्वरूप व जनवरी 1995 को "गैट" के स्थान पर "विश्व व्यापार संगठन" (W.T.O.) की स्थापना हुई । इसकी स्थापना से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कठिनाईयाँ दूर होगी तथा इसका क्षेत्र व्यापक होगा । इसके कार्य क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS), विदेशी पूँजी निवेश उपाय (TRIMS), सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Service), बाजार विस्तार (Market Excess), कपड़ा उद्योग तथा कृषि और संस्थागत मामलों को शामिल किया गया है। विश्व व्यापार संगठन को सदस्य देशों के अपने आन्तरिक राष्ट्रीय नियमों एवं घरेलू नीतियों में परिवर्तन कराने की बाध्यता का वैधानिक अधिकार भी प्राप्त है । इसके द्वारा यह विश्व व्यापार में बाधक देश के आन्तरिक नियमों में संशोधन के लिए सदस्य देशों को बाध्य कर सकता है ।

भारत एक कृषि प्रधान देश है । भारत विश्व व्यापार संगठन के संस्थापक सदस्यों में एक है । विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के बाद भारत के लिए इसके प्रावधानों को मानना

अनिवार्य हो गया है । कृषि सम्बन्धी मामले विश्व व्यापार संगठन' के अधिकार क्षेत्र में आने से भारतीय कृषि पर इसके प्रावधान लागू होंगे । जो भारतीय कृषि व्यवस्था को प्रभावित करेंगे । इस दृष्टि से भारतीय कृषि पर विश्व व्यापार संगठन के प्रभावों का अध्ययन आवश्यक है ।

6.2 इतिहास एवं विकास

सन् 1947 में जिनेवा अधिवेशन में सहभागी सदस्य देशों ने एक संस्था स्थापित करने का निर्णय लिया जिसे "गैट" (GATT) "प्रशुल्क दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौते" की संज्ञा दी गई । यह संस्था1948 से कार्यरत थी । आरम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 23 थी जो बढ़कर बाद में 102 हो. गई । कोई देश इसका नया सदस्य नहीं बन सकता था जब तक दो-तिहाई वर्तमान सदस्य इसके लिए अपनी सहमति न दे दें । सभी सदस्यों से समझौते में दी गई आचार-संहिता (Code of Conduct) का पालन करने की अपेक्षा की जाती थी ।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आने वाली बाधाओं को दूर करने, इसका क्षेत्र व्यापक करने एवं व्यापार का विस्तार करने के लिए "गैट" के स्थान पर एक अधिक शक्तिशाली एवं अधिकार सम्पन्न संस्था की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई । इसी सन्दर्भ में गैट (GATT) के आठवें अधिवेशन "उरुग्वे राउण्ड" (Uruguay Round) एवं उसके बाद लगातार 6-7 वर्षों के विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप गैट के स्थान पर **"विश्व व्यापार संगठन"** (WTO) की स्थापना का निर्णय लिया गया । अप्रैल, 1994 में गैट के सदस्य देशों द्वारा ऊरुग्वे दौर (UR) के अन्तिम मसौदे पर हस्ताक्षर किए गये जिससे WTO की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ । **1 जनवरी, 1995 से विश्व व्यापार संगठन ने अपना कार्य विधिवत् प्रारम्भ कर दिया** । विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय स्विटजरलैण्ड के जेनेवा (Geneva) शहर में स्थित है । WTO समझौते का 30 दिसम्बर, 1994 को अनुमोदन करके भारत इसका संस्थापक सदस्य (Founder member) बन गया । विश्व बैंक (WB), OECD एवं GATT सचिवालय के अनुमानों के अनुसार WTO की स्थापना के फलस्वरूप वर्ष 2005 तक वस्तुओं के व्यापार में 745 बिलियन डालर की वृद्धि होगी । गैट सचिवालय ने अनुमान लगाया है कि सर्वाधिक वृद्धि (60%) वस्त्र व्यापार में होगी । **इसके अलावा कृषि, वानिकी एवं मत्स्य उत्पादों में** 20% **एवं संसाधित खाद्य एवं पेय पदार्थो के व्यापार में** 19% **वृद्धि होगी।**

विश्व व्यापार संगठन के कार्य: विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

(1) प्रशुल्क (Tariff) एवं व्यापार से सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श के लिए सदस्य देशों को एक उपयुक्त मंच (appropriate forum) प्रदान करना ।

(2) विश्व संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग (Optimum use of world resource) करना ।

(3) व्यापार नीति की समीक्षा एवं प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।

(4) विश्व स्तर पर आर्थिक नीतियों के निर्माण में अधिक सामंजस्य लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहयोग करना ।

(5) विश्व व्यापार समझौता तथा अन्य बहुपक्षीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना ।

(6) WTO के सदस्य देशों के मध्य उत्पन्न विवादों के निपटारे (settlement of disputes) हेतु नियमों तथा प्रक्रियाओं को लागू करना ।

6.3 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के निम्नांकित उद्देश्य हैं-

(1) विश्व व्यापार की नवीन प्रणाली को लागू करना ।

(2) सदस्य देशों में वास्तविक आय एवं प्रभावी माँग में सतत् वृद्धि द्वारा लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना ।

(3) प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी बाधाओं तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धों में पक्षपातकारी व्यवहार को समाप्त करना ।

(4) वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन तथा व्यापार में वृद्धि करना ।

(5) उत्पादन स्तर एवं उत्पादकता में वृद्धि करके विश्व में रोजगार के स्तर में वृद्धि करना ।

(6) विश्व व्यापार में इस प्रकार से वृद्धि करना जिससे प्रत्येक सदस्य देश लाभान्वित हो ।

(7) विश्व संसाधनों का अधिकतम मात्रा में विस्तार एवं उपभोग करना ।

(8) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली (Multilateral trade system) का विकास करना ।

(9) व्यापारिक भागीदारों में प्रतियोगिता को बढ़ावा देना ताकि उपभोक्ताओं को लाभान्वित किया जा सके ।

(10) व्यापारिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी नीतियों के सतत् विकास से सम्बद्ध करना ।

6.4 स्पष्टीकरण

विश्व व्यापार संगठन विधि: उरुग्वे दौर की बहुपक्षीय मंत्रणाओं के परिणामस्वरूप WTO की संधि हुई । इस संधि में सम्मिलित समझौतों का संक्षिप्त ब्यौरा निम्न है:-

(1) **वस्तुओं के व्यापार के बहुपक्षीय समझौते-** इनमें निम्नांकित शामिल हैं-

(अ) गैट 1994 (GATT 1994) - गैट 1994 समझौते में भुगतान सन्तुलन के प्रावधानों पर संधि की गयी हैं । यह संधि कस्टम संघों (Custom Unions) तथा मुक्त व्यापार क्षेत्रों (FTZs) का समझौता मापदण्ड एवं कार्यविधियॉ निश्चित करती है।

(ब) कृषि समझौता- WTO के अन्तर्गत कृषि के बारे में की गयी वार्ताएं सबसे अधिक चर्चित एवं विवादास्पद रही हैं । WTO के अन्तिम अधिनियम में कृषि के सम्बन्ध में निम्नांकित तीन क्षेत्रों के लिए नियम बनाये गये हैं-

(i) **घरेलू समर्थन-** कृषि उत्पादन मे सहायता प्रदान करने के लिए प्राय: हर देश घरेलू समर्थन की व्यवस्था करता है । WTO के प्रावधानों के अनुसार सभी सदस्य देशों को घरेलू समर्थन कीमत में कमी करनी होगी । इसे समर्थन के लिए समग्र उपाय की संज्ञा दी गयी है । यदि यह उत्पादन के कुल मूल्य के 5% से अधिक है । (विकासशील देशों के लिए यह सीमा 10% है) तो उसमें कटौती करनी होगी ।

इसके अलावा गैर-सीमा शुल्कों को भी आयात-निर्यात करों द्वारा प्रतिस्थापित करना होगा ।

(ii) **बाजार पहुँच-** व्यापार नीति समीक्षा तन्त्र के लिए विश्व व्यापार संगठन द्वारा नियम बनाये गये हैं । इन नियमों का प्रशासन WTO द्वारा किया जाता है । व्यापार बाधाओं में कमी लाकर एवं भेदभाव को समाप्त करके बाजार पहुँच में सुधार किया जाता है ।

(iii) **निर्यात प्रतियोगिता-** विश्व व्यापार संगठन का एक उद्देश्य निर्यात प्रतियोगिता को बढ़ाना है । WTO प्रशासित नियम व कार्यविधि द्वारा इसे प्रोत्साहित करता है ।

(स) कपड़ा एवं वस्त्रों से सम्बन्धित समझौता- कपड़ा एवं वस्त्र क्षेत्र को GATT-1994 में एकीकृत करने के लिए यह समझौता किया गया हैं । बहु-तन्तु समझौते (MFA) की वे रुकावटें, जो 31 दिसम्बर, 1994 को स्वीकृत कर ली गयी थीं, गैट के नये समझौते में शामिल कर ली गयी हैं । नये समझौते के अनुसार MFA को विभिन्न चरणों में वर्ष 2003 तक समाप्त करने तथा इसे गैट की परिधि में लाने का प्रावधान रखा गया है ।

(द) व्यापार में तकनीकी बाधाओं सम्बन्धी समझौता- WTO की यह संधि यह सुनिश्चित करती है कि तकनीकी बाधाएँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में रूकावट उत्पन्न नहीं करें ।

(य) व्यापार सम्बन्धी विनियोग उपायों की संधि- WTO के ट्रिम्स (TRAIMS) प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश को विदेशी विनियोग पर सभी प्रतिबन्धों को समाप्त कर देना चाहिए। हर देश विदेशी निवेशकों (Invetors) को वे सब सुविधाएँ प्रदान करे जो वह घरेलू विनियोक्ताओं को दे रहा है।

(2) **सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता (गैट्स)-** यह WTO के अन्तर्गत दूसरा महत्त्वपूर्ण समझौता है । इसके अन्तर्गत सेवाओं के विदेशी व्यापार पर प्रतिबन्धों को समाप्त करने के लिए समझौता किया गया है । गैट्स (GATS) में केवल उन्हीं सेवाओं को शामिल किया गया है जिनके

लिए उच्च किस्म की तकनीक आवश्यक होती है । उदाहरण के लिए; बैंकिंग, बीमा, जहाजरानी, परिवहन, दूर-संचार इत्यादि । GATS में यह प्रावधान है कि सेवाओं के व्यापार पर सभी प्रतिबन्ध समाप्त किये जाएँ तथा विदेशी कम्पनियों को ये सेवायें प्रदान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो । सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौते (GATS) में वित्तीय सेवाओं सहित समस्त सेवाओं को शामिल किया गया है । GATS दो तत्त्वों पर आधारित है:-(1) वे नियम एवं कायदे जो WTO सदस्यों पर लागू होते हैं, तथा (2) विशिष्ट वचनबद्धता वाली अनुसूचियाँ ।

(3) **व्यापार से सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स समझौता)-** ट्रिप्स (TRIPS) संधि के अन्तर्गत 7 प्रकार की सम्पत्ति कॉपीराइट एवं तत्सम्बन्धी अधिकार, ट्रेडमार्क, पेटेन्ट, भौगोलिक संकेत, औद्योगिक डिजाइन, संघटित सर्किट तथा व्यापारिक रहस्य

(Trade Secrets) को शामिल किया गया है । यह संधि बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से की गयी है । इससे सदस्य देशों की सरकारों के बीच विचार-विमर्श को प्रोत्साहन मिलेगा । ट्रिप्स संधि के अन्तर्गत पेटेन्ट एवं मानकों की व्यवस्था की गयी है ।

(4) **विवाद निपटारा प्रणाली-** WTO के सदस्यों के मध्य उत्पन्न विवादों के निपटारे हेतु समझौते में नियमों एवं प्रणाली की व्यवस्था की गयी है । WTO के अन्तर्गत एक विवाद निपटारा संस्था (Dispute Settlement Body) की स्थापना की गयी है । विवाद निपटारा प्रणाली में विकासशील देशों के हितों की सुरक्षा हेतु प्रयास किया गया है । विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक कार्यालय तक स्वत: पहुँच की व्यवस्था की गयी है ताकि विवादों का कम समय में संतोषजनक हल निकल सके ।

(5) **व्यापार नीति समीक्षा तंत्र-** WTO समझौते में सदस्य देशों की व्यापार नीति की समीक्षा हेतु आवश्यक तंत्र की व्यवस्था की गयी है । इसके अन्तर्गत सदस्य देश को उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति को लागू करने हेतु सहयोग किया जाता है ।

6.5 WTO की कार्यप्रणाली

WTO का सर्वोच्च नीति नियामक निकाय, **मंत्रिस्तरीय सम्मेलन** है, जिसका **द्वि-वार्षिक अधिवेशन** होता है । **मारकेश** में **WTO** पर हस्ताक्षर के बाद **जिनेवा** तथा **सिंगापुर** में प्रथम व द्वितीय सम्मेलन हुए थे । विश्व व्यापार संगठन का तृतीय मंत्रिस्तरीय सम्मेलन 1999 में अमरीका के **सिएटल** शहर में हुआ था ।

WTO का चौथ मंत्रिस्तरीय सम्मेलन 2001 में अरब देश कतर (Qatar) की राजधानी दोहा (DOHA) में 9 से 14 नवम्बर के मध्य हुआ । मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में प्रत्येक निर्णय आम राय से किया जाता है । आम राय बनाने का काम विकसित देश करते हैं । उरुग्वे राउण्ड के बाद हुए प्रथम दो सम्मेलनों में आम राय बनाने में यूरो-अमरीकी देश सफल हुए । लेकिन तृतीय सम्मेलन में विकासशील देशों ने संगठित होकर आवाज उठाई । अमरीका व यूरोपीय संघ ने आवाज को सुनने से इन्कार कर दिया । फलस्वरुप सिएटल सम्मेलन असफल हो गया ।

दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (Doha Conference Ministerial): WTO का चौथा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कतर की राजधानी दोहा (Doha) में 9-14 नवम्बर, 2001 को सम्पन्न हुआ । जिसमें WTO के भावी कार्यक्रम की रुपरेखा निश्चित की गयी । सिएटल में आयोजित तृतीय मंत्रिस्तरीय सम्मेलन(1999) की विफलता के कारण कुछ विकसित देशों ने WTO के विस्तारित एजेण्डे के अनुमोदन हेतु विशेष प्रयास किये । इस सम्मेलन को पर्याप्त महत्त्व दिया गया तथा इसका विस्तृत प्रचार किया गया । लेकिन भारत समेत सभी प्रमुख विकासशील देशों ने विकास के मुद्दे के नाम पर नए समझौते की वार्ता शुरु करने की कुछ विकसित देशों की कोशिशों का पुरजोर विरोध किया । भारत ने विकसित देशों की इस कोशिश को विफल करने की विशेष मुहिम चलाई थी । वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन ने जी-77 के देशों और चीन को अपने पक्ष में करने में सफलता प्राप्त की । भारत ने सभी प्रमुख विकासशील देशों को लामबंद कर WTO के समक्ष यह माँग रखी कि एजेण्डों के चयन में सभी देशों की राय ली जाये न कि

कुछ खास देशों की । 25 जून, 2001 को जिनेवा में WTO की सामान्य सभा में भारत के वाणिज्य सचिव **प्रबीर सेन गुप्ता** ने भी कहा था कि दोहा सम्मेलन में एजेण्डों या मुद्दों की भरमार से कोई फायदा नहीं होगा । उन्होंने कहा कि दोहा सम्मेलन सिर्फ पुराने समझौते के पालन की समीक्षा करे एवं WTO की मौजूदा नीतियों और वार्ताओं पर अपनी राय दे । उन्होंने यह भी कहा कि ट्रिप्स (TRIPS) जैसे समझौते की समीक्षा करते समय यह भी ध्यान रखा जाए कि हर देश को जनस्वास्थ्य कार्यक्रम अपनाने और उन्हें लागू करने की स्वतन्त्रता हो । भारत का मत था कि उरुग्वे दौर की वार्ता में जिन समझौते पर सहमति बनी, उन्हें लागू किया जाए तथा उनकी समीक्षा की जाए ।

विश्व व्यापार संगठन का पाँचवां मंत्रिस्तरीय सम्मेलन :

विश्व व्यापार संगठन का पाँचवीं मंत्रिस्तरीय सम्मेलन मैक्सिको के कानकुन (Cancun) शहर में 10 सितम्बर से 14 सितम्बर, 2003 तक चला । इस सम्मेलन में (1) खेती एवं कृषि उत्पाद व्यापार, (2) सेवा नियम, तथा (3) लघु उद्योगों की सुरक्षा बहस मुख्य विषय थे । कानकुन सम्मेलन दो खेमों में बंट गया- प्रथम विकसित देशों का गठजोड़ जिसमें अमरीका व यूरोपीय संघ के देश सम्मिलित थे । दूसरा खेमा विकासशील देशों का था जो जी- 21 विकासशील देशों के अनौपचारिक संगठन के रूप में सामने आया । जी-21 का नेतृत्व करने वाले प्रमुख देश भारत, ब्राजील, चीन, अर्जेन्टीना व दक्षिणी अफ्रीका थे ।

कानकुन सम्मेलन से अपेक्षाएँ- इस सम्मेलन में विकसित देशों का आग्रह पूँजी निवेश के नए नियमों, सरकारी खरीद के दिशा निर्देशों और व्यापार की सुविधाओं को सुनिश्चित करने से सम्बन्धित थे । कानकुन सम्मेलन में विकसित देशों की अपेक्षा थी कि कामगारों के प्रवास को सीमित करने तथा आयात में व्यापार बाधाओं को हटाने के सम्बन्ध में ठोस निर्णय लिया जाए । इसके विपरीत विकासशील देश के समूह ने यह माँग रखी कि विकसित देश कृषि राजसहायता (Agriculture Subside) में समयबद्ध कटौती करें क्योंकि अकेले अमरीका एवं यूरोपीय संघ ही कृषि उत्पादों पर प्रतिवर्ष 311 अरब डालर की सब्सिडी देते हैं । विकासशील देशों का तर्क है कि यह सब्सिडी जारी रहने पर अमरीका एवं यूरोपीय संघ के कृषि उत्पाद विश्व बाजार में छा जाएंगे और विकासशील देश प्रतिस्पर्धा नहीं कर पायेंगे । इसके अलावा विकासशील देश कामगारों की स्वतन्त्र आवाजाही एवं असंगठित क्षेत्र के लिए सुरक्षा के पक्षधर हैं ।

विकासशील देशों के अनौपचारिक संगठन जी-21 को कानकुन सम्मेलन में उस समय जबरदस्त ताकत मिली, जब कृषि उत्पाद निर्यात करने वाले देशों ने बाजार तक पहुँचने के मतभेदों को नजरंदाज करते हुए कृषि अनुदान के मुद्दे पर विकासशील देशों का समर्थन किया । कृषि उत्पादन निर्यातक देशों के समूह के प्रमुख आस्ट्रेलिया के व्यापार मंत्री मार्क वैले ने चेतावनी दी कि कानकुन सम्मेलन में यदि विकासशील देशों के सरोकारों पर ध्यान नहीं दिया गया तो विनिवेश और प्रतिस्पर्द्धा के मुद्दों पर चर्चा नहीं होने दी जाएगी । विकासशील देशों की मुख्य चिन्ता कृषि उत्पादों पर निर्यात व घरेलू अनुदान और बाजार की पहुँच को लेकर थी ।

कानकुन सम्मेलन की विफलता- WETO के सदस्यों देशों के मंत्रियों का कानकुन सम्मेलन विफल रहा । इससे पहले सिएटल में भी संगठन का सम्मेलन विफल रहा था । कानकुन सम्मेलन की **विफलता का मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में सब्सिडी कम करने के मुद्दे पर विकसित और विकासशील देशों में सहमति का अभाव रहा ।** विकासशील देशों के लिए कृषि बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा उसी पर निर्भर है । सम्मेलन की शुरुआत में भले ही विकासशील देशों के सुझावों को विचारार्थ मान लिया था, लेकिन बाद में घोषणा का जो प्रारूप पेश किया गया वह विकसित देशों के पक्ष में था । एशिया के भारत और चीन, दक्षिण अमरीका के ब्राजील और अर्जेन्टीना और अफ्रीका महाद्वीप के दक्षिण अफ्रीका जैसे देश अपनी कृषि नीति बनाने का अधिकार छोड़ने को तैयार नहीं हुए । तीसरी दुनिया के देशों की एकजुटता अंत तक बनी रही और विकसित देशों, खासकर अमरीका और यूरोपीय संघ की दबाव डालने की कोशिशें कामयाब नहीं हो पाई ।

छठा मंत्रालयिक सम्मेलन- WTO के सदस्य देशों द्वारा अगस्त, 2004 में व्यापार संबंधी वार्ताओं के दोहा दौर के सम्बन्ध में ढ़ाचा करार (Framework Agreement) को अपनाये जाने पर फिर से एक गति आयी । इस करार में ऐसे घटकों और सिद्धान्तों की रुपरेखा मौजूद थी जो आगे की वार्ताओं के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी । ढांचा एक अंतरिक चरण था तथा विस्तृत रुपात्मकताएँ (detailed modalities) और कृषि-भिन्न बाजार पहुँच के सम्बन्ध मे प्रत्येक सदस्य की निर्दिष्ट वचनबद्धताओं की तैयारी सहित आगे वार्ताएँ WTO के छठे मंत्रालयिक सम्मेलन (हांगकांग) से पहले करने का निर्णय किया गया ।

6.6 कृषि पर वार्ताएँ (Negotiations on Agriculture)-

कृषि पर वार्ताएँ, जो कृषि पर WTO समिति के विशेष सत्रों में चल रही है, वैश्विक कृषि व्यापार में क्रमिक तथा महत्त्वपूर्ण सुधारों को प्राप्त करने पर केन्द्रित है । कानकुन के पश्चात् (post- Cancun) विचार-विमर्श से जी-20 गठबंधन को मजबूती मिली है तथा अन्य देशों विशेषत: विशेष उत्पादों पर विकासशील देशों का जी-33 गठबंधन, अफ्रीका समूह और कृषि निर्यात देशों की कैन समूह में उनकी पहुँच पैर भी जोर दिया गया है ।

यह ढाँचा कसर एक निर्धारित अंतिम तारीख तक निर्यात सब्सिडीज (subsidies) को दूर करने के लिए स्पष्ट रुप से सहमत हैं । इसमें कार्यान्वयन के प्रथम वर्ष में समग्र व्यापार-विकृतिकारी घरेलू समर्थन (Trade-distorting domestic support) पर 20% की तत्काल अदायगी की व्यवस्था है । इसके अलावा कटौतियों के सम्मिश्रण अनुशासन तथा घरेलू समर्थन स्तंभ के विभिन्न घटको में मॉनीटरिंग अपेक्षाओं और विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों द्वारा किये जाने वाले आनुपातिक कम वचनबद्धताओं 'पर आधारित टैरिफ कमियों के लिए जांचा परखा फार्मूला शामिल है ।

ढांचा कस्बे में विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए कृषि के अत्यधिक महत्त्व तथा उन्हें ऐसी कृषि नीतियाँ अपनाने में समर्थ बनाने की जरूरत को स्वीकार गया है जो उनके विकास लक्ष्यों, गरीबी उन्मूलन की कार्य नीतियों, खाद्य सुरक्षा और आजीविका संबंधी चिन्ताओं

पर ध्यान देती हो, जिनमें विशेष उत्पाद' जैसे साधन और आयातों में संभावित वृद्धि के विरुद्ध एक नए विशेष सुरक्षा तंत्र के जरिए किए गए उपाय शामिल हो ।

कृषि-भिन्न बाजार पहुँच(Non-Agriculture Market Access-NAMA) कृषि-भिन्न बाजार पहुँच के तहत यह ढाँचा वार्ताओं के लिए रुपात्मकताओं (Modalities) पर भविष्य के कार्य के लिए प्रारंभिक घटकों की पहचान करता है । ये वार्ताएं स्वभावत: उच्चतम टैरिफ, उच्च टैरिफ और टैरिफ में वृद्धि तथा गैर-टैरिफ बाधाओं सहित टैरिफों में कमी करने अथवा उन्हें दूर करने के उद्देश्य को प्राप्त करने पर बल देती हैं ।

क्षेत्रीय पहल (Sectroal Initiatives) क्षेत्रीय पहलों के लिए प्रस्ताव पर, भारत ने अधिकांश अन्य विकासशील देशों की तरह इस बात पर जोर दिया कि वार्ता के लिए मुख्य रुपात्मकता फार्मूला दृष्टिकोण होना चाहिए! सुस्पष्ट फार्मूला पर निर्णय हो जाने के बाद क्षेत्रीय पहलू पर विचार किया जाना चाहिए । भारत का दृष्टिकोण यह रहा है कि क्षेत्रीय पहलू यदि कोई हों तो, इस प्रकार की पहल के लिए की जा रही कटौती संबंधी वचनबद्धताओं में 'पूर्ण से कम पारस्परिकता' (Less than full reciprocity) की धारणा के साथ विकासशील राष्ट्रों के अभिरुची वाले निर्दिष्ट क्षेत्रों पर केन्द्रित होनी चाहिए ।

सेवा संघटक (Services Component) ढांचा करार के सेवा संघटक की प्रमुख विशेषताओं में निम्नांकित सम्मिलित हैं :

(अ) विकासशील देशों के रुचि के क्षेत्रों की आपूर्ति के तरीकों में उच्च गुणवत्ता वाले प्रस्ताव के लिए सदस्यों में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाना ताकि पर्याप्त उत्पादन तथा सभी सदस्यों के लिए बाजार की पहुँच सुनिश्चित हो सके ।

(ब) विकासशील देशों के क्षेत्रों तथा निर्यात संबंधी अभिरुचि की आपूर्ति के तरीकों पर विशेष ध्यान देना ।

(स) विधि (प्रकृत व्यक्तियों की आवाजाही) में विकासशील देशों तथा कतिपय। विकसित देशों की अभिरुचियों का पता लगाना ।

(द) मई, 2005 तक संशोधित प्रस्तावों के प्रस्तुतीकरण हेतु एक समय सीमा की शर्त और बढ़ती चर्चाओं में अभिरुचियों की पहचान ।

6.7 विश्व व्यापार संगठन एवं भारत:

भारत विश्व व्यापार संगठन एवं गैट का प्रारम्भ से ही सक्रिय सदस्य रहा है । भारत ने न केवल WTO के समझौते के अन्तर्गत आयोजित प्रशुल्क एवं व्यापार मंत्रणाओं में भाग लिया है, अपितु विभिन्न समितियों की बैठकों में विकासशील देशों की समस्याओं एवं दृष्टिकोण को भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है ।

उरुग्वे राउण्ड से लेकर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना तक की अवधि के दौरान विभिन्न राजनीतिक दलों तथा अनेक विचारकों ने यह आशंका प्रकट की थी कि WTO की स्थापना से कृषि प्रधान देशों, विशेषकर भारत के आर्थिक हितों की हानि होगी । अत: भारत को WTO का बहिष्कार करना चाहिए । विश्व व्यापार संगठन के आलोचकों की राय में कृषि प्रधान देशों में

निर्मित अनेक वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । क्योंकि विकसित देश पर्यावरण संरक्षण की आड़ में इन वस्तुओं पर अनेक प्रतिबन्ध लगा देंगे । विकसित देशों के सेवा क्षेत्र की तुलना में विकासशील देशों का सेवा क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है तथा प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप विकासशील देशों के हितों की अनदेखी होगी । 'बौद्धिक सम्पदा अधिकार' के नाम पर भी विकासशील देशों के हितों की अनदेखी, होगी । विकासशील देश अपने कृषि निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए जो आर्थिक सहायता (सब्सिडी) दे रहे हैं उनमें कटौती करनी पड़ेगी या उसे समाप्त करना होगा । इससे इनके निर्यातों में गिरावट आयेगी। कृषि प्रधान तथा विकासशील देशों में कृषि-आदान महँगे हो जायेंगे । WTO की उपर्युक्त आलोचनाएँ पूर्णत: निरर्थक नहीं कही जा सकती । इन आलोचनाओं में सत्यता का काफी अंश विद्यमान है तथापि कालान्तर में इसके सदस्य देशों को इससे लाभ ही होगा ।

WTO ने भारत से सब्सिडी (Subsidy) कम करके कर ढांचे व शुल्क नीति में सुधार करने तथा निजीकरण प्रक्रिया को तेज कर वित्तीय घाटे में कमी लाने का आग्रह किया है । WTO ने भारतीय अर्थव्यवस्था की समीक्षा में कहा कि भारत में 1991 में शुरू किया गया आर्थिक सुधार कार्यक्रम आगे बढ़ने के संकेत है । इसके चलते भारत तीव्र आर्थिक वृद्धि करने में सफल रहा । वर्ष 2001 एवं 2002 में भारतीय अर्थव्यवस्था में जो मंदी आयी वह समग्र वैश्विक मंदी का ही एक भाग था । यह सुधार जारी रखने की आवश्यकता की घोतक भी है । WTO के मतानुसार वित्तीय घाटे में कमी आने से निवेश के वातावरण में सुधार होगा एवं बुनियादी ढ़ांचा क्षेत्र में विनियोग के लिए संसाधन जुटाये जा सकेंगे । इस संदर्भ में बिजली क्षेत्र संदर्भ महत्त्वपूर्ण है जो आर्थिक वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक है तथा इसमें निवेश की आवश्यकता है।

WTO के अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के नियमों में कुछ उदारीकरण के बावजूद भारत अधिक निवेश आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाया । लेकिन बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण के लिए जो कदम उठाये गये हैं उनसे निवेश आकर्षित करने में मदद मिलेगी । भारत में जहां आयात लाइसेंस और शुल्क बाधाओं को सामान्यत: कम किया जा रहा है वहीं एंटी-डम्पिंग (Anti-Dumping) जैसे उपायों का सहारा लेने के मामले बढ़ रहे हैं । 1995 से 2001 तक डम्पिंग विरोधी 250 मामले प्रारम्भ किये गये हैं ।

विश्व व्यापार संगठन के अनुसार उर्वरक, पेट्रोलियम पदार्थ तथा कुछ कृषि उत्पादों के मूल्य नियन्त्रित किये जाने से अर्थव्यवस्था पर भार बढ़ता है । भारत ने इसके उत्तर में शिकायत की कि विकसित देशों द्वारा उसके निर्यात पर वैज्ञानिक रूप से अतार्किक स्वास्थ्य मानकों सहित अन्य आधारों पर प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं । भारत का कपड़ा निर्यात देश के कुल निर्यात का 3० प्रतिशत है तथा इसे विकसित देशों में प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ रहा है । विकसित देश समझौते को क्रियान्वित करने में ढलाई बरत रहे है ।

6.8 भारतीय कृषि तथा विश्व व्यापार संगठन (Indian Agriculture and WTO)-

विश्व व्यापार संगठन का भारतीय कृषि पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ेगा-

(1) भारत में पैदा किये गये बीजों का पेटेंट कराना होगा । पेटेंट कराने पर उन बीजों का निर्यात भी किया जा सकेगा लेकिन आयातित अथवा पेटेन्टेड बीजों से उत्पन्न फसल (बीज) को बाजार में किसान बीज के रुप में नही बेच सकेगा । इससे निर्धन किसानों को बीज महँगा मिलेगा तथा उनके आर्थिक हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

(2) विश्व व्यापार संगठन समझौते के अनुसार भारत सरकार द्वारा कृषि पदार्थो के उत्पादन एवं निर्यात हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहायता (Subsidy) में कटौती करनी होगी । इससे देश में कृषि आदान (Agriculture inputs) महँगे होगे तथा कृषि पदार्थो के निर्यात पर प्रतिकूल असर पड़ेगा ।

(3) पर्यावरण संरक्षण की आड़ में भारत में निर्मित अनेक कृषि पदार्थो का विकसित देशों द्वारा किया जाने वाला आयात कम होगा ।

(4) फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर्स आफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री (FICCI) के अनुसार विकसित देशों द्वारा बाल श्रम (child labour) मानवाधिकार, पर्यावरण तथा अन्य सामाजिक मुद्दों के आधार पर कई प्रकार की गैर-व्यापारिक बाधाएँ खड़ी की जायेंगी ।

उपर्युक्त आलोचनाएँ वर्तमान सत्यताओं की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं । भारतीय कृषि तथा उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव स्पष्ट रुप से परिलक्षित होने लगा हैं । भारत की टैक्सटाइल वस्तुओं,चाय-कॉफी तथा अन्य वस्तुओं के निर्यात पर विकसित देशों द्वारा किसी न किसी प्रकार बाधाएँ खड़ी की जा रही हैं । विकासशील देशों में कम मजदूरी लागत (low wages cost) पर बनी नीची लागत वाली वस्तुओं को पर्यावरण संरक्षण के नाम पर विदेशी बाजारों में पहुँचने से रोकने का प्रयास किया जा रहा हैं ।

विकसित देशों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली गैर-व्यापारिक बाधाओं का भारत सहित अन्य विकासशील देशों द्वारा विरोध किया जा रहा है । विकासशील देशों की सरकारें तथा कम्पनियाँ पर्यावरण मानक हेतु लिये जाने वाले प्रमाण-पत्र ISO-14000 को गम्भीरता से ले रही हैं ।

(5) यदि पर्यावरण सम्बन्धी विनियमों को गैट में शामिल कर लिया जाता है, तो इससे भारत के खाद्य विधायन (Food Processing) तथा बागवानी (Horticulture) जैसे निर्यात-प्रधान क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । उदाहरणार्थ, अमेरीका स्वास्थ्य नियमों के अनुसार खाद्य पदार्थो में कीट नाशकों के अवशेष का स्तर शून्य होना आवश्यक है लेकिन भारतीय उत्पाद इस शर्त को पूरा नहीं करते ।

WTO अपने सदस्य देशों की व्यापारिक नीतियों की Trade policy Review Mechanism के अन्तर्गत आवधिक समीक्षा करता है । भारत की व्यापार नीति कि प्रत्येक चार वर्ष बाद समीक्षा करने का प्रावधान है । अत: भारत की व्यापार नीति, व्यवहार एवं उपायों की WTO द्वारा तीसरी समीक्षा 19 एवं 21 जून,2002 को की गयी । इस समीक्षा में WTO ने कृषि उत्पादों एवं आदानों पर दी जाने वाली सब्सिडी के बारे में चिंता व्यक्त की है । WTO की इस समीक्षा में कहा गया है कि कृषि सब्सिडी के कारण भारत में खाद्यान्नों का विशाल भण्डार इकट्ठा हो गया है । WTO ने अपनी समीक्षा में भारत द्वारा कृषि वस्तुओं के निर्यात पर

लगाये गये प्रतिबन्धों पर भी आपत्ति की है । इस समीक्षा में कृषि क्षेत्र में और अधिक उदारीकरण लाने पर जोर दिया गया है ।

दोहा आदेश पत्र (Doha Mandate) के अनुसार 31 मार्च, 2003 तक कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित वार्ता (Negotiation in agriculture) की रूपरेखा तरा करनी थी । इस रूपरेखा के आधार पर सितम्बर, 2003 तक वचनबद्धताओं की अनुसूची तैयार करती है । भारत ने इस सम्बन्ध में अपने विस्तृत प्रस्ताव पेश कर दिये हैं । इन प्रस्तावों में वृहत निर्धन कृषक समुदाय की भोजन एवं आजीविका की सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए, भारतीय कृषि उत्पादों के निर्यात अवसरों को उच्चतम सीमा तक बढ़ाने की दृष्टि से विकसित देशों में प्रचलित उच्च प्रशुल्कों एवं सब्सिडी में कटौती करने की माँग की गयी है ।

स्पष्ट है कि WTO के विभिन्न सदस्य देशों एवं समूहों के बारे में कृषि से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों (प्रशुल्क कटौती, बाजार प्रवेश एवं निर्यात अर्थ-साहाय्य के सम्बन्ध में व्यापक मतभेद हैं । आशा है कि WTO सभी पक्षों की वाजिब माँगों को दृष्टिगत रखते हुए कृषि क्षेत्र में कोई सर्व-स्वीकार्य समझौता कर सकेगा ।

कृषि तथा गैर-कृषि बाजार पहुँच के तौर-तरीके की स्थापना

हांगकांग में दिसम्बर, 2005 में WTO मंत्री 30 अप्रैल, 2006 तक कृषि तथा गैर-कृषि बाजार पहुँच (NAMA) के तौर-तरीके की स्थापना करने, 31 जुलाई, 2006 तक मसौदा अनुसूचियाँ प्रस्तुत करने तथा 2006 के अन्त तक दोहा दौर के सभी क्षेत्रों में वार्तालाप निष्पन्न करने के लिए सहमत हुए थे । सेवा के संबंध में सभी सदस्यों को अपने संशोधित प्रस्ताव 31 जुलाई, 2006 तक प्रस्तुत करने थे और31 अक्टूबर, 2006 तक मसौदा अनुसूचियाँ प्रस्तुत करनी थी । लेकिन इस समय सीमा तक गहन बातचीत के बावजूद यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका ।

जनवरी से जुलाई 2006 के बीच गहन विचार विमर्श मुख्यत: घरेलू-सहायता, कृषि ब[जार पहुँच तथा नामा (NAMA) के त्रिपक्षीय मुद्दों पर केंन्द्रित था । 24 जुलाई, 2006 को सम्पन्न व्यापार वार्ता समिति की अनौपचारिक बैठक में WTO मंत्री के महानिदेशक जो इसके अध्यक्ष भी हैं, ने सूचित किया कि यह स्पष्ट हो चुका है कि मतभेद पर्याप्त हैं और सिफारिश की कि दोहा दौर के स्थगन की वजह भागीदारों में गंभीर मतभेद था । विशेषकर कृषि में अवरोध की वजह से तथा 2006 के अंत तक दोहा दौर की वार्ता के समाप्त होने की संभावना न दिखाई देने से सदस्य दोहा वर्क प्रोग्राम के सभी क्षेत्रों की वार्ताओं को स्थगित करने पर सहमत हुए और वार्ता माहौल अनुकूल होने पर पुन: बातचीत जारी करने पर सहमत हुए ।

भारत के संदर्भ में यह स्थगन निराशाजनक रहा । भारत ने 16 नवम्बर, 2006 को वार्ताओं की पुन: बहालों और साथ ही साथ उन सिद्धान्तों पर जिससे वार्ताओं के स्वरूप को बनाए रखा जा सका, 7 फरवरी, 2007 से वार्ता के पूर्ण रूप से नए सिरे से प्रारम्भ होने का स्वागत किया है । इससे अब तक की प्रगति के परिणाम संतुलित, महत्वाकांक्षी तथा विकास अनुकूल रहे ।

WTO में कृषि मुद्दों पर भारत का दृष्टिकोण

पृष्ठभूमि - भारत का कृषि तथा सम्बद्ध उत्पादों जिसमें बागान भी शामिल है, कुल निर्यात वर्ष2005-06 से 10.5 अरब अमेरिकी डालर था । यह देश के निर्यात हिस्से का 10.2% था ।

विकसित देशों के बाजारों में भारत के कृषि निर्यातों का हिस्सा लगभग 35% रहा है । तथापि, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में इसका योगदान जनसंख्या के एक बड़े भाग जिसमें उत्पादक तथा भूमिहीन कृषि श्रमिक शामिल हैं(जिन्हें निम्न आय तथा संसाधन की दृष्टि से अभावग्रस्त माना गया है) की आजीविका को बनाए रखने के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है । जनसंख्या के इस भाग के पास दक्षता का अभाव है एवं यह किसी सुरक्षा के घेरे के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं है जबकि ये बातें श्रम के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की एक न्यूनतम शर्त के सुनिश्चयन हेतु अनिवार्य हैं ।

भारत की तरह, अधिकांश विकासशील देश भी समान स्थिति में है जो विकसित देशों के कृषि क्षेत्र की वास्तविकता से बिल्कुल विपरीत हालात में है । कृषि फसलों की विविध संख्या के अलावा, अन्य कई उत्पाद जिसमें पशुधन उत्पाद भी सम्मिलित हैं, पहाड़ी/पर्वतीय अथवा अन्य असुविधाग्रस्त क्षेत्रों अथवा जनजाति समुदायों तथा महिलाओं द्वारा उत्पादित किये जाते हैं । अत: भारत तथा अन्य विकासशील देश बराबर इस बात पर जोर देते रहे हैं कि विकासशील देशों के लिए विशेष तथा विभेदक व्यवहार सभी पक्षों के संबंध में अभिन्न अंग होना चाहिए जिससे WTO में दोहा दौर के तहत कृषि पर बातचीत द्वारा निर्धारित परिणाम भी शामिल है। निम्न आय, संसाधनों में कमी, मूल्य में गिरावट से किसानों की आजीविका पर पड़ने वाला प्रभाव, मूल्य में तेजी तथा प्रतिस्पर्द्धा तथा अन्य बाजार कमियाँ जिसमें कुछ विकसित देशों द्वारा अपने कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराई जा रही व्यापार की विकृत करने वाली सब्सिडी भी शामिल है, के जोखिमों को कम करना भी महत्त्वपूर्ण है । इसलिए भारत अन्य विकासशील देशों के साथ (विशेष रूप से G-2० तथा G-33 में सहभागी भागीदार) इस बात पर जोर देता रहा है कि दोहा कृषि परिणाम को अपने महत्त्वपूर्ण कार्य में निम्नांकित को शामिल करना चाहिए ।

1. विकसित देशों द्वारा विकृति पैदा करने वाली सब्सिडियों को समाप्त करना और एक समान दर लागू करना ।
2. खाद्य तथा/अथवा आजीविका सुरक्षा और विकासशील देशों में ग्रामीण विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त प्रावधान किये जाएं ।

भारत तथा अन्य विकासशील देशों की दृष्टि से यह अच्छा है कि हांगकांग में इस बात पर सहमति हुई कि विशेष उत्पाद तथा विशेष रक्षोपाय तंत्र कृषि में वार्तालापों से सम्बद्ध तौर तरीकों और परिणाम का अभिन्न अंग होगा । इसके अलावा विकासशील देशों को विशेष उत्पादों की एक उचित संख्या को स्व-नामित करने का अधिकार होगा जो खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा तथा/अथवा ग्रामीण विकास आवश्यकताओं के तीन मूलभूत श्रेणी पर आधारित संकेतकों द्वारा निर्देशित होगा । ये नामित उत्पाद अपेक्षाकृत लोचशील प्रक्रिया में सहायक होगे । WTO के विकासशील सदस्य देशों को ठोस प्रबंधों जिन्हें बाद में परिभाषित किया जाएगा, के साथ आयात मात्रा तथा मूल्य पर आधारित विशेष रक्षोपाय तंत्र को अपनाने का अधिकार होगा ।

W.T.O कृषि पर भारतीय दृष्टिकोण

1. विकासशील देशों के लिए आबद्ध दरों पर समग्र प्रशुल्क कटौतियाँ 36% से अधिक न हो ।

2. विकासशील देशों की उच्चतम बंधनों को ध्यान में रखते हुए संरेखीय कटौतियों सहित चार बैंड शुल्क फार्मूला की अवसीमाएँ बहुत अधिक होगी ।
3. खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा और ग्रामीण विकास आवश्यकताओं के तीन मूलभूत तथा सम्मत मानदंडों पर आधारित संकेतकों द्वारा निर्धारित विशिष्ट उत्पादों (एस॰पी.) का उपयुक्त संख्या में स्वनामित जी-33 ने 20 प्रतिशत कृषि प्रशुल्क सीमाओं को विशिष्ट उत्पादों के रूप में प्रस्तावित किया है, जिसमें से 40 प्रतिशत को किसी भी प्रकार की प्रशुल्क कटौती से छूट दी जायेगी । भारत विशिष्ट उत्पादों पर TRQ वचनबद्धताएँ स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा अधिकांश संवेकी उत्पादों, जैसे विशिष्ट उत्पादों पर मौजूदा प्रयोज्य दरों में आवश्यक रूप से कटौती के लिए जरूरी होगा ।
4. वैश्विक मूल्य गिरावटों एवं आयात प्रवाहों को रोकने के लिए एक प्रचालनात्मक और प्रभावी विशिष्ट सुरक्षोपाय तन्त्र, जो मुख्यत: विकसित देशों को उपलब्ध मौजूदा सुरक्षोपाय यंत्र से अधिक लचीला हो । जी-33 और भारत इस विषय पर दृढ़ निश्चयी हैं कि किसी भी उत्पाद के समय पूर्व अपर्वजन, विशेषतया SSM की परिधि में से विशिष्ट उत्पादों के अपवर्जन को न्याय संगत अथवा स्वीकार्य नहीं माना जा सकता है।
5. संयुक्त राज्य (70-75%कटौती) तथा यूरोपीय संघ (75-80%कटौती) द्वारा समग्र कारोबार-निरूपण घरेलू सहायता, जिसमें समग्र माप सहायता पर उत्पाद-विशिष्ट सीमा के मुद्दे का निपटान शामिल है, और न्यू ब्लू बॉक्स में ठोस और प्रभावी कटौतियाँ ।

6.9 सारांश

विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के लिए विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की गई । विश्व के लगभग 148 देश इसके सदस्य हैं । भारत इसके संस्थापक सदस्य देशों में शामिल है । यह एक वैधानिक संगठन है । सदस्य देशों के लिए इसके प्रावधानों को अपनाना कानूनी अनिवार्यता है । इसके सदस्य देशों मैं विकसित एवं विकासशील सभी देश हैं । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विकसित एवं विकासशील देशों के हितों में टकराव सामान्य बात है । प्रभावशाली विकसित देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रावधानों को अपने अनुकूल करवाना चाहते हैं । विकासशील देश संगठित रूप से इसका विरोध करते हैं । फलस्वरूप टकराव के कारण सर्वसम्मति नहीं बन पाती है और इसकी वार्ताओं के कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल पाते है 1 भारत कृषि प्रधान देश है । यहाँ कृषि जीवनयापन का आधार है । विकसित देश अपने कृषि उद्योग को बढ़ावा देने एवं कृषि उत्पादों का निर्यात बढ़ाने के लिए विकासशील देशों द्वारा कृषि क्षेत्र में अनुदान देने के विरोधी हैं । जबकि वे स्वयं अपने देश में कृषि क्षेत्र में भारी अनुदान दे रहे हैं । यदि कृषि क्षेत्र में सरकारी अनुदान समाप्त कर दिया जाये तो इसकी लागत बढ़ने से कृषि उत्पादन आर्थिक रूप से हितकर नहीं होगा और हमें इसका आयात करना सस्ता लगेगा । लेकिन इससे कृषि क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी फैल जायेगी । अत: भारत को अपने हितों को ध्यान में रखते हुए भेदभावपूर्ण प्रावधानों को संगठित रूप से अस्वीकार कर देना चाहिए ।

6.10 शब्दावली

गैट प्रशुल्क दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता

W॰T॰O World Trade Organisation (विश्व व्यापार संगठन)

TRIPS बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Agreement on Trade Related Intelluctial Property Rights)

TRIMS विदेशी पूँजी निवेश उपाय (Agreement on Trade Related Investment Measures)

GATS सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Services)

TPRM व्यापार नीति समीक्षा तन्त्र (Trade Policy Review Mechanism)

6.11 स्व-परख प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन के क्या उद्देश्य हैं?
2. विश्व व्यापार संगठन के क्या कार्य हैं?
3. विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने से भारतीय कृषि पर क्या प्रभाव होंगे?
4. दोहरा मंत्रिमण्डल सम्मेलन पर एक टिप्पणी लिखिये ।

6.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Ecomonic and Business Environment- Gupta & Swami, Ramesh Book Depot, Jaipur
2. Money, Banking & International Trade- T.N. Hajela, Konark Publishers Pvt. Ltd., Delhi.
3. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र - वी.सी.सिन्हा, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा ।
4. भारतीय अर्थशास्त्र - दत्त एवं सुन्दरम् - एस. चान्द-नई दिल्ली
5. भारत में आर्थिक पर्यावरण -गुप्ता एवं स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
6. भारतीय अर्थव्यवस्था - नाथूरामका सी. बी. एच., जयपुर ।
7. भारत, 2008.
8. आर्थिक समीक्षा, 2007-2008॰

इकाई-7 : लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग (Small and Cottage Industries)

इकाई की रूपरेखा :

7.1 प्रस्तावना

7.2 लघु एवं कुटीर उद्योग का अर्थ एवं परिभाषा

7.3 लघु एवं कुटीर उद्योग में अन्तर

7.4 भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास

7.5 लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्त्व एवं भूमिका

7.6 लघु एवं कुटीर उद्योगों की २न्मरयाएँासीमाऐ

7.7 लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदम

7.8 लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्या के समाधान हेतु सुझाव

7.9 लघु उद्योग नीति 2006-07

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 स्व-परख प्रश्न

7.13 संदर्भ ग्रन्थ

7.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के औद्योगिक विकास में कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है । विकासशील राष्ट्र होने के कारण ये उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के मेरूदण्ड हैं । लघु व कुटीर उद्योगों का हमारी अर्थव्यवस्था में प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । रोजगार की दृष्टि से लघु उद्योग कृषि के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है । भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजी का अभाव, श्रम की अत्यधिक पूर्ति तथा तकनीकी ज्ञान का अभाव आदि के कारण इन उद्योगों (लघु उद्योग) का अतीत बहुत ही गौरवपूर्ण रहा है । किन्तु ब्रिटिश काल में इन उद्योगों का इतना पतन हुआ कि भारत में लघु एवं कुटीर उद्योग समाप्त प्राय: हो गये । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इन उद्योगों के विकास पर सरकार ने काफी ध्यान दिया है, फिर भी इन उद्योगों पर आशातीत विकास नहीं हो पाया है ।

लघु एवं कुटीर उद्योगों में अंतर देखने को मिलता हे । लघु उद्योग प्राय: आधुनिक क्षेत्र में आते हैं, जबकि कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग परम्परागत क्षेत्र में आते हैं । लघु उद्योग बहुधा ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाते है और स्थानीय कच्चे माल, स्थानीय दक्षताओं, स्थानीय माँग पर आधारित होते हैं, जबकि कुटीर उद्योगों में बहुधा पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है । ये उद्योग स्थानीय व विदेशी दोनों प्रकार की माँग की पूर्ति कर सकते हैं । भारत में ग्रामीणों को रोजगार देने व लोगों की आय में वृद्धि की दृष्टि से कृषि के सहायक उद्योग धन्धों का

समुचित विकास करना आवश्यक है । आजकल निर्धनता निवारण की दृष्टि से भी इन उद्योगों का महत्त्व बढ़ गया है ।

हमारे देश में लघु इकाइयाँ परम्परागत लघु क्षेत्र व आधुनिक लघु क्षेत्र दोनों क्षेत्रों में पायी जाती हैं परम्परागत लघु उद्योग में खादी, हथकरघा, खाद्य तेल, नारियल के रेशे से बने पदार्थ, चमड़ा उद्योग आदि सम्मिलित हैं । आधुनिक लघु उद्योगों में अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली औद्योगिक इकाइयाँ-पम्प सैट, डीजल इंजन, विद्युत मोटर्स, घड़ियाँ, रेडियों, ट्रांजिस्टर, रेफ्रीजिरेटर, बिजली के पंखे, सिलाई मशीन, टेलिविजन सैट, बिजली के तार, बुनाई की मशीनें, प्लास्टिक व रबड़ की वस्तुएँ, मिक्सर, ग्राइन्डर, टेपरिकार्ड, टेलिस्कोप, कैमरा, अनेक प्रकार के वैज्ञानिक औजार, घरेलू उपकरण, दवाइयाँ आदि आती है, जिनकी खपत देश व विदेश दोनों में होती है ।

इस प्रकार लघु व कुटीर उद्योग का क्षेत्र विस्तृत है । इसी कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में इन्हें सर्वोच्च स्थान दिया जाता है, क्योंकि इन्हीं उद्योगों पर लाखों ग्रामवासियों तथा वनवासियों का आर्थिक जीवन निर्भर है ।

7.2 लघु एवं कुटीर उद्योग का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

लघु उद्योग से तात्पर्य ऐसी औद्योगिक इकाई से है जिसमें प्लाण्ट एवं मशीनरी में अधिकतम 5 करोड़ रुपये तक का निवेश हो । अति लघु उद्योग (Tiny Sector) के लिए वह सीमा 25 लाख रुपये निर्धारित की गयी है ।

कुटीर उद्योग से तात्पर्य उन उद्योगों से है, जो एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा एक छत के नीचे पूर्णत: या आंशिक व्यवसाय के रूप से संचालित किये जाते हैं ।

परिभाषा- वर्ष 1996-97 में किये गये संशोधन के अनुसार,'वह औद्योगिक इकाई लघु उद्योग कहलाती है जिसमें प्लाण्ट एवं मशीनरी में अधिकतम 1 करोड़ रुपये का विनियोग हो । अति लघु क्षेत्र के लिए वह सीमा 25 लाख रुपये निर्धारित की गयी है । "छोटे, लघु एवं मझौले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 में विनिर्माण उद्योगों में लघु उद्यम में निवेश की सीमा बढ़ाकर 5 करोड़ रुपये तक कर दी गई।

राजकोषीय आयोग के शब्दों में. 'कुटीर उद्योग वह है जो पूर्णतया या मुख्यत: परिवार के सदस्यों की सहायता से पूर्ण या आशिक व्यवसाय के रूप में चलाये जाते हैं ।

'अनुषंगी उद्योग से तात्पर्य ऐसे उद्योग से है जो छोटे पुर्जे, उपकरण, मशीन एवं संयन्त्र का निर्माण अथवा मरम्मत के कार्य में लगे हुए हैं तथा जिनकी निवेश सीमा 1 करोड़ रुपये निर्धारित की गयी हैं ।

7.3 लघु एवं कुटीर उद्योग में अन्तर

यद्यपि लघु एवं कुटीर उद्योग दाना का समान स्तर का समझा जाता है, तथापि निम्नांकित आधार पर इनमें अन्तर ज्ञात किया जा सकता है :

क्र. सं.	अंतर का आधार	कुटीर उद्योग	लघु उद्योग
1	**संचालन**	कुटीर उद्योगों का संचालन एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा अपने ही घर में परम्परागत तरीके से किया जाता है	जबकि लघु उद्योगों का संचालन वेतनभोगी श्रमिकों द्वारा किया जात है।
2	**पूंजी**	कुटीर उद्योगों में पूँजी का विनियोजन परिवार के सदस्यो द्वारा किया जाता है। इसमें बाह्य पूँजी का कोई स्थान नहीं होता है।	जबकि लघु उद्योगों में बाह्य पूंजी का ही उपयोग किया जाता है।
3	**यंत्रो का प्रयोग**	कुटीर उद्योगों में पूँजी का सीमित प्रयोग होता है तथा श्रम की प्रधानता रहती है	जबकि लघु उद्योगों मे पूँजी व यंत्रों का प्रयोग बढ़ गया है।
4	**बाजार**	कुटीर उद्योगों का बाज़ार संकुचित व सीमित होता है।	जबकि लघु उद्योगों का बाज़ार विस्तृत होता है।

7.4 भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास

सरकार ने प्रारम्भ से ही लघु एवं कुटीर उद्योगों को ग्रामीण विकास एवं रोजगार का आधार मानते हुए इसके विकास के प्रयास किये हैं । योजनःकाल में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को निम्नांकित बिन्दुओं से देखा जा सकता है :

1. **संख्या में वृद्धिः-** 1950 में भारत में केवल 1600 लघु औद्योगिक इकाइयाँ थी जो 2006-07 में बढ़कर 12844 लाख हो गयी है । इसमें 2032 लाख इकाइयाँ पंजीकृत तथा 10812 लाख इकाइयाँ गैर-पंजीकृत है ।
2. **उत्पादन में वृद्धिः-** लघु क्षेत्र की इकाइयों द्वारा किये गये उत्पादन में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है । 1973-74 में इनके द्वारा केवल 13600 करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन किया गया जो 2006-07 में बढ़कर 471663 करोड़ रू. हो गया है ।
3. **रोजगार में वृद्धिः-** लघु क्षेत्र रोजगार का महत्त्वपूर्ण स्रोत है । इसमें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लाखों लोग रोजगार प्राप्त कर रहे हैं । 1979-80 में लघु क्षेत्र में 67 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त था जो 2006-07 में बढ़कर 31250 लाख व्यक्ति हो गया है ।
4. **निर्यातों में योगदानः-** लघु उद्योगों ने निर्यात क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 1973-74 में इनके द्वारा 852 करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुओं का निर्यात किया गया जो 2005-06 में बढ़कर 1,50,242 करोड़ रुपये हो गया ।
5. **उत्पादन में विविधताः-** लघु एवं कुटीर उद्योग के उत्पादन में विविधता रही है । ये केवल उपभोक्ता वस्तुएँ ही नहीं बल्कि पूँजीगत वस्तुओं की भी उत्पत्ति करते हैं । इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं में सीमेन्ट, लोहा, वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, बिजली के उपकरण, इंजीनियरिंग उत्पाद आदि रहे है ।

6. **अर्थव्यवस्था में योगदान:-** लघु उद्योगों ने आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । वास्तविक में ये भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं । निर्माण क्षेत्र में इनका योगदान 40 प्रतिशत रहा है । कुल निर्यातों में लघु क्षेत्र का योगदान 33 प्रतिशत है जबकि कुल रोजगार में इनका भाग 60 प्रतिशत के लगभग है । इस प्रकार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र में लघु उद्योगों का महत्त्वपूर्ण योगदान है ।
7. **बड़े उद्योगों के विकास में सहायक:-** लघु उद्योगों ने बड़े उद्योगों के विकास में भी महत्त्वपूर्ण' भूमिका निभाई है । ये बड़े उद्योगों के लिए कच्चा माल तैयार करते है । लघु उद्योग बड़े उद्योगों की सहायक इकाई के रूप में काम करते हैं ।

7.5 लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्त्व एवं भूमिका

लघु एवं कुटीर उद्योगों का हमारी अर्थव्यवस्था में प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में निर्मित वस्त्रों की माँग विदेशों में बहुत होती थी । भारतीय कारीगर अपनी हस्तकाल के लिए दूर-खुर तक विख्यात थे । यह स्थिति काफी समय तक चलती रही । ब्रिटिशकाल में भारतीय वस्त्रों का विदेशों में बड़ा आदर होता था और बदले में भारत को कीमती धातु प्राप्त होती थी । शनैः. शनैः इन उद्योगों का पतन होने लगा । पतन के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था में इन उद्योगों ने अपनी जगह बनाये रखी, । इसी के परिणामस्वरूप आज विकास योजनाओं में इनके महत्त्व को स्वीकार किया गया है, जिसके निम्न कारण रहे है:-

(1) **उत्पादन :-** देश के औद्योगिक उत्पादन में लघु उद्योगों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भारत, के लघु उद्योगों द्वारा निर्माणी उद्योगों के अन्तर्गत निर्मित कुल उत्पादन मूल्य का लगभग 40 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है । 2001-02 के स्थिर मूल्यों पर 2002-03 में लघु -उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य 3,06,771 करोड़ रुपये था जो 2003-04 में बढ़कर 3,36,344 करोड़ रुपये के स्तर तक पहुँच गया । 2004-05 में लघु उद्योगों का उत्पादन 3,72,938 करोड़ रुपये था । 2005-06 में इन उद्योगों द्वारा 4,18,884 करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन किया गया । 2006-07 में इन उद्योगों द्वारा 4,71,663 करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन किया गया । लघु उद्योगों द्वारा परम्परागत वस्तुओं के निर्माण के साथ-इलेक्ट्रोनिक तथा अनेक उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा है ।

(2) **रोजगार :-** रोजगार की दृष्टि से भी लघु उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था में विशिष्ट स्थान है । वर्ष 2002-03 में लघु उद्योगों में 263.68 लाख व्यक्ति कार्यरत थे । जबकि 2003-04 में यह संख्या275.30 लाख थी, जो 2005-06 में 299.85 लाख तथा 2006-07 में 312.52 लाख हो गई । लघु उद्योग प्रायः श्रम प्रधान तकनीक अपनाते हैं, जिससे अधिक लोगों को रोजगार दिया जा सकता है । रोजगार के इस विकास में आय में वृद्धि के साथ उपभोग एवं निवेश में वृद्धि संभव है ।

(3) **निर्यात :-** भारत के कुल निर्यातों में लघु उद्योग क्षेत्र का योगदान लगभग 34 प्रतिशत है । वर्ष2001-02 में लघु उद्योग द्वारा किये गये निर्यातों का मूल्य लगभग 86.013 करोड़ रुपये था । निर्यातों में लघु उद्योगों का इसलिए भी महत्त्व है कि इस क्षेत्र द्वारा अब परम्परागत निर्यातों के अलावा बड़ी मात्रा में गैर-परम्परागत वस्तुओं का निर्यात किया जा रहा है । गैर-परम्परागत वस्तुओं के निर्यात में मुख्य रूप से इन्जीनियरिंग का सामान, सिले-सिलाये वस्त्र, समुद्री उत्पाद तथा डिब्बाबन्द वस्तुएँ सम्मिलित हैं । 2004-05 में इस क्षेत्र द्वारा लगभग 1,24,417 करोड़ रुपये मूल्य की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई । 2005-06 में इनके द्वारा 1,50,242 करोड़ रुपये का माल निर्यात किया गया ।

(4) **कृषि पर निर्भरता कम करने में सहायक:-** कृषि की मानसून पर निर्भरता के कारण ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग वर्ष के लगभग 4-6 महीने बेकार रहता है । लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास से इस प्रकार के बेरोजगारी को कम किया जा सकता है तथा कृषि पर निर्भरता में कमी लायी जा सकती है । वैकल्पिक रोजगार में वृद्धि होने पर कृषि में स्थिति प्रच्छन्न बेरोजगारी से भी मुक्ति पाई जा सकती है ।

(5) **विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था:-** लघु एवं कुटीर उद्योगों के जरिये अर्थव्यवस्था में विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है । देश में 2006-07 में 128.44 लाख लघु उद्योग इकाइयाँ कार्यरत थी । इनमें से लाखों इकाइयाँ ग्रामीण तथा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में स्थापित की गई है । इस प्रकार बड़े शहरों व औद्योगिक केन्द्रों में संकेन्द्रण को रोकने में लघु उद्योग सहायक सिद्ध हो रहे हैं ।

(6) **स्थानीय संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग:-** भारत एक विशाल देश है जिनमें खनिज पदार्थो एवं मानवीय संसाधन एवं कौशल की बहुतायत है । लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करके स्थानीय संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है ।

(7) **पिछड़े क्षेत्रों का विकास:-** देश के अनेक राज्य औद्योगिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं जैसे पूर्वोत्तर के राज्य, राजस्थान, बिहार, पंजाब, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मु एवं कश्मीर इत्यादि । इन राज्यों में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करके औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है ।

(8) **अर्थव्यवस्था का समन्वित विकास:-** विकासशील देशों का समन्वित विकास करने की दृष्टि से भी लघु व कुटीर उद्योग महत्त्वपूर्ण हैं । लघु उद्योग कृषि, विदेशी व्यापार, परिवहन, आन्तरिक व्यापार, रोजगार इत्यादि सभी क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान दे रहे हैं। इनके द्वारा अर्थव्यवस्था का समन्वित विकास सम्भव है ।

(9) **पूँजी उत्पादन अनुपात:-** लघु व कुटीर उद्योग श्रम प्रधान तकनीक अपनाते हैं । अत: इन उद्योगों में अधिक पूँजी की आवश्यकता बहुत ही कम होती है । भारत एक विकासशील देश है, जिसमें पूँजी-निर्माण धीमी गति से होता है, पूँजी की अल्प उपलब्धात्म एवं श्रमिकों का अति उपलब्धात्म लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्त्व और

भी बढ़ाते हैं । अत: ऐसी स्थिति में लघु एवं कुटीर उद्योगों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है ।

(10) **मधुर औद्योगिक सम्बन्ध:-** बड़े पैमाने के उद्योगों में श्रमिकों एवं प्रबन्धकों में संघर्ष की स्थिति बनी रहती है लेकिन लघु व कुटीर उद्योगों में श्रमिकों तथा प्रबन्धकों अथवा साहसियों के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है । अत: मधुर औद्योगिक सम्बन्ध बने रहते है । इससे श्रमिकों व पूँजी की उत्पादकता भी अधिक बनी रहती है ।

(11) **संकट के समय सहायक:-** युद्ध अथवा अन्य किसी संकट के समय लघु व कुटीर उद्योग बहुत सहायक होते हैं । इनमें शीघ्रता से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है । युद्ध के समय शत्रु राष्ट्र बड़े उद्योगों को विध्वंस करने के लिए निशाना बना सकता है । लेकिन विकेन्द्रीकरण के कारण लघु उद्योगों का आसानी से विनाश नहीं किया जा सकता है ।

(12) **उत्पादन कुशलता:-** लघु उद्योगों में व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने के कारण उत्पादन कुशलता अधिक पायी जाती है । यदि फैक्ट्री स्तर की लघु इकाइयों को भी लघु उद्योगों में शामिल किया जाये तो कुल औद्योगिक उत्पादन में लघु उद्योगों का योगदान लगभग 50 प्रतिशत रहता है । इस दृष्टि से लघु उद्योगों का औद्योगिक उत्पादन एवं कार्यकुशलता में विशेष योगदान है ।

(13) **सरल कार्यप्रणाली:-** लघु एवं कुटीर उद्योगों की कार्यप्रणाली अत्यन्त सरल होती है । इसके कार्य संचालन के लिए उच्च कोटि के प्राविधिक विशेषज्ञों, मैनेजरों, विशाल भवनों, विस्तृत पूँजी व हिसाब-किताब एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है ।

(14) **परम्परागत प्रतिभा व कला की रक्षा:-** कुटीर व लघु उद्योगों ने देश-वासियों की परम्परागत प्रतिभा व औद्योगिक दक्षता को जीवित बनाए रखा है । इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की लागत चाहे ऊँची हो लेकिन इनके द्वारा निर्मित वस्तुऐं प्राय: टिकाऊ व कलात्मक होती हैं । वर्तमान में परम्परागत एवं कलात्मक वस्तुओं का निर्यात की दृष्टि से भी अधिक महत्त्व है ।

(15) **देश की सभ्यता व संस्कृति के अनुरूप :-** कुटीर व लघु उद्योगों से परस्पर सद्भावना, सहकारिता, समानता, भ्रातृत्व की भावना पनपती है, जबकि बड़े उद्योगों में शोषण, प्रतिस्पर्धा, वर्ग-संघर्ष व स्वार्थ बढ़ता है । अत: भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा लघु व कुटीर उद्योगों के विकास में निहित है ।

(16) **व्यापार चक्रों से मुक्ति व सामाजिक कल्याण:-** बड़े पैमाने की उत्पत्ति में उत्पादन आधिक्य की सम्भावनायें सदा बनी रहती हैं, जबकि लघु एवं कुटीर उद्योगों में माँग के अनुरूप उत्पत्ति की जाती है । अत: व्यापार चक्रों से उत्पन्न बेकारी का उद्भव नहीं होता है ।

7.6 लघु एवं कुटीर उद्योगों समस्याएँ/सीमाएँ

लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित है:-

(1) **बड़े पैमाने के उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा:-** लघु उद्योगों को बड़े पैमाने के उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती हैं । बड़े उद्योगों को कई प्रकार की आन्तरिक एवं बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं । इसके अलावा बड़े पैमाने के उद्योगों में बनी वस्तुएँ आधुनिक फैशन, डिजाइन एवं तकनीक के अनुरूप होती हैं । फलस्वरूप लघु उद्योगों में बनी हुई वस्तुएँ प्रतियोगिता में पिछड़ जाती हैं ।

(2) **पूँजी एवं साख की समस्या:-** लघु उद्योगों के पूँजी स्रोत सीमित होते हैं । अत: वे पर्याप्त. मात्रा में कच्चा माल नहीं खरीद पाते तथा तैयार माल का स्टॉक भी अधिक समय तक नहीं रख सकते । उन्हें अपने उत्पादन को तुरन्त बेचना पड़ता है । इससे उन्हें कई बार आर्थिक हानि भी होती है ।

(3) **विपणन की समस्या:-** छोटे आकार के कारण लघु उद्योग अपनी वस्तुओं का विज्ञापन एवं प्रचार भी नहीं कर पाते । इन उद्योगों को बाजार ढूँढने में कठिनाई आती है । कई बार इन्हें विपणन के क्षेत्र में बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है । लघु उद्योगों की सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है, जिससे उन्हें अपनी वस्तुओं की पर्याप्त कीमत भी नहीं मिल पाती ।

(4) **कच्चे माल की समस्या:-** कच्चे माल के लिए इन्हें स्थानीय आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भर करना पड़ता है । यदि आपूर्तिकर्ता एकाधिकारी अथवा बड़ा व्यवसायी हो तो लघु उद्योगों को कच्चा माल ऊँची कीमत पर प्राप्त होता है । कई बार कच्चे माल की पूर्ति करने वाली फर्म यह शर्त लगा देती है कि उनके (लघु उद्योगों) द्वारा उत्पादित माल उसे ही बेचा जाए । इस प्रकार लघु उद्योगों का शोषण होता है क्योंकि एक ओर तो उन्हें अधिक कीमत पर कच्चा माल मिलता है और दूसरी ओर उन्हें सस्ती दर पर तैयार माल बेचना पड़ता है ।

(5) **आधुनिकीकरण का अभाव:-** दुनिया के अनेक देशों के लघु उद्योग अति आधुनिक तकनीक अपनाकर उत्कृष्ट चीजें कम लागत पर निर्मित कर रहे हैं । उदाहरण के लिए जापान, चीन, कोरिया आदि देशों में लघु उद्योग अति आधुनिक हैं ।

(6) **निम्न उत्पादकता:-** भारत के लघु उद्योगों में पूँजी तथा श्रम उत्पादकता का स्तर बहुत नीचा है । इस समस्या का प्रमुख कारण श्रमिकों का अशिक्षित, अस्वस्थ एवं निर्धन होना है । लघु उद्योगों की उत्पादन क्षमता कम होने के कारण इनमें लगे श्रमिकों की उत्पादकता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता ।

(7) **संगठन का अभाव:-** लघु उद्योगों में संगठन का अभाव है । न तो लघु उद्योगों के मालिक तथा न ही उनमें श्रमिकों का सुदृढ़ संगठन है । सुदृढ़ संगठन के अभाव में श्रमिकों को अपनी समस्याएँ मालिकों तथा सरकार के समक्ष रखने में कठिनाई होती है।

(8) **रुग्णता की समस्या:-** देश के लाखों लघु उद्योग रुग्णावस्था में है । अधिकांश लघु उद्योगों की रुग्णता के प्रमुख कारण हैं- विपणन की समस्या, वित्त की कमी, कुशल प्रबन्ध का अभाव आदि ।

(9) **शक्ति के साधनों की कमी:-** अधिकांश लघु उद्योग ग्रामीण तथा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों मे स्थित है । जहाँ शक्ति की माँग पूरी नहीं हो पाती, जिससे उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता तथा लागत में वृद्धि होती है ।

(10) **परिवहन की समस्या:-** ग्रामीण तथा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में परिवहन के साधनों यथा रेल, सड़क, वायु परिवहन का विकास नहीं हो सका है; जिससे लघु उद्योगों को कच्चा-माल लाने तथा निर्मित माल मण्डियों तक पहुँचाने में कठिनाई आती है ।

7.7 लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदम

भारत सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्त्व एवं आवश्यकताओं को मुद्दे नजर रखते हुए इनके विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है । केन्द्र एवं राज्य सरकारों दोनों के ही संयुक्त प्रयत्न निम्न प्रकार हैं:-

(1) **बोर्डों एवं निगमों की स्थापना:-** सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए अनेकनिगमों एवं मण्डलों की स्थापना की है । ये निगम व मण्डल दो प्रकार के है । प्रथम प्रकार के, निगम व मण्डल किसी विशेष वस्तु के विकास के लिए बनाये गये हैं, जबकि दूसरे प्रकार के निगम व मण्डल कुटीर एवं लघु उद्योगों के सामान्य विकास के लिए बनाये गये हैं ।

(A) विशेष वस्तुओं के लिए गठित निगम व मण्डल निम्नलिखित हैं:-

(i) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (ii) अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड (iii) अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड (iv) अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड (v) नारियल रेशा बोर्ड (vi) लघु उद्योग बोर्ड (vii) अखिल भारतीय कुटीर उद्योग बोर्ड, 1948, (viii) केन्द्रीय रेशम बोर्ड ।

(B) लघु उद्योगों के सामान्य विकास के लिए गठित मण्डल निम्न है:-

(i) **लघु उद्योग विकास संगठन:-** लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सरकार ने लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की है । यह संगठन, 27 लघु उद्योग सेवा संस्थानों, 37 विकास केन्द्रों, 4 क्षेत्रीय परीक्षण केन्द्रों, 3 प्रक्रिया व उत्पाद विकास केन्द्रों के माध्यम से लघु उद्योगों को व्यापक रूप से परामर्श सेवायें तकनीकी, प्रबन्धकीय, आर्थिक व विपणन सहायता प्रदान करता है । लघु उद्योग विकास संगठन ने लघु उद्योगों के लाभ के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकी समर्थन कार्यक्रम शुरू किये हैं ।

(ii) **जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना:-** जनता सरकार द्वारा सन् 1978 में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए जिला उद्योग केन्द्रों की स्थापना का (Dics) कार्यक्रम आरम्भ किया गया । इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों एवं छोटे कस्बों में स्थापित लघु औद्योगिक इकाइयों को हर सम्भव सहायता पहुंचाना था ।

(iii) **स्वरोजगार कार्यक्रम:-** इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बेरोजगार शिक्षित युवाओं को स्वरोजगार सुविधा प्रदान करने हेतु लघु उद्योग खोलने के लिए सरकार द्वारा मार्गदर्शन तथा वित्तीय सुविधायें प्रदान की जा रही हैं ।

(iv) **लघु उद्योग, कृषि सम्बन्धी उद्योग तथा ग्राम्य उद्योग विभाग:-** यह विभाग भारत सरकार के उद्योग विभाग के अधीन जनवरी, 1990 में खोला गया था जिसका कार्य लघु उद्योगों, कृषि उद्योगों तथा ग्रामीण उद्योगों को नवचेतना प्रदान करना है ।

(v) **भारतीय दस्तकारी विकास निगम:-** यह निगम व्यापारिक स्तर पर हस्तकलाओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन को संगठित करके इन्हें अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित करता है ।

(2) **वित्तीय सहायता:-** लघु एवं कुटीर उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सरकार अपनी विभिन्न ऐजेन्सियों की सहायता लेती है । यह वित्तीय सहायता विभिन्न ऋण एवं अनुदानों के रूप में होती है । लघु एवं कुटीर उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली प्रमुख संस्थायें निम्नलिखित है

(i) रिजर्व बैंक (ii) स्टेट बैंक (iii) व्यापारिक बैंक (iv) राज्य वित्त निगम (v) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (vi) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(3) **प्राविधिक सहायता:-** सरकार ने लघु उद्योगों को प्राविधिक सहायता प्रदान करने के लिए निम्नलिखित कार्य किये है

(i) सरकार ने प्राविधिक सहायता के लिए लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की।

(ii) लघु उद्योग मण्डल व राष्ट्रीय लघु उद्योग संस्थाओं द्वारा नियमित रूप से लघु उद्योगों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं ।

(iii) लघु उद्योग अपने माल की जाँच व किस्म में सुधार कर सके, इसके लिए लघु उद्योग मण्डल ने प्रयोगशालायें स्थापित की हैं ।

(4) **विपणन सम्बन्धी सुविधायें:-** कुटीर व लघु उद्योगों के माल के क्रय के लिए सरकार के प्रोत्साहन से विपणन सहकारी समितियों की स्थापना की है । सन् 1966 में औद्योगिक समितियों के राष्ट्रीय फैडरेशन की स्थापना की गई । यह फैडरेशन औद्योगिक सहकारी समितियों के माल का थोक व्यापार एवं निर्यात करता है ।

(5) **औद्योगिक बस्तियों की स्थापना:-** इसके अन्तर्गत किसी ग्रामीण क्षेत्र के विभिन्न लघु उद्योगों को एक ही स्थान पर संगठित किया जाता है । केन्द्रीय सरकार औद्योगिक बस्तियों की स्थापना के लिए सरकारों को ऋण प्रदान करती है, फिर राज्य सरकारें इन बस्तियों की स्थापना करती है ।

(6) **आधुनिकीकरण एवं तकनीकी सुधार कार्यक्रम:-** इस कार्यक्रम के प्रारम्भ करने का उद्देश्य, लघु उद्योगों के उत्पादन व विकास में सहयोग, तकनीकी सुधार, निर्माण प्रक्रिया, में सुधार तथा किस्म नियन्त्रण आदि हैं । इस योजना का कार्यान्वयन लघु उद्योग विकास संगठन द्वारा किया जाता है।

(7) **उत्पादन क्षेत्र सुरक्षित करना:-** सरकार ने उत्पाद की कुछ किस्में केवल लघु उद्योगों के लिए ही सुरक्षित कर दी है । इससे बड़े व लघु उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्धा कम हो जायेगी । वर्तमान में आरक्षित सूची में केवल 21 मदें रह गई है ।

7.8 लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्या के समाधान हेतु सुझाव

लघु उद्योगों की समस्याओं को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:-

1. **सस्ती ब्याज दर पर वित्त व्यवस्था:-** लघु उद्योगों को रियायती दरों पर ओर अधिक पूँजी तथा साख उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाना चाहिए ।
2. **विपणन :-** सरकार द्वारा लघु उद्योगों के विपणन हेतु मेले प्रदर्शनियों का व्यापक स्तर पर आयोजन करना चाहिए । सरकारी विभागों द्वारा लघु उद्योगों में बनी वस्तुओं के क्रय को प्राथमिकता दी जानी चाहिए ।
3. **सस्ती दर पर कच्चा माल:-** लघु उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में सस्ती दरों पर कच्चा माल उपलब्ध कराया जाना चाहिए ।
4. **आधुनिकीकरण:-** सरकार द्वारा लघु उद्योगों के आधुनिकीकरण हेतु आर्थिक सहायता उपलब्ध करानी चाहिए । जो लघु उद्योग आधुनिकीकरण करें, उन्हें करों में रियायत देकर प्रोत्साहित करना चाहिए ।
5. **शिक्षा एवं प्रशिक्षण:-** शिक्षा तथा प्रशिक्षण के द्वारा श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए ।
6. **संगठन :-**लघु उद्योगों के संगठन स्थापित करने हेतु सरकार को मार्गदर्शन देना चाहिए।
7. **रुग्ण लघु इकाइयों को सहायता;-** रुग्ण लघु इकाइयों को सहायता एवं परामर्श देकर उन्हें लाभ कमाने के लिए प्रेरित करना चाहिए ।
8. **रियायती दरों पर विद्युत -**लघु उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में रियायती दरों पर ऊर्जा उपलब्ध करायी जानी चाहिए ।
9. **परिवहन व संचार साधनों का विकास:-** ग्रामीण तथा अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में परिवहन एवं संचार साधनों का शीघ्रता से ' विकास करना चाहिए । इससे लघु उद्योगों के विकास में सहायता मिलेगी।
10. **विकेन्द्रीकरण:-** लघु उद्योगों के विकेन्द्रीकरण हेतु पिछड़े हुए राज्यों में इसके विकास हेतु रियायतें दी जानी चाहिए ।
11. **कर्मचारियों का कल्याण:-** लघु उद्योगों के श्रमिकों व कर्मचारियों के कल्याण हेतु आवश्यक योजनाएँ चलाई जानी चाहिए ।
12. **गुणवत्ता में सुधार:-** लघु उद्योगों में गुणवत्ता सुधार के विशेष प्रयास किये जाने चाहिए ।

7.9 लघु उद्योग नीति 2006-07

छोटे एवं लघु उद्योगों को उनकी प्रतिस्पर्धा क्षमता बढ़ाने, प्रतिस्पर्धा की चुनौती का सामना करने एवं वैश्विक बाजार के लाभों का फायदा उठाने के लिए समर्थ बनाने के लिए सरकार द्वारा निम्न कदम उठाये गये है:-

1. छोटे, लघु एवं मझौले उद्यम विकास (एमएमईडी) अधिनियम, 2006 को लागू करना ।
2. खादी और ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम, 1956 को संशोधित करके आयोग के प्रचलनों में व्यावसायिकता को सुगम बनाने के लिए अनेक नए पहलुओं को लागू करने के साथ-साथ पण धारकों के सभी क्षेत्रों के साथ क्षेत्रीय स्तर पर औपचारिक एवं रचनात्मक परामर्श के लिए नया आयोग गठित किया जा चुका हैं ।
3. हाल ही में छोटे एवं लघु उद्यमों के संवर्द्धन के लिए एक पैकेज अनुमोदित किया गया है ताकि साख आधारित विकास संरचना, प्रौद्योगिकी एवं विपणन जैसे क्षेत्रों से संबंधित चिताओ को दूर किया जा सके । छोटे, लघु एवं मझौले उद्यम संस्थाओं का क्षमता निर्माण एवं महिला उद्यमियों को समर्थन इस पैकेज की अन्य प्रमुख विशेषताएँ हैं ।
4. क्षेत्र समूह के विकास के लिए एक व्यापक नीति बनाने एवं इसके कार्यान्वयन को देखने के लिए विदेश मंत्री की अध्यक्षता में अधिकार प्राप्त मंत्रियों का समूह गठित किया गया है ।
5. क्रेडिट गारंटी योजना के अंतर्गत लघु उद्योगों के लिए क्रेडिट गारंटी फण्ड ट्रस्ट (सीजीटीएसआई) के द्वारा यूनिटों के प्रमुख प्रवत्तको के लिए जीवन बीमा लागू किया गया है । इसके अतिरिक्त दिनांक 1 अप्रैल, 2006 से इस योजना के अन्तर्गत एक बार दी जाने वाली गारण्टी शुल्क 2.5 प्रतिशत से कम करके 1.5 प्रतिशत कर दिया गया है ।
6. पणधारियों के साथ विधिवत विचार विमर्श के पश्चात् केवल छोटे एवं लघु उद्यमों के लिए आरक्षित 180 मदों का आरक्षण 16 मई, 2006 को और 87 ऐसी मदों का आरक्षण 22 जनवरी, 2007 को समाप्त कर दिया गया है । अब आरक्षित मदों की संख्या केवल 21 रह गई है ।

छोटे लघु एवं मझौले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 की प्रमुख विशेषताएँ

1. यह 'उद्यम' (विनिर्माण एवं सेवाओं दोनों) की अवधारणा की स्वीकारोक्ति एवं इन उद्यमों के लिए तीन स्तरों अर्थात् छोटे लघु एवं मझौले के एकीकरण के लिए अपनी तरह की पहली कानूनी रूपरेखा विहित करता है ।
2. अधिनियम के अन्तर्गत उद्यमों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है यथा (i) विनिर्माण एवं (ii) सेवाऐं उपलब्ध प्रदान करना । इन दोनों श्रेणियों को इसके अतिरिक्त, संयंत्र एवं मशीनों में निवेश (विनिर्माण उद्यमों के लिए) अथवा उपस्करों (उन मामलों में जहाँ उद्यम सेवाएँ उपलब्ध करा रहा है अथवा प्रदान कर रहा है) के आधार पर छोटे, लघु एवं मझौले उद्यमों के रूप में वर्गीकृत किया गया है जो अग्रलिखित है:-

विनिर्माण उद्यम:- छोटे उद्यम 25 लाख रुपये तक का निवेश । लघु उद्यम 25 लाख रुपये से अधिक एवं 5 करोड़ रुपये तक का निवेश । मझौले उद्यम 5 करोड़ रुपये से अधिक एवं 10 करोड़ रुपये तक का निवेश ।

सेवा उद्यम:- छोटे उद्यम 10 लाख रुपये तक का निवेश । लघु उद्यम 10 लाख रुपये से अधिक और 2 करोड़ रुपये तक का निवेश । मझौले उद्यम 2 करोड़ रुपये से अधिक एवं 5 करोड़ रुपये तक का निवेश,।

3. यह अधिनियम राष्ट्रीय स्तर पर एक सांविधिक सलाहकार तंत्र की स्थापना को विहित करता है जिसमें पणधारियों के सभी वर्गो का व्यापक प्रतिनिधित्व होगा, खासकर, उद्यमों की तीन श्रेणियों का, और बोर्ड एवं केन्द्रीय 7 राज्य सरकारों का सहयोग करने के लिए एक सलाहकारी समिति होगी ।
4. अन्य विशेषताओं में शामिल हैं- (i) इन उद्यमों के प्रवर्तन, विकास एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक वृद्धि के लिए निर्दिष्ट निधियों की स्थापना, (ii) इस प्रयोजनार्थ योजनाओं कार्यक्रमों की अधिसूचना (iii) विकासशील क्रेडिट नीतियाँ एवं प्रथाएँ (iv) छोटे एवं लघु उद्यमों के उत्पादन एवं सेवाओं को सरकारी क्रय में प्राथमिकता (v) छोटे लघु उद्यमों को देर से किये गये भुगतान की समस्याओं को समाप्त करने के लिए ज्यादा प्रभावी तंत्र, एवं (vi) उद्यमों की सभी तीनों श्रेणियों के द्वारा व्यापार के समापन की प्रक्रिया का सरलीकरण ।

7.10 सारांश

भारत में कृषि के बाद लघु क्षेत्र रोजगार प्रदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र है । लघु क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता रोजगार सृजन क्षमता है । भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा बड़ा राष्ट्र है । यहाँ बढ़ती जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसरों की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है । अत: भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देश के लिए रोजगार की व्यापक सम्भावनाओं वाले लघु क्षेत्र का विशेष महत्त्व है ।

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) के इस दौर में लघु क्षेत्र के समक्ष विशेष चुनौतियाँ उपस्थित हो गयी हैं । भारत में लघु क्षेत्र, व्यक्तिगत प्रेरणा से ही निजी क्षेत्र में विकसित हुआ है । इसमें स्थानीय कच्चे माल, प्राकृतिक संसाधन एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग होता है । यह रोजगार की सम्भावनाओं वाला क्षेत्र है तथा इसके संचालन में लोचता विद्यमान है । किन्तु वैश्वीकरण के दौर में विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रावधानों के कारण इस क्षेत्र के समक्ष गम्भीर चुनौतियाँ खड़ी हो गयी हैं । यद्यपि लघु क्षेत्र के लिए कुछ वस्तुओं के उत्पादन को आरक्षित किया गया है किन्तु मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाने के साथ-साथ लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुओं की संख्या घटती जा रही है । अब लघु क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए खोल दिया गया है । इससे लघु उद्योगों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा का खतरा उत्पन्न हो गया है ।

लघु उद्योगों को वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने के लिए तकनीक उन्नयन की आवश्यकता है । इसके साथ ही इन्हें अपने उत्पाद की किस्म के प्रति भी जागरूक होता होगा,

क्योंकि अब इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का माल निर्मित करना होगा । लघु उद्योगों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के समक्ष प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए अपनी उत्पादन लागत को भी न्यूनतम करना होगा । सरकार को भी लघु उद्योग के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इन्हें प्रोत्साहन देने की नीति पर विचार करना होगा । सरकारी समर्थन के बिना इनका प्रतिस्पर्धा में टिके रहना सम्भव नहीं है । इस संबंध में हमें चीन से शिक्षा लेनी चाहिए । चीन का भी बड़ा आन्तरिक बाजार है तथा वहाँ भी श्रम लागत बहुत कम हैं । भारत में श्रम लागत कम है तथा जनाधिक्य के कारण बड़ा आन्तरिक बाजार उपलब्ध है । अत: हमें स्वदेशी उपभोग के लिए लघु क्षेत्र मे सस्ता माल उत्पन्न करना चाहिए । दूसरी ओर यह भी देखा गया है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपनी इकाइयाँ विकासशील देशों में लगा रही हैं ताकि सस्ती श्रम लागत का लाभ उठाया जा सके । लघु क्षेत्र को वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी भूमिका का पुनर्निर्धारण करना होगा । अब लघु उद्योग बड़े उद्योगों के सहायक उद्योगों के रूप में कार्य कर सकते हैं । ये बड़ी इकाइयों के लिए जॉब वर्क करने, अनुषंगी इकाइयाँ लगाने, इनके लिए उत्पादन करने आदि के रूप में अपने आपको समायोजित कर सकते हैं ।

7.11 शब्दावली

- **लघु उद्योग :-** ऐसी औद्योगिक इकाई जिसमें प्लान्ट व मशीनरी में अधिकतम 5 करोड़ रुपये का विनियोग हो, लघु उद्योग कहलाते है ।
- **कुटीर उद्योग:-** कुटीर उद्योग वे होते है जो एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा एक ही छत के नीचे पूर्ण या आशिक व्यवसाय के रूप में संचालित किये जाते हैं ।
- **अतिलघु क्षेत्र:-** इसमें विनियोग की अधिकतम सीमा 25 लाख रुपये होती है ।
- **अनुषंगी उद्योग:-** ऐसे उद्योग जो छोटे पुर्जे, उपकरण, मशीन एवं संयन्त्र का निर्माण अथवा मरम्मत के कार्यो में लगे होते हैं, अनुषंगी उद्योग कहलाते है ।

7.12 स्वपरख प्रश्न

1. लघु उद्योग को परिभाषित कीजिए ।
2. अति लघु क्षेत्र से क्या आशय है?
3. कुटीर उद्योग से क्या अभिप्राय है?
4. लघु व कुटीर उद्योगों की पांच समस्याएँ लिखिए ।
5. लघु व कुटीर उद्योग में अन्तर बताइये ।
6. भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के सम्मुख समस्याओं की विवेचना कीजिए ।
7. भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के पक्ष में तर्क दीजिए ।
8. वे कौन-कौन से तत्व है जो भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास में बाधक है?
9. लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए सरकार द्वारा उठाये गये विभिन्न कदमों का वर्णन कीजिए ।
10. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए ।
11. भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को स्पष्ट कीजिए ।

7.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. Indian Economy- LC. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
2. Indian Ecomony- Datt & Sundharam, S. Chand, New Delhi.
3. भारतीय अर्थव्यवस्था, नाधूरामका-सी.बी.एच., जयपुर ।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, ओझा- रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
5. भारत में आर्थिक पर्यावरण, गुप्ता, स्वामी - रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
6. व्यावसायिक वातावरण - गुप्ता, स्वामी - रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
7. आर्थिक समीक्षा, 2007-08
8. भारत 2008.

इकाई-8: भारत में सार्वजनिक क्षेत्र
(Public Sector in India)

इकाई की रूपरेखा:

8.1 प्रस्तावना

8.2 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास

8.3 सार्वजनिक क्षेत्र का अर्थ एवं परिभाषा

8.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्देश्य

8.5 भारत में लोक क्षेत्र का औचित्य अथवा महत्त्व/लोक क्षेत्र के पक्ष में तर्क

8.6 लोक उपक्रमों की उपलब्धियाँ/कार्यकुशलता

8.7 सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याएँ, आलोचनाएँ एवं दोष

8.8 भारत में लोक उपक्रमों में विनिवेश

8.9 सारांश

8.10 शब्दावली/पारिभाषित शब्द

8.11 स्व-परख प्रश्न

8.12 उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ ग्रन्थ

8.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से तात्पर्य उन उपक्रमों से है जिनका स्वामित्व, प्रबन्ध एवं नियंत्रण एवं संचालन सरकार द्वारा किया जाता है । इन उपक्रमों को लोक उपक्रम, सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम आदि नामों से भी जाना जाता है । ये उपक्रम केन्द्र व राज्य सरकार अथवा केन्द्र व राज्य सरकार, के सयुंक्त स्वामित्व में स्थापित किये जा सकता है । कल्याणकारी राज्य की विचारधारा को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए सरकार ने सार्वजनिक महत्त्व की सेवाओं एवं ऐसे उद्योगों, जिनका संचालन निजी क्षेत्र करता है, के संचालन के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना की है । आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की प्राप्ति भी सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना से ही संभव है क्योंकि निजी साहसी उन्हीं क्षेत्रों में उपक्रम स्थापित करते हैं जिनमें लाभ की पर्याप्त सम्भावना हैं । सार्वजनिक उपक्रम लाभ के स्थान पर जनकल्याण की भावना से स्थापित किये जाते हैं ।

8.2 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास

भारत में लोक क्षेत्र की विचारधारा कोई नयी बात नहीं है । अत्यन्त प्राचीन काल में भी सरकार आर्थिक क्रियाएँ संचालित करती थी । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य द्वारा की जाने वाली अनेक आर्थिक क्रियाओं का उल्लेख है । मध्यकालीन भारत में भी मुस्लिम शासकों ने उत्पादन कार्यो में सार्वजनिक क्षेत्र को पर्याप्त महत्त्व दिया । ब्रिटिश शासन काल में भारत के लघु व कुटीर उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा । फलस्वरूप वे नष्ट होने लगे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक अंग्रेज सरकार ने भारत में सार्वजनिक उपक्रम की

स्थापना पर कोई ध्यान नहीं दिया । लेकिन बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में सन् 1837 में भारतीय डाक व्यवस्था तथा 1853 में रेल व्यवस्था सरकारी क्षेत्र में प्रारम्भ की गई । सन् 1916 में, 'औद्योगिक आयोग' का गठन किया गया । सन् 1930 में सरकार ने 'आकाशवाणी' को अपने हाथ में लिया । इसी के साथ धीरे-धीरे सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की जाने लगी ।

सन् 1947 के बाद देश में लोक क्षेत्र का तेजी से विकास एवं विस्तार हुआ । सन् 1950 में भारत का संविधान बना । इसी वर्ष योजना आयोग का गठन किया गया तथा भारत में पंचवर्षीय योजनाएँ प्रारम्भ हुई । सन् 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया । किन्तु नये उपक्रम स्थापित करने में लोक क्षेत्र को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया गया । इस नीति के परिणामस्वरूप विभिन्न राज्यों में राज्य विद्युत मण्डलों की स्थापना की गई । 1948 में **दामोदर घाटी निगम** व **इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज** की स्थापना हुई । 1949 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण किया गया । इसके अतिरिक्त 1950 से पूर्व **औद्योगिक वित्त निगम, नेशनल न्यूजप्रिंट एण्ड पेपर मिल्स नेपानगर, इण्डियन रेयरअर्थस लि. बम्बई.** कर्मचारी राज्य बीमा निगम आदि लोक उपक्रम स्थापित हो चुके थे ।

नियोजन काल में लोक उपक्रम

(1) **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-52 से 1955-556)-** प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रस्ताव में इस बात का उल्लेख किया गया कि सरकार के बढ़ते हुए सामाजिक एवं आर्थिक दायित्वों को पूरा करने एवं लोगों की आशाओं को पूरा करने के लिए सरकार को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी । यह भी कहा गया कि सरकार को ऐसे क्षेत्रों में लघु उद्योग लगाने होंगे जिनमें निजी क्षेत्र नहीं आना चाहता है, किन्तु जो आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं । इस योजना में हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि., इण्टीग्रल कोच फैक्ट्री, हिन्दुस्तान केबिल्स लि.. नाहन फाउण्ड्री लि., आल इण्डिया खादी एण्ड विलेज इण्डस्ट्रीज बोर्ड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि., एयर एण्डिया इण्टरनेशनल, इण्डियन एयरलाइन्स कॉरपोरेशन हिन्दुस्तान स्टील. लि., नेशनल रिसर्च डेवलपमेन्ट कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि., भारत इलेक्ट्रोनिक्स लि., हिन्दुस्तान एण्टिवायटिक्स लि., नेशनल इण्डस्ट्रियल डेवलपमेन्ट कॉरपोरेशन नेशनल स्माल इण्डस्ट्रीज कॉरपोरेशन लि, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा अशोका होटल आदि उपक्रम स्थापित किये गये । योजना के अन्त में सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या 21 तथा विनियोजन 81 करोड़ रु. था ।

(2) **द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1955-58 से 1980-81)-** इस योजना में समाजवादी समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् 1956 में नयी औद्योगिक नीति घोषित की गई । इस नीति से लोक उपक्रमों की स्थापना व विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ । इस नीति में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए तीव्र औद्योगीकरण की बात कही गई । भावी विकास की दृष्टि से उपक्रमों को तीन भागों में बाँटा गया । राज्य के एकाधिकार में 17 उद्योग रखे गये । 12 उद्योगों को धीरे-धीरे सरकारी

नियन्त्रण में लेने की बात कही गयी तथा शेष उद्योग निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिये गये । इस योजना में उड़ीसा माइनिंग कॉरपोरेशन लि., आयल एण्ड नेचुरल गैस कमीशन, हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि., नेशनल कोल डेवलपमेन्ट कॉरपोरेशन लि., ट्रावनकोर मिनरल्स लि., नेवेली लिग्नाइट लि., जीवन बीमा निगम, वेयर हाउसिंग कॉरपोरेशन नेशनल इंस्ट्रूमेन्ट्स लि, एक्सपोर्ट रिस्क इन्शयोरेन्स कॉरपोरेशन इण्डियन हैण्डिक्राफ्ट्स डवलपमेन्ट कॉरपोरेशन लि., हिन्दुस्तान साल्ट कम्पनी लि., इण्डियन रिफायनरीज लि., हैवी इन्जीनियरिंग लि, इण्डियन ऑयल लि., फिल्म फाइनेन्स कॉरपोरेशन लि., नेशनल बिल्डिंग कन्सट्रक्शन कॉरपोरेशन लि., हिन्दुस्तान फोटो फिल्म मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लि., हिन्दुस्तान ऑरगेनिक केमिकल्स लि. आदि लोक उपक्रमों की स्थापना की गई । इस योजना में भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला इस्पात संयन्त्रों की स्थापना भी की गई । विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से राज्य व्यापार निगम' बनाया गया । योजना के अन्त में उपक्रमों की संख्या बढ़कर 48 हो गयी तथा विनियोग बढ़कर 953 करोड़ रु. हो गया ।

(3) **तृतीय पंचवर्षीय योजना (1980-61 से 1965-68)-** इस योजना में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए लोक उपक्रमों को एक सशक्त माध्यम माना गया । इस योजना में भारतीय खनिज एवं धातु व्यापार निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, नेशनल सीड्स कॉरपोरेशन लि., भारतीय खाद्य निगम, बोकरो स्टील लि. । हिन्दुस्तान वर्क्स कन्स्ट्रक्शन लि., आदि लोक उपक्रमों की स्थापना की गई । योजना के अन्त में उपक्रमों की संख्या बढ़कर 74 हो गयी । इनमें 2415 करोड़ रु. की पूँजी विनियोजित थी ।

(4) **तीन वार्षिक योजनाएँ (1988-69)-** से तृतीय योजना में चीन व पाकिस्तान से युद्ध एवं लगातार तीन वर्ष तक अकाल ने भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर ही तोड़ डाली । हम पंचवर्षीय योजनाएँ जारी नहीं रख पाये और एक वर्षीय योजनाएँ लागू की गई । ये एक वर्षीय योजनाएँ मार्च, 1969 तक चलीं । इस अवधि में मशीन टूल्स कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि., सेन्ट्रल इनलैण्ड वाटर ट्रान्सपोर्ट कॉरपोरेशन लि., इलेक्ट्रिकल्स कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि., दि नेशनल टेक्सटाइल कॉरपोरेशन इण्डियन पेट्रोकेमिकल्स लि., यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि., हिन्दुस्तान कापर लि. आदि प्रमुख लोक उपक्रम स्थापित किये । मार्च, 1969 तक लोक उपक्रमों की संख्या बढ़कर 85 हो गयी तथा विनियोजित पूँजी बढ़कर 3902 करोड़ रु. हो गयी ।

(5) **चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1989-74)-** इस योजना में समाजवादी समाज की स्थापना करने में लोक उपक्रमों के महत्त्व को दोहराया गया तथा इस बात पर बल दिया गया कि लोक उपक्रम अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली भूमिका निभा सकें । इस योजना में यद्यपि 1973 में संशोधित औद्योगिक नीति घोषित की गई । किन्तु आधारभूत नीति 1956 की औद्योगिक नीति ही थी । इस नयी संशोधित नीति का उद्देश्य एकाधिकार प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण एवं संयुक्त क्षेत्र का विकास करना था । इस योजना के प्रारम्भ

में (जुलाई, 1969) 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। 1972-73 में कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण किया गया । इस अवधि में आवास व शहरी विकास वित्त निगम, भारतीय कपास निगम, भारतीय काजू निगम, भारतीय जूट निगम, हिन्दुस्तान पेपर निगम लि. भारतीय चाय व्यापार निगम, इण्डियन आप्थेसनिक ग्लास लि., डायनामिक्स लि., भारत गोल्ड माइन्स लि., भारत पम्प एण्ड कम्प्रेसर्स लि., इण्डियन डेयरी कॉरपोरेशन कोचीन शिपयार्ड, स्टील एथॉरिटी ऑफ इण्डिया लि., आदि प्रमुख लोक उपक्रम स्थापित किये गये । योजना के अन्त में उपक्रमों की संख्या बढ़कर 122 तथा विनियोजित पूँजी 6237 करोड़ रु. हो गयी ।

(6) **पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-78)-** इस योजना में निर्माणाधीन लोक उपक्रमों को शीघ्रता से पूरा करने का लक्ष्य रखा गया । योजना अवधि में इस्पात, उर्वरक, कोयला, पेट्रोलियम तथा औद्योगिक मशीनों के क्षेत्र में लोक उपक्रमों की स्थापना पर बल दिया गया । इस अवधि में इण्टरनेशनल एण्ड कारगो टर्मिनल कॉम्पलेक्स एशियाई दूर संचार प्रशिक्षण केन्द्र, कागज और अखबारी कागज की परियोजनाएँ, समुद्रपार संचार सेवा के अन्तर्गत भारत व मलेशिया प्रायद्वीप के मध्य वाइड बैंड सब मैरिन लिंक आदि परियोजनाएँ प्रारम्भ की गयीं । इस योजना में अप्रत्याशित मूल्य वृद्धि की समस्या का सामना करना पड़ा । फलस्वरूप योजना 1978 में ही समाप्त कर दी गई । मार्च, 1978 में लोक उपक्रमों की संख्या 174 तथा विनियोजित पूँजी 11389 करोड़ रु. हो गयी ।

(7) **छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)-** पाँचवीं योजना के बाद दो एकवर्षीय योजनाएँ बनी। फलस्वरूप छठी योजना अप्रेल, 1980 से प्रारम्भ हुई । इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार एवं विकास को पर्याप्त महत्त्व दिया गया । योजना के प्रारम्भ में ही 6 व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया । 23 जुलाई, 1980 को नयी औद्योगिक नीति घोषित की गई । इस नीति में लोक उपक्रमों को औद्योगिक विकास के आधार स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया गया यह कहा गया कि लोक उपक्रमों की पुनर्स्थापना एवं जन-विश्वास उत्पन्न करने के लिए इन्हें अधिक प्रभावशाली बनाया जायेगा ।

(8) **सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) -** सातवीं पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय लोक क्षेत्र उपक्रमों की संख्या बढ़कर 244 हो गयी । सातवीं योजना के अन्त में केन्द्रीय लोक क्षेत्र उपक्रमों में कुल 99330 करोड़ रु. की पूँजी विनियोजित थी ।

(9) **आठवीं योजना एवं वर्तमान स्थिति-** देश में इस समय लगभग एक हजार लोक उपक्रम हैं जिनमें से लगभग 700 का स्वामित्व राज्यों का है, शेष केन्द्रीय क्षेत्र में हैं केन्द्रीय क्षेत्र के उपक्रमों में विभागीय उपक्रम (उदाहरणार्थ, रेलवे, डाक एवं दूर-संचार), वित्तीय संस्थाएँ (SBI, IFCI, UTI, IDBI, इत्यादि) तथा गैर-विभागीय उपक्रम या सरकारी कम्पनियाँ अथवा निगम जिनकी स्थापना कम्पनी कानून के अन्तर्गत (भारतीय इस्पात प्राधिकरण तथा भारतीय पैट्रोकेमिकल कॉरपोरेशन) या संसद द्वारा पारित विशेष कानून

के अन्तर्गत (उदाहरणार्थ, कोल इण्डिया, एयरइण्डिया, इण्डियन एयरलाइन्स तथा NTPC) हुई सम्मिलित हैं । गैर-विभागीय उपक्रमों में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कुल उत्पादन का 75% उत्पादन होता है । इनमें कुल विनियोग का 50% पूँजी विनियोजित है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा प्रदत्त कुल रोजगार का 1/3 भाग गैर-विभागीय उपक्रमों द्वारा प्रदान किया जा रहा है ।

लोक उपक्रमों में कुल विनियोग- सन् 2002-03 में केन्द्र सरकार के लोक उपक्रमों में कुल विनियोग 4,188 करोड़ रु. का था । नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है कि केन्द्रीय 9888 अपनी विनियोजित पूँजी पर बहुत कम शुद्ध लाभ कमा रहे हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि एक सौ से अधिक उपक्रम घाटे पर चले रहे हैं । लाभ अर्जित करने वाले उपक्रमों की लाभदायकता का प्रतिशत भी कम है । वर्ष 2006-07 में केन्द्रीय PSEs ने 421089 अरब रु. का शुद्ध लाभ कमाया ।

भारत में केन्द्रीय लोक क्षेत्र उपक्रमों के विकास एवं विस्तार को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है:

केन्द्रीय लोक उपक्रमों की कार्यकुशलता का विवरण

(करोड़ रुपये)

वर्ष	इकाइयों की संख्या	बिक्री / परिचालन आय	शुद्ध लाभ	सरकारी कोष में योगदान	आंतरिक संसाधानों मे सकल वृद्धी
1991-92	237	1,33,906	2,356	19,951	12,943
2000-01	234	4,58,237	15,653	61,037	37,811
2001-02	231	4,47,529	25,978	62,866	52,544
2002-03	227	5,35.165	32,399	81,867	54,273
2003-04	230	5,87.052	53,084	89,035	75,409
2004-05	227	7,00,862	65,429	1,10,599	83,854
2006-07	244	9,64,470	81,550	1,47,635	--------

Sources : Eco. Survey, 2007-08, P.197

8.3 सार्वजनिक क्षेत्र का अर्थ एवं परिभाषा

लोक उपक्रम का तात्पर्य ऐसे उपक्रम से है जो सरकार के स्वामित्व, प्रबन्ध एवं नियंत्रण मे संचालित किया जाता है । लोक उपक्रम को लोक उद्योग, सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम आदि नामों से भी जाना जाता है । लोक उपक्रम की प्रमुख परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं-

ए. एच. हैन्सन (A. H. Hanson) के अनुसार, 'लोक उपक्रम से अभिप्राय सरकार के स्वामित्व और संचालन के अन्तर्गत आने वाले औद्योगिक, कृषि, वित्तीय एवं वाणिज्यिक संस्थानों से है।

एस. एस. खेरा (S. S. Khera) के अनुसार, "लोक उपक्रम से तात्पर्य उन औद्योगिक, वाणिज्यिक एवं आर्थिक क्रियाओं से है जिन्हें केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय एवं राज्य सरकार संयुक्त रूप से चलाती है ।

टी. आर. शर्मा (T. R. Sharma) के अनुसार "लोक उपक्रम एक ऐसी संस्था है जिस पर या तो राज्य का स्वामित्व हो या जिसकी प्रबन्ध व्यवस्था राजकीय तन्त्र द्वारा संचालित की जाती हो अथवा दोनो ही राज्य के अधीन हों ।

एन. एन. माल्या (N. N. Mallya) के अनुसार, "लोक उपक्रम से अभिप्राय सरकारी स्वामित्व में स्थापित एवं नियन्त्रित ऐसी स्वशासित अथवा अर्द्धस्वशासित निगमों एवं कम्पनियों से है, जो औद्योगिक एवं वाणिज्यिक कार्य में संलग्न हों ।'

एस. एम. बिजली के अनुसार**,** "लोक उपक्रम वह उपक्रम है जिसकी सर्वाधिक अंश पूँजी पर सरकार का प्रत्यक्ष: अथवा किसी विकेन्द्रित लोक निकाय के माध्यम से अधिकार होता है ।'

राय चौधरी एवं चक्रवर्ती के अनुसार, ' राजकीय उपक्रम व्यवसाय का एक ऐसा स्वरूप है जो सरकार के द्वारा नियन्त्रित एवं संचालित होता है तथा सरकार या तो स्वयं उसकी एक मात्र स्वामी होती है या अधिकांश अंश अपने पास रखती हैं । '

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक उपक्रम में वे समस्त आर्थिक उपक्रम(औद्योगिक, व्यापारिक एवं सेवा उपक्रम) सम्मिलित किये जाते हैं, जिनका स्वामित्व अथवा प्रबन्ध अथवा स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों राज्य के पास होते हैं । इन पर सरकार का नियन्त्रण होता है ।

सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ अथवा लक्षण- लोक उपक्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **स्वामित्व-**लोक उपक्रम राज्य के स्वामित्व में रहते हैं । इस पर केन्द्र अथवा राज्य सरकारों अथवा दोनों का स्वामित्व हो सकता है । स्वामित्व का तात्पर्य यही पूँजी विनियोग से है । यदि कोई उपक्रम सरकार तथा निजी उद्योगपतियों द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जाता है तो भी उसकी पूँजी मे सरकार का अंशदान अधिक होता है अर्थात् आधी से अधिक पूँजी सरकार द्वारा लगायी जाती है।

(2) **प्रबन्ध-**सामान्य रूप से लोक उपक्रमों का प्रबन्ध भी सरकार द्वारा ही किया जाता है । यह कहा जाता है कि प्रबन्ध स्वामित्व का अनुचर होता है अर्थात् सामान्य रूप से स्वामी ही संस्था का प्रबन्ध करता है । लोक उपक्रमों के प्रबन्ध पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण होता है । यह सम्भव है कि सरकार किसी उपक्रम को दिन-प्रतिदिन के कार्यो में स्वायत्तता प्रदान कर दें । किन्तु उच्च स्तरीय प्रबन्ध स्वयं अपने हाथ में रखती है।

(3) **आर्थिक क्रिया-**लोक उपक्रम आर्थिक क्रिया करते हैं । लोक उपक्रमों में उन सभी राजकीय उपक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जो उद्योग, व्यापार, सेवा, वित्त, कृषि तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं में सलंग्न हैं ।

(4) **निजी उपक्रमों के विकल्प-**लोक उपक्रमों की स्थापना निजी उपक्रमों के विकल्प के रूप में की गई है । लोक उपक्रम आज के युग में निजी उपक्रम के पूरक के रूप में कार्य करने लगे हैं।

(5) **सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन का माध्यम-**लोक उपक्रम सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं । ये समाज के आर्थिक जीवन को नियमित एवं नियन्त्रित करने वाले महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं । सरकार इनके माध्यम से ही अपनी नीतियाँ एवं कार्यक्रम लागू करती है ।

(6) **व्यापक क्षेत्र-**लोक उपक्रमों का क्षेत्र व्यापक है । सभी प्रकार के उपक्रम चाहे वे व्यावसायिक प्रकृति के हो अथवा गैर व्यावसायिक प्रकृति के, सरकारी स्वामित्व एवं प्रबन्ध में होने पर लोक उपक्रम माने जाते हैं ।

(7) **स्वरूप-**लोक उपक्रम सामान्य रूप से विभागीय, कम्पनी या निगम के रूप में गठित किये जाते ' हैं । इसके अतिरिक्त कुछ उपक्रम नियन्त्रित मण्डलों, न्यासों, परिचालनात्मक अनुबन्धों, संयुक्त क्षेत्र आदि के रूप में भी चलाये जाते हैं ।

(8) **उद्देश्य-**लोक उपक्रमों का उद्देश्य जनहित में कार्य करना होता है । ये जनता के हितों की रक्षा के साथ आर्थिक समानता, सामाजिक न्याय तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए भी कार्य करते हैं ।

(9) **नियन्त्रण-**लोक उपक्रमों में जनता का धन लगा होता है । इन्हें जनता की प्रतिनिधि संसद, मन्त्री, अंकेक्षक व न्यायालय के नियन्त्रण में कार्य करना होता है । लोक उपक्रम जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं ।

(10) **एकाधिकार-**समान्य रूप से लोक उपक्रम एकाधिकार की स्थिति में चलाये जाते हैं । सरकार की ओर से इन्हें कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं । कुछ लोक उपक्रम निजी उपक्रमों की प्रतिस्पर्धा का सामना भी करते हैं ।

8.4 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्देश्य

लोक क्षेत्र का प्रमुख उद्देश्य ऐसे उद्योगों की स्थापना करना है जिनमें निजी क्षेत्र की दिलचस्पी नहीं है लेकिन जिनकी स्थापना आर्थिक विकास के लिए अति आवश्यक हैं । लोक उपक्रमों के द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है । लोक उपक्रमों की स्थापना के सम्बन्ध मे स्व. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने कहा था कि, 'हम तीन महत्त्वपूर्ण कारणों से सार्वजनिक क्षेत्र का समर्थन करते हैं । अर्थव्यवस्था की ऊँचाइयों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए, सामाजिक लाभ या बुनियादी महत्त्व के रूप में विकास के कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए तथा व्यापारिक अतिरेक पैदा करने के लिए, जिससे आर्थिक विकास ओर ज्यादा बढ़ सके । "भारत जैसे विकासशील देश मे लोक उपक्रमों की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी है-

(1) देश का तीव्र आर्थिक विकास करना ।

(2) आधारभूत व अधिक विनियोग वाले उद्योगों की स्थापना करना ।

(3) अधिक जोखिमपूर्ण व सुरक्षा सम्बन्धी उद्योगों की स्थापना करना ।

(4) आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक लगाना ।

(5) समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त करना ।

(6) सरकारी राजस्व मे वृद्धि करना ।

(7) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना ।

(8) बीमार व अक्षम इकाइयों को अधिकार में लेकर संचालन करना ।

(9) रोजगार उपलब्ध कराना ।

(10) वैयक्तिक नियन्त्रण के स्थान पर सरकारी नियन्त्रण लगाना ।

(11) पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करना ।

(12) तकनीकी. व शोध कार्यो को प्रोत्साहन देना

(13) नियोजित विकास के लिए अवस्थापना पृष्ठभूमि तैयार करना ।

(14) निजी उपक्रमों के अधूरे कार्यो को पूरा करना ।

(15) जनकल्याण में वृद्धि करना ।

(16) आदर्श 'सेवा नियोजक' की भूमिका निभाना ।

8.5 भारत में लोक क्षेत्र का औचित्य अथवा महत्त्व/लोक क्षेत्र के पक्ष में तर्क

भारत में तीव्र आर्थिक विकास के साथ समाजवादी समाज की रचना का लक्ष्य रखा गया । इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार ही नहीं किया गया बल्कि यह माना गया है कि नियोजन की सफलता के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का विकास आवश्यक है । **प्रो. हेन्सन** ने लिखा है कि, **'सार्वजनिक उद्योग नियोजन के बिना सफल हो सकते हैं, लेकिन नियोजन सार्वजनिक उद्योगों के बिना सफल नहीं हो सकता है ।** " आज विश्व में अनेक अर्थव्यवस्थाएँ संचालित हैं और सभी अर्थव्यवस्थामें कमोबेशी रूप में सार्वजनिक उपक्रमों के महत्त्व को स्वीकार किया गया है ।

सन् 1951 से योजनाएँ प्रारम्भ हुई । इन योजनाओं में आर्थिक समानता व न्याय, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक, अधिकाधिक रोजगार उपलब्ध करवाना, तकनीकी व आर्थिक विकास, राष्ट्रीय साधनों का अधिकतम उपयोग, सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था आदि अनेक उद्देश्य रखे गये । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना व विकास की आवश्यकता अनुभव की गई । सन् 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार करते हुए यह कहा गया था कि, ' 'समाजवादी समाज को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में अपनाने तथा नियोजन एवं तीव्र विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि आधारभूत एवं सामरिक महत्त्व के सभी उद्योग तथा जनोपयोगी सेवा उद्योग सरकारी क्षेत्र में स्थापित एवं संचालित किए जायें । " पंडित नेहरू का विचार था कि आज के युग में जनता की भावना का आदर करते हुए सार्वजनिक क्षेत्र का विकास किया जाना चाहिए । सन् 1977 की जनता सरकार की औद्योगिक नीति व सन् 1980 की औद्योगिक नीति में भी **सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार किया गया । सार्वजनिक क्षेत्र के औचित्य एवं महत्त्व पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं-**

(1) **आधारभूत उद्योगों का विकास-** किसी भी देश के तीव्र विकास के लिए कुछ आधारभूत उद्योगों को विकसित करना आवश्यक है । इन उद्योगों में लोहा व इस्पात, सीमेन्ट, तेलशोधन इन्जीनियरिंग, भारी मशीन, यातायात के साधन आदि मुख्य हैं । इन उद्योगों के विकास पर ही भावी विकास निर्भर है । निजी उद्यमी इनमें उद्योग स्थापित नहीं करना चाहते हैं । क्योंकि एक तो इनमें बहुत मात्रा में पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, दूसरे इनकी स्थापना में अधिक समय लगने से देरी से लाभ प्राप्त होते हैं । अत: निजी उद्योगपतियों की इनमें कोई रुचि नहीं रहती हैं ऐसे उद्योगों में उच्च तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है व जोखिम भी अधिक रहती है।

(2) **सैनिक एवं सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग-** सुरक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग में ही किया जाता हैं । इन उद्योगों का संचालन लाभ की भावना से प्रेरित होकर नहीं किया जाता है । राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से इस प्रकार के उद्योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । इस प्रकार के उद्योगों में गोपनीयता की भी आवश्यकता होती हैं । निजी उद्यम लाभ की भावना से प्रेरित होकर गोपनीयता भंग कर सकते हैं । अत: ऐसे उद्योगों के लिए निजी क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है और सरकार को स्वयं ऐसे उद्योग लगाने होते हैं ।

(3) **विपुल पूँजी वाले उद्योग-** ऐसे अनेक उद्योग हैं जिनके लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है । ऐसे उद्योगों की स्थापना देश के लिए अति आवश्यक होती है । निजी क्षेत्र की ऐसे उद्योग में रुचि नहीं होती है । ऐसे उद्योगों में लोहा व इस्पात, भारी मशीन, वायुयान व जलयान, इलेक्ट्रोनिक उपकरण आदि उद्योग हैं । इन उद्योगों की स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में की जाती है, ताकि इनसे अन्य सहायक व पूरक उद्योगों का विकास, हो सके ।

(4) **विदेशी सहायता प्राप्ति-** कुछ समाजवादी देश विकासशील देशों को तब तक आर्थिक व तकनीकी सहायता देने के लिए तैयार नहीं होते हैं जब तक कि सहायता प्राप्त उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित न किये जायें । अत: ऐसे देशों से पूँजी व तकनीकी सहायता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सम्बन्धित उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किये जाये ।

(5) **तकनीकी विकास-** कुछ सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना से तकनीकी विकास को प्रोत्साहन मिला है । सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रम नयी-नयी तकनीक विकसित करने का प्रयास करते रहते हैं । सार्वजनिक उपक्रमों में अनुसंधान कार्यो पर विशेष ध्यान दिया जाता है । जबकि निजी उपक्रम यथास्थिति बनाये रखना चाहते हैं क्योंकि शोध कार्यो पर व्यय करना पड़ता है तथा इससे उनके लाभ कम हो जाते है । लेकिन भावी विकास की दृष्टि से शोध व अनुसन्धान आवश्यक है जो सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही किये जाते हैं । भारत में भी सार्वजनिक उपक्रमों में अनेक अनुसन्धान कार्य किये गये है ।

(6) **आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक-**, निजी क्षेत्र आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को बढ़ावा देते हैं । कुछ ही हाथों में आर्थिक सत्ता केन्द्रित होने से आर्थिक असमानता

बढ़ती है । इससे शोषण को जन्म मिलता हैं । जनता को उपयोग की वस्तुएँ सही व उचित मूल्य पर दिलाने तथा आर्थिक विषमता को कम करने के लिए इनका केन्द्रीकरण रोकना आवश्यक है । ऐसा तभी सम्भव है, जब सरकार इनका संचालन स्वयं करे तथा जनहित को ध्यान में रखते हुए उत्पादन करे ।

(7) **जनोपयोगी सेवाओं के लिए आवश्यक-** ऐसे उद्योगों के अन्तर्गत विद्युत उत्पादन एवं वितरण, परिवहन तथा संचार सम्बन्धी उद्योग सम्मिलित हैं । इन उद्योगों की स्थापना का उद्देश्य जनता को सस्ती कीमत पर सेवाएँ प्रदान करना हैं । ये लाभ प्राप्ति की भावना से संचालित नहीं किये जाते हैं । अत: इन उद्योगों का संचालन लोक उपक्रमों द्वारा जनहित की भावना से करना चाहिए ।

(8) **आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए-** आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है । देश का नियोजित व तीव्र गति से विकास निजी उपक्रमों के भरोसे छोड़ने पर सम्भव नहीं हो सकता है । यदि विकास हो भी जाये तो उसमें बहुत अधिक समय लग जायेगा, जब तक हम दूसरे देशों की तुलना में बहुत पिछड़ जायेंगे । अत: विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना आवश्यक है ।

(9) **सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक-** सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना से रोजगार की सुविधाएँ उपलब्ध करवायी जा सकती हैं । इन उपक्रमों में निजी उपक्रम की तरह शोषण नहीं किया जाता तथा काम के अनुसार अधिक वेतन, उत्तम काम की दशाएँ, गृह एवं चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा सकती हैं । इससे लोगों का सामाजिक व आर्थिक विकास होता है । उनका जीवन स्तर भी उन्नत होता है । सार्वजनिक उपक्रम एक आदर्श नियोक्ता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

(10) **उद्योगों को संतुलित व नियोजित विकास-** किसी भी देश का आर्थिक विकास तभी सम्भव होता है जब देश के प्राकृतिक व मानवीय साधनों का नियोजित व पूर्ण उपयोग हो । निजी उपक्रम प्राय: उन्हीं उद्योगों की स्थापना करते हैं, जिनमें उनको अधिक लाभ मिले । किन्तु एक ही प्रकार के उद्योग की स्थापना से देश का विकास सम्भव नहीं होता है । अत: लोक क्षेत्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सभी उद्योगों का सन्तुलित व नियोजित विकास करें ।

(11) **नीतियों के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक-** अपनी नीतियों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है कि सरकार स्वयं अधिक से अधिक आर्थिक क्रियाओं का संचालन करें । लोक उपक्रमों द्वारा प्राप्त लाभ को राष्ट्र के आर्थिक विकास में पुनर्विनियोजित करते समय, तकनीकी आधार सुदृढ़ करने, श्रमिकों को प्रबन्ध में हिस्सा दिलाने, मूल्य स्थिरीकरण की नीति लागू करने आदि को ध्यान में रखा जाता है । सार्वजनिक उपक्रमों में लाभ के स्थान पर सेवा को व शोषण के स्थान पर न्याय व औचित्य को महत्त्व दिया गया है ।

(12) **अर्थव्यवस्था पर प्रभावी नियन्त्रण-** सार्वजनिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा की ओर ले जाते हैं । यद्यपि सरकार राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, लाइसेंसिंग नीति, कम्पनी कानून तथा वैधानिक व्यवस्था आदि के द्वारा आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करती है, किन्तु वह नियन्त्रण लोक क्षेत्र के बिना प्रभावी नहीं होता है ।

(13) **निजी क्षेत्र की अकुशलता पर नियन्त्रण-** लोक उपक्रमों द्वारा ऐसी इकाइयों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है, जो लम्बे समय से कार्य करने में अक्षम हैं, तथा तकनीकी व आर्थिक दृष्टि से निर्बल हैं । ऐसा करने से उसमें कार्यरत कर्मचारी बेरोजगार होने से बचते हैं तथा समाज भी अकुशल उत्पादन से बच जाता है । लोक उपक्रमों द्वारा इन इकाइयों को अपने हाथ में ले लिया जाता है तथा स्वयं संचालित किया जाता है ।

(14) **सन्तुलित औद्योगिक विकास-** सन्तुलित औद्योगिक विकास के लिए लोक उपक्रमों की स्थापना आवश्यक है । यह देखने में आया है कि निजी उद्यमी ऐसे उद्योग ही स्थापित करते हैं जिनमें कम से कम पूँजी लगाकर अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सके एवं अल्पावधि में ही लाभ मिलने लग जाये । सामान्य रूप से ऐसी. स्थिति उपभोक्ता उद्योगों में पायी जाती है । उत्पादन उद्योग में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है एवं उनकी निर्माण अवधि अधिक होने से लाभांजन देरी से होता है । ऐसे उद्योग निजी क्षेत्र द्वारा स्थापित नहीं किये जाते हैं । लेकिन सन्तुलित औद्योगिक विकास के लिए इनकी स्थापना अति आवश्यक है । अत: सार्वजनिक क्षेत्र को ऐसे उद्योग स्थापित करने होते हैं । इन उद्योगों की स्थापना से देश में सभी प्रकार के उद्योग विकसित होने लगते हैं तथा सन्तुलित औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है एवं देश में उपलब्ध सभी साधनों का अनुकूलतम उपयोग करना सम्भव होता है ।

(15) **सन्तुलित क्षेत्रीय विकास-** यह देखने में आया है कि निजी उद्योगपति उन्हीं क्षेत्रों में उद्योग लगाते हैं, जहाँ औद्योगिक विकास की समस्त सुविधाएँ (सस्ती भूमि, सस्ता श्रम, कच्चा माल, बाजार, यातायात व शक्ति आदि) आसानी से उपलब्ध हों । पिछड़े व दूर-दराज के क्षेत्र में उनकी कोई रुचि नहीं होती है । इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से बहुत विकसित हो जाते हैं जबकि अन्य क्षेत्र पिछड़े हुए रह जाते हैं । एक तरफ अधिक उद्योगों की स्थापना से अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं तो दूसरी और पिछड़े क्षेत्र एकदम पिछड़ जाते हैं । अत: सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के लिए सरकार स्वयं ऐसे क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करती है जो अब तक औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं । इससे क्षेत्रीय विषमताओं में कमी आती हैं ।

8.6 लोक उपक्रमों की उपलब्धियाँ/कार्यकुशलता

लोक उपक्रमों की उपलब्धियां इस प्रकार रही हैं-

(1) **संख्या एवं विनियोग-** लोक उपक्रमों की संख्या एवं विनियोजित पूँजी में अत्यधिक वृद्धि हुई है । मार्च, 1951 में लोक उपक्रमों की संख्या 5 थी जो मार्च, 2007 में 244 (केन्द्र सरकार के उपक्रम) हो गयी । इनमें विनियोजित पूँजी 29 करोड़ रु. से बढ़कर 4210.89 अरब रु. तक पहुँच गयी । इस प्रकार पिछले 57 वर्षों में इनकी संख्या तथा विनियोजित पूँजी में पर्याप्त वृद्धि हुई है ।

(2) **उत्पादों का विक्रय मूल्य-** लोक उपक्रमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय मूल्य में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है । सन् 1977-78 में लोक उपक्रमों ने 11,087 करोड़ रु. मूल्य की वस्तुएँ तथा 6,933. करोड़ रु. मूल्य की सेवाओं का विक्रय किया । इस प्रकार कुल 18,020 करोड़ रु. की वस्तुओं व सेवाओं का विक्रय किया गया । वर्ष 1986-87 में लोक उपक्रमों द्वारा बिक्री की राशि बढ़कर 69,016 करोड़ रु. हो गयी है । वर्ष 1996-97 में लोक उपक्रमों द्वारा 2,53,371 करोड़ रु. का विक्रय किया गया । वर्ष 1999-2000 में इनके द्वारा 3,89,310 करोड़ रु. मूल्य की वस्तुओं एवं सेवाओं का विक्रय किया गया । 2001-02 में 4,78,732 करोड़ रु. व 2006-07 में 9,64,410 करोड़ रु मूल्य की वस्तुओं एवं सेवाओं का विक्रय किया गया ।

(3) **लाभ की स्थिति-** लोक उपक्रमों की लाभार्जन स्थिति में भी निरन्तर सुधार हो रहा है । 1980-81 में इनके द्वारा 19 करोड़ रु. का कर पूर्व लाभ अर्जित किया गया । इसके बाद के वर्षों में इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है । 2000-01 में करों से पूर्व लाभ 24.96 करोड़ रु. के थे । 1991-92 में कर घटाने के बाद शुद्ध लाभ 24 करोड़ रु. था जो 2000-01 में बढ़कर 157 अरब रु. हो गया । 2001- 02 इन्होंने 260 अरब रु. का एवं 2006-07 में 815.50 अरब रु. का शुद्ध लाभ अर्जित किया ।

(4) **सरकारी खजाने में योगदान-** लोक उपक्रमों द्वारा केन्द्र सरकार के कोष में दिये जाने वाले योगदान में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है । लोक उपक्रम लाभांश, निगम कर, उत्पादन शुल्क, कस्टम शुल्क व अन्य शुल्कों के रूप में केन्द्रीय राजकोष में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं । पाँचवीं योजना अवधि में इन उपक्रमों ने कुल 7,895 करोड़ रु. का योगदान दिया । छठी योजना अवधि में इन उपक्रमों ने राजकोष में 27,570 करोड़ का योगदान दिया । सातवीं योजना में सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा सरकारी कोष में 37,715 करोड़ रु. का योगदान दिया गया । 2000-01 के दौरान सार्वजनिक उपक्रमों का राजकोष में योगदान 48.768 करोड़ रु. रहा । 2001-02 में यह राशि62,866 करोड़ रु. थी जो 2006-07 में बढ़कर 1,47,635 करोड़ रु. हो गई ।

(5) **रोजगार-** यद्यपि रोजगार बढ़ाना ही लोक उपक्रमों का एक मात्र उद्देश्य नहीं है फिर भी लोक उपक्रमों ने रोजगार के अवसर बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । सन् 1989-70 लोक उपक्रमों में 613 लाख व्यक्ति कार्यरत थे जो मार्च, 1990 में बढ़कर 33.97 लाख हो गये । मार्च, 2000 को केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों में 32.73 लाख कर्मचारी कार्यरत थे । इसके साथ ही कर्मचारियों को दिये जाने वाले वेतन व भत्तों में

भी वृद्धि हुई है । 31 मार्च, 2007 को केन्द्र सरकार के उपक्रमों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 16.14 लाख थी ।

(6) **विदेशी मुद्रा अर्जन में सहयोग-** भारत के भुगतान सन्तुलन को सुधारने में? लोक उपक्रमों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । भारतीय लोक उपक्रम विदेशों में परम्परागत वस्तुएँ, गैर-परम्परागत वस्तुएँ एवं सेवाओं का निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहे है । 1992-93 में इन्होंने 10,338 करोड़ रु. मूल्य के निर्यात तथा 1998-97 में 163,59 करोड़ रु. मूल्य के निर्यात किये । लोक उपक्रमों द्वारा अर्जित विदेशी विनियम की राशि 2000-01 में 24,772 करोड़ रु. रही । 2001-02 में सार्वजनिक उपक्रमों ने 20,87 करोड़ रु. मूल्य की विदेशी मुद्रा अर्जित की तथा 2006-07 में 65,620 करोड़ रु. की विदेशी मुद्रा अर्जित की ।

(7) **आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर रोक-** लोक उपक्रम आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं । लोक उपक्रमों ने अनेक वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है। आज लोक उपक्रमों द्वारा इस्पात उत्पादन का आधे से अधिक, उर्वरक उत्पादन का एक तिहाई भाग, जिंक उत्पादन का 98%, कोयला उत्पाद का 9% से अधिक तथा पेट्रोलियम, लिग्नाइट; ताँबा व सीसे का सम्पूर्ण उत्पादन किया जा रहा है । इससे निजी क्षेत्र की एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगा है ।

(8) **सहायक उद्योगों का विकास-** लोक उपक्रमों ने आधारभूत उद्योगों की स्थापना के साथ ही कई सहायक उद्योगों का भी विकास किया है । एक ओर तो ये उद्योग रोजगार के अवसर दिलाते हैं, दूसरे ओर इनमें कम पूँजी व सामान्य प्रबन्ध कुशलता की आवश्यकता है । जैसे-जैसे लोक उपक्रमों की संख्या बढ़ी, वैसे-वैसे सहायक उद्योगों की संख्या भी बढ़ती गयी ।

(9) **आन्तरिक साधनों से प्राप्त राशि में वृद्धि-** लोक उपक्रमों ने गत वर्षों की तुलना में आन्तरिक साधनों से अधिक राशि जुटाई हैं । वर्ष 1976-77 में यह राशि 719 करोड़ रुपये थी, जो 1980-81 में बढ़कर 1,225 करोड़ रुपये तथा 1 986-87 में 6,014 करोड़ रुपये हो गयी । 2004-05 में इनके द्वारा 83,854 करोड़ रुपये के सकल आन्तरिक साधन जुटाये गये । 2004-05 में इन उपक्रमों द्वारा राजकीय कोष में औसत योगदान 48,210 करोड़ रु. रहा । 2006-07 में लोक उपक्रमों ने 815,50 अरब रु. का शुद्ध लाभ कमाया तथा सरकारी कोष में 1,47,635 करोड़ रु. का योगदान दिया ।

(10) **आत्मनिर्भरता में वृद्धि-** नियोजन से पूर्व सार्वजनिक उपक्रमों का कार्य क्षेत्र जनोपयोगी सेवाओं तक ही सीमित था । नियोजन के बाद से लोक उपक्रमों ने कई क्षेत्रों में अपने पाँव फैला लिए हैं । आज हम विदेशों को ऐसी वस्तुएँ निर्यात करने लगे हैं, जो पहले आयात करते थे । वर्तमान में सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा लोहा एवं इस्पात, तेल शोधन, होटल संचालन, मशीन टूल्स, परिवहन साधनों, रेलवे कोच, इलेक्ट्रॉनिक इन्स्ट्रूमेंट्स आदि उद्योग विकसित किये जा रहे हैं ।

सार्वजनिक उपक्रमों ने हर क्षेत्र में प्रगति की है । यह सब नियोजित विकास का ही परिणाम है। यदि सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा अपनी निर्धारित क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग किया जाये तो लाभ व उत्पादन में और भी अधिक वृद्धि हो सकती है । सार्वजनिक उपक्रमों ने आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण पर अंकुश लगाकर आर्थिक विषमता को कम किया है । सहायक व लघु उद्योगों का विकास कर रोजगार व श्रम कल्याण कार्यो को बढ़ावा दिया है ।

8.7 सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याएँ, आलोचनाएँ एवं दोष

लोक उपक्रमों में अनेक गुण एवं उपलब्धियाँ होने के बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये उपक्रम एकदम दोष मुक्त हैं । इन उपक्रमों की अनेक समस्याएँ है । इनके आधार पर ही इनकी आलोचनाएँ की जाती है । वर्तमान में तो सरकार ने इनके निजीकरण की ओर कदम बढ़ा दिया है । इन उपक्रमों की प्रमुख समस्याएँ एवं दोष निम्नलिखित हैं-

(1) **अकुशल प्रबन्ध-**सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबन्धकर्ता प्राय: प्रशासनिक अधिकारी होते हैं, जो सम्बन्धित क्षेत्र के विशेषज्ञ नहीं होते हैं । समय पर निर्णय न लेने से कार्य में सर्वदा विलम्ब होता है । दूसरी ओर निजी उपक्रमों के प्रबन्धकर्त्ता सम्बन्धित क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं, फलस्वरूप कार्य समय पर किया जाता हैं । इसके अतिरिक्त निजी उपक्रम 'व्यक्तिगत लाभ' के आधार पर चलाये जाते हैं, इनमें साधनों का पूरा व सही उपयोग किया जाता है । सार्वजनिक उपक्रम के संचालन में दोष के लिए एक विशेष व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होता । इस प्रकार कुशल व अनुभवी प्रबन्धकर्त्ताओं के अभाव में ये उपक्रम निजी उपक्रमों जितनी कुशलता से कार्य नहीं कर पाते हैं ।

(2) **कार्यकुशलता का अभाव-** लोक उपक्रम प्राय: व्यावसायिक सिद्धान्तों के आधार पर संचालित नहीं किये जाते हैं, जबकि निजी उपक्रम व्यावसायिक व शीघ्र लाभ के सिद्धान्त' के आधार पर संचालित होते है । इसलिए निजी उद्यमी अपने उपक्रमों को सार्वजनिक उपक्रमों की तुलना में अधिक कुशल बनाने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार की तकनीक व विधियाँ अपनाते हैं जिससे लागत कम आये और उत्पादन अधिक हो । निजी उपक्रमों की एक धारणा यह भी है कि वह उच्च कोटि की कुशलता व उत्कृष्ट के आधार पर ही प्रतिस्पर्धी बाजार में टिक सकता है । दूसरी और लोक उपक्रमों में लाभ पक्ष गौण रहने व खुली प्रतिस्पर्धा न होने के कारण कुशलता का अभाव पाया जाता है ।

(3) **निर्णय में विलम्ब-** सार्वजनिक क्षेत्र में प्राय: निर्णय लेने में विलम्ब पाया जाता है । जबकि निजी क्षेत्र में निर्णय शीघ्र व समय पर लिए जाते हैं क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में किसी विशेष व्यक्ति का व्यक्तिगत नुकसान नहीं होता, वरन् विलम्ब से होने वाली हानि सार्वजनिक हानि होती हैं । सार्वजनिक क्षेत्र की इस कमी के कारण ये उद्योग घाटे में चलते हैं ।

(4) **नव-प्रवर्तन का अभाव-** सरकारी. क्षेत्र में नव प्रवर्तन का अभाव पाया जाता है, जबकि आर्थिक विकास के लिए नव-प्रवर्तन आवश्यक है । निजी क्षेत्र में नई तकनीक, नयी उत्पादन विधियों, नवीन आविष्कारों की सम्भावनाएँ रहती हैं । ये जानते हैं कि वे

जितने अधिक प्रयास करेंगे, उतना ही अधिक लाभ कमायेंगे व प्रगति कर सकेंगे । दूसरी ओर लोक उपक्रमों में नवीन आविष्कारों की सम्भावनाएँ क्षीण होती हैं । क्योंकि इनके कर्मचारी सरकारी होते हैं, जहाँ उनको नौकरी की सुरक्षा प्राप्त होती है ।

(5) **सरकारी हस्तक्षेप-** सार्वजनिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप की तलवार सदैव लटकी रहती है । कोई भी छोटे से छोटा निर्णय लेना हो तो उसको भी कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, इससे समय भी अधिक लगता है व मौका भी हाथ से निकल जाता है । यद्यपि सरकारी हस्तक्षेप को स्वाशासित निगमों की स्थापना करके कम करने का प्रयास किया गया है ।

(6) **लगातार घाटे की समस्या-** सार्वजनिक क्षेत्र अपनी पूँजी का विनियोग प्राय: ऐसे उद्योगों में करते हैं, जिनकी निर्माण अवधि लम्बी होती हैं । इससे समाज के प्राकृतिक व मानवीय साधनों का पूरा व सही उपयोग नहीं हो पाता हैं । इन उपक्रमों के प्रशासक कुशल, अनुभवी व साहसी नहीं होते, जिससे इन उपक्रमों को हानि उठानी पड़ती है । जनोपयोगी सेवाएँ व आधारभूत सेवाएँ इन उद्योगों की बदोलत हैं । इस प्रकार हमारे देश में सार्वजनिक उपक्रमों के विकास के साथ ही निजी उपक्रमों का विकास भी आवश्यक है ।

(7) **राजनैतिक हस्तक्षेप-** सामान्यतया लोक उपक्रम राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बनकर रह गये हैं । इन उपक्रमों के माध्यम से सत्तारूढ़ राजनैतिक दल दलगत स्वार्थों की पूर्ति करने में लगे रहते हैं । सामान्य रूप से यह देखने में आया है कि सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना के लिए स्थान का चयन करते समय राजनैतिक हितों को ध्यान में रखा जाता हैं तथा आर्थिक दृष्टिकोण को नजर अन्दाज कर दिया जाता है । इन उपक्रमों के संचालक मण्डल में राजनेताओं को मनोनीत- किया जाता है, जो निर्णय लेते समय राजनैतिक दृष्टिकोण को ही ध्यान में रखते है।

(8) **नौकरशाही-** लोक उपक्रम निजी एकाधिकार को समाप्त करते है तथा सरकारी एकाधिकारी की स्थापना करते हैं । निजी उपक्रमों पर अंकुश रखने के लिए तो सरकार होती हैं । लेकिन सरकारी उपक्रमों पर अंकुश रखने के लिए कोई संस्था नहीं होती । इससे जनता के हितों पर कुठाराघात होता है । नौकरशाही व अधिनायकवाद पनपता है।

(9) **श्रम सम्बन्धों की समस्या-** इन उपक्रमों की स्थापना के समय यह आशा की गयी थी कि ये आदर्श सेवा-नियोजक की भूमि निभायेंगे तथा श्रमिकों व नियोक्ता के सम्बन्ध भी मधुर बनेंगे । दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ इन उपक्रमों में हड़ताल, तोड़-फोड़, घेराव आदि की समस्या निरन्तर बनी हुई है ।

(10) **स्थापित क्षमता से कम उपयोग की समस्या-** हमारे देश में लोक उपक्रमों में स्थापित क्षमता से भी कम पर उत्पादन हो रहा है । इससे उत्पादन लागतें अधिक आती हैं तथा निर्मित माल निजी उपक्रमों की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाता हैं । इसके कुछ कारण हैं जैसे-श्रमिक अशान्ति, अकुशल प्रबन्ध, कच्चे माल की कठिनाई, विद्युत व कोयले का अभाव तथा यातायात की समस्या आदि ।

(11) **मितव्ययता का अभाव-** राजनैतिक हस्तक्षेप, अधिकारियों की लापरवाही व सरकारी नियन्त्रण व निहित स्वार्थों के कारण अपव्यय बड़ी मात्रा में होता है । किसी का व्यक्तिगत नुकसान न होने के कारण फिजूलखर्ची पर कोई अंकुश नहीं लगाया जाता व मनमाने तरीके से इनका आर्थिक शोषण किया जाता हैं ।

(12) **प्रेरणा का अभाव-** लोक क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा का अभाव रहता है । समस्त कर्मचारियों को निश्चित वेतन व भत्ते प्राप्त होते हैं । प्रोत्साहन व अभिप्रेरणा के अभाव में पहल की क्षमता कमजोर पड़ जाती है ।

(13) **नियन्त्रण व स्वायत्तता की समस्या-** इन उपक्रमों में जनता की पूँजी लगी हुई है । अत: जनता के धन का दुरूपयोग रोकने के लिए इन पर संसद व मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण रखना आवश्यक है । जिससे ये उपक्रम कुशलता, मितव्ययता व स्वप्रेरणा के साथ कार्य कर सकें । दूसरी ओर लोक उपक्रमों को उनकी कार्य प्रणाली में स्वायत्तता देना भी आवश्यक है,. जिससे ये उपक्रम कुशलता, मितव्ययता व स्वप्रेरणा से कार्य कर सकें ।

(14) **मूल्य निर्धारण की समस्या-** लोक उपक्रमों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है वरन् सामाजिक हित ही इनका ध्येय हैं । अत: लोक उपक्रम द्वारा 'न लाभ न हानि' का सिद्धान्त अपनाने से इन उपक्रमों की उपयोगिता बनी रह सकती हैं । यदि लोक उपक्रम लागत से भी कम मूल्य रखते हैं तो नुकसान उठाना पड़ता है, और लागत से अधिक रखते हैं तो निर्धारित लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता ।

(15) **प्रबन्धकीय संरचना की समस्या-** लोक उपक्रमों के लिए किस प्रबन्ध व्यवस्था को अपनाया जाये यह एक जटिल समस्या है । यह सर्वविदित है कि प्रत्येक उपक्रम की सफलता उसके संचालक मण्डल की योग्यता पर निर्भर करती हैं क्योंकि महत्त्वपूर्ण निर्णय संचालक मण्डल द्वारा ही लिए जाते हैं । अत: संचालक मण्डल का स्वरूप निर्धारण एक महत्त्वपूर्ण समस्या है ।

(16) **अंकेक्षण-मूल्यांकन की समस्या-** अंकेक्षण के माध्यम से यह पता लगाया जा सकता है कि लोक उपक्रमों द्वारा सार्वजनिक कोषों का उचित उपयोग हो रहा है या नहीं । किन्तु सरकारी विभागों के अंकेक्षक इस कार्य में इतने दक्ष नहीं होते तथा वे सरकारी विभागों के अंकेक्षण कार्य के बोझ से ही दबे रहते हैं । दूसरी ओर सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारी इन्हें पूरा सहयोग नहीं देते हैं ।

(17) **उपभोक्ता हितों की सुरक्षा की समस्या-** आज अनेक उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन व समाजोपयोगी सेवायें लोक क्षेत्र द्वारा संचालित की जा रही हैं । लोक क्षेत्र का उपभोक्ताओं के प्रति यह दायित्व है कि उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की वस्तुएँ, पर्याप्त मात्रा में, उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाये । अधिकांश लोक उपक्रम कम क्षमता पर काम करते हैं तथा हानि पर चलते हैं । इसका सारा भार सामान्य उपभोक्ताओं को उठाना पड़ता है । कई बार तो यह लगता है कि लोक उपक्रम निजी उपक्रमों से भी अधिक शोषण करते हैं । इनकी सेवाओं का तो कोई स्तर ही नहीं रह गया है ।

8.8 भारत में लोक उपक्रमों में विनिवेश

सन् 1991 की औद्योगिक नीति में सरकार ने प्रथम बार लोक उपक्रमों के कुछ अंश साझा कोषों (Mutual Funds), वित्तीय संस्थाओं, कर्मचारियों एवं जनता को बेचने की बात कही । 1991-92 में चन्द्रशेखर सरकार ने कुछ चुने हुए लोक उपक्रमों की 20% सरकारी अंशधारित। साझा कोष, वित्तीय एवं विनियोग संस्थाओं तथा जनता को बेचने की नीति घोषित की थी । इस नीति का उद्देश्य लोक उपक्रमों के अंश आधार का व्यापक बनाना, प्रबन्ध में सुधार करना, साधनों की उपलब्धता को बढ़ाना, तथा इनकी लाभोजन क्षमता में वृद्धि करना था । 1992 में सरकार नेडॉ. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में लोक-उपक्रमों में अपनिवेश के लिए एक समिति का गठन किया । समिति का सुझाव था कि लोक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में सरकारी अशंधारिता का 49% तक अपनिवेश किया जाना चाहिए । व्यूहरचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपक्रमों में सरकारी अंशधारियों को 26% तक रखा जाये अर्थात् 74%? अपनिवेश किया जाए । कोयले व लिग्नाईट, खनिज तेल, अस्त्र-शस्त्र, रक्षा उपकरण, अणुशक्ति तथा रेलवे तथा रेडियो एक्टिव खनिजों आदि 6 प्रकार के उपक्रमों में सरकार की अंशधारिता 51%? या अधिक हो सकती है ।

विनिवेश आयोग (Disinvestment Commission)

सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी अंशधारिता के अपनिवेश हेतु विस्तृत नीति निर्धारण के लिए अगस्त1996 मे सरकार ने योजना आयोग के पूर्व सदस्य जी.वी. रामकृष्ण की अध्यक्षता में एक पाँच सदस्यीय आयोग का गठन किया । आयोग के सुझावों को ध्यान में रखकर अनेक लोक उपक्रमों का विनिवेश किया गया । 1998 में आयोग व सरकार के बीच टकराव होने के कारण आयोग का कार्य तथा अपनिवेश कार्य ठप्प हो गया । सरकार ने 10 दिसम्बर, 1999 को एक स्वतन्त्र अपनिवेश विभाग की स्थापना की । 1999-2000 में सरकार ने प्रमुख लोक उपक्रमों (Strategic PSUs) को सुदृढ़ करने एवं गैर-व्यूहरचनागत (Non-strategic PSUs) उपक्रमों का निजीकरण करने की नीति अपनायी । इस नीति में सर्वप्रथम लोक उपक्रमों के निजीकरण की बात कही गई । 1991-92 से मार्च, 2006 के मध्य लोक उपक्रमों के अपनिवेश से कुल 49,241.29 करोड़ रूपये प्राप्त हुए ।

8.9 सारांश

सार्वजनिक उपक्रम वे उपक्रम होते हैं जिनका स्वामित्व, प्रबन्ध एवं संचालन सरकार द्वारा किया जाता है । ये उपक्रम जनहित को ध्यान रखकर संचालित किये जाते हैं । भारत में प्राचीनकाल से ही राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण किया जाता रहा है । ब्रिटिश शासन ने भी अपने हितों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की थी । योजना काल में समाजवादी समाज की स्थापना, तीव्र आर्थिक विकास,आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने एवं सस्ती सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया। 1991 की उदार औद्योगिक नीति के बाद सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण एवं

विनिवेश की नीति को अपनाया गया । भारत में आज भी सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व मे कमी नही आयी है ।

सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना के प्रमुख उद्देश्यों में तीव्र आर्थिक विकास, आधारभूत व अधिक विनियोग वाले उपक्रमों की स्थापना, सुरक्षा व जोखिम उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर रोक, सरकारी आय,स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास, रोजगार वृद्धि, तकनीकी विकास, शोध कार्यों को बढ़ावा आदि रहे हैं । सरकार ने अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को श्रेष्ठ माध्यम माना है । भारत में योजना काल में सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या, विनियोजित पूँजी, रोजगार व सरकारी खजाने में योगदान आदि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है । किन्तु इनकी प्रबन्ध व्यवस्था में गड़बड़ी, प्रेरणा का अभाव, पेशेवर प्रबन्धक की कमी, प्रतिस्पर्धा, नियंत्रण व स्वायत्तता के समन्वय आदि की समस्याओं के कारण सार्वजनिक उपक्रम जनता के धन के दुरूपयोग का माध्यम बन गये हैं । अत: इनमें सुधार की बहुत आवश्यकता अनुभव की जा रही है ।

8.10 शब्दावली पारिभाषित शब्द

- **लोक उपक्रम :** सरकार के स्वामित्व एवं प्रबन्धक के अन्तर्गत संचालित आर्थिक गतिविधियों वाले संस्थान लोक उपक्रम कहलाते हैं ।
- **सरकारी स्वामित्व :** जिन उपक्रमों पर केन्द्र सरकार, राज्य सरकार अथवा केन्द्र व राज्य सरकार का संयुक्त स्वामित्व हो तो उसे सरकारी स्वामित्व कहा जाता है ।
- **समाजवादी व्यवस्था :** जिस व्यवस्था में सभी निर्णय समाज द्वारा अथवा समाज द्वारा नियुक्त व चुनी हुई सरकार द्वारा लिये जाते हैं तथा जो समाज के हित के उद्देश्य से कार्य करती है, समाजवादी व्यवस्था कहलाती है ।
- **आधारभूत उद्योग :** ऐसे उद्योग जो देश के औद्योगिक विकास के लिए आधार का काम करते हैं अर्थात इनके बिना देश का औद्योगिक विकास सम्भव नही होता है, आधारभूत उद्योग कहलाते हैं, जैसे लोहा इस्पात, सीमेन्ट, तेलशोधन, इन्जीनियरिंग, भारीमशीन यातायात के साधन आदि ।
- **आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण :** जब आय व सम्पत्ति के अधिकाँश भाग पर कुछ ही वर्गो या व्यक्तियों का एकाधिकार हो जाता है तथा शेष जनता के पास आय व सम्पत्ति का बहुत थोड़ा भाग रह जाता है तो इसे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण कहते हैं ।
- **विनिवेश :** जब सार्वजनिक उपक्रमों की अंशपूँजी का कुछ भाग जनता या वित्तीय संस्थाओं को बेच दिया जाता है तो उसे सार्वजनिक उपक्रमों का विनिवेश कहते हैं।
- **निजीकरण :** जब सार्वजनिक उपक्रमों की अधिकांश अंशपूँजी निजी उपक्रमों को बेच दी जाती है तो उसे सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण कहते हैं । इसमें उपक्रमों पर सार्वजनिक स्वामित्व के स्थान पर निजी स्वामित्व हो जाता है ।

8.11 स्वपरख प्रश्न

1. सार्वजनिक क्षेत्र को परिभाषित कीजिये ।
2. श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किन तीन महत्त्वपूर्ण कारणों के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र का समर्थन किया?
3. चार आधारभूत उद्योगों के नाम लिखिए ।
4. लोक उपक्रम के उद्देश्य लिखिये ।
5. लोक उपक्रम की कोई पाँच विशेषतायें बताइये ।
6. सार्वजनिक क्षेत्र के पक्ष में कोई पाँच तर्क दीजिये ।
7. सार्वजनिक क्षेत्र की कोई चार प्रमुख समस्यायें बताइये ।
8. सार्वजनिक उपक्रमों की प्रमुख चुनौतियाँ लिखिए ।
9. "भारत में लोक उपक्रम विशाल एवं विस्तृत है ।" व्याख्या कीजिए ।
10. भारत के आर्थिक विकास में लोक उपक्रमों के योगदान का उल्लेख कीजिए ।
11. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में लोक उद्योगों के योगदान का वर्णन कीजिए ।
12. "यह एक तथ्य है कि भारत में अधिकांश लोक उपक्रम उतनी कुशलता एवं लाभदेयता से नहीं चल रहे हैं जितने कि उनके प्रतिपक्षी निजी उद्योग ।" इनके कारणों का विश्लेषण कीजिए तथा सुझाव दीजिए ।
13. भारत में लोक उपक्रमों की प्रमुख समस्याओं का परीक्षण कीजिए । इन समस्याओं के समाधान के लिए अपने सुझाव दीजिए ।
14. भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

8.12 उपयोगी पुस्तकें/संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत में लोक उपक्रम - बी.पी.गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त एवं सुन्दरम्, एस. चाँद, दिल्ली ।
3. भारत में आर्थिक पर्यावरण - स्वामी एवं गुप्ता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था - नाथूरामका, सी.बी.एच. जयपुर ।
5. भारत, 2008.
6. आर्थिक समीक्षा, 2007-08
7. वार्षिक प्रतिवेदन, ब्यूरो ऑफ पब्लिक एन्टरपराईजेज, भावी उद्योग मंत्रालय, दिल्ली ।

इकाई-9: भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण (Liberalisation of Indian Economy)

इकाई की रूपरेखा :

9.1 प्रस्तावना

9.2 आर्थिक उदारीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

9.3 उदारीकरण के उद्देश्य

9.4 उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की आवश्यकता अथवा महत्त्व

9.5 इतिहास एवं विकास

9.6 उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का कृषि विकास पर प्रभाव

9.7 उदारीकरण (सुधारों) का औद्योगिक विकास पर प्रभाव

9.8 उदारीकरण (सुधारों) का व्यापार विकास पर प्रभाव

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 स्व-परख प्रश्न

9.12 उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

नियोजन काल के प्रारम्भिक वर्षों को छोड़कर उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) से पूर्व भारत में औद्योगिक उत्पादन की दर आशा के अनुरुप नहीं रही । सबसे दुखद बात तो यह थी कि विश्व अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन-दोनों ही दृष्टियों से भारत विश्व के अनेक देशों से पीछे था । वास्तव में, विकासशील देशों के औद्योगिक राष्ट्रों में भी हमारा देश निचली श्रेणी में आता था । अनेक विद्वानों ने औद्योगिक विकास की धीमी गति, मुद्रा स्फीति, बढ़ती बेरोजगारी, देश में आवश्यक वस्तुओं की कमी इत्यादि समस्याओं के लिए भारत सरकार द्वारा अस्सी के दशक की शुरुआत तक अपनायी गई कठोर नियंत्रण प्रधान औद्योगिक नीतियों को जिम्मेदार ठहराया । अत: उद्योगपतियों, व्यावसायियों तथा अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा औद्योगिक नीति में उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की माँग की जाने लगी । स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी द्वारा सत्ता सम्भालने के बाद उदारीकरण (Liberalisation) की मांग अधिक प्रभावी तरीके से की गई । परिणामस्वरूप स्वर्गीय श्री राजीव गाँधी की सरकार ने कठोर औद्योगिक नीति में अनेक परिवर्तन करके नियंत्रणों को ढीला किया । अस्सी के दशक के मध्य से भारत की औद्योगिक नीति में उदारीकरण की जो प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई, वह वर्तमान समय तक निर्बाध रूप से जारी है ।

9.2 आर्थिक उदारीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का तात्पर्य ऐसे नियंत्रण में ढील देना या उन्हें हटा देना है, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले । उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) में वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा किसी देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करने वाली आर्थिक नीतियों, नियमों, प्रशासकीय नियंत्रणों, प्रक्रियाओं आदि को समाप्त किया जाता है या उनमें ढील दी जाती है । इसमें आर्थिक विकास में सहायक क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाता है ।

प्रो. मधु दण्डवते के अनुसार, ' 'आर्थिक उदारीकरण से आशय उन प्रयासों से है जिनके द्वारा आर्थिक व्यवस्था को उसकी लोचहीनताओं तथा नौकरशाही के उन स्वेच्छाचारी नियंत्रणों एवं प्रक्रियाओं से मुक्ति प्रदान की जाती है, जो विलम्ब, भ्रष्टाचार एवं अकुशलता को जन्म देती है तथा उत्पादन को घटाती है ।"

हर्षमैन (Hirschman) के अनुसार, "आर्थिक उदारीकरण सक्रिय परिवर्तनों का समूह है जिसमें सामान्यत: निम्नांकित प्रक्रियाएँ शामिल है: -

(i) दबे या पिछड़े घरेलू क्षेत्र को नियंत्रण मुक्त करना,

(ii) घरेलू बाजार तथा नीतियों को अन्तर्राष्ट्रीय दिशा देना, तथा

(iii) लोकहित की नवीन अवधारणा को साकार करने के लिए कुछ क्रियाओंएवं क्षेत्रों पर पुन: नियंत्रण करना ।"

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक उदारीकरण (सुधारों) से आशय उन प्रयासों से है जिनके द्वारा किसी देश की आर्थिक नीतियों, सन्नियमों एवं नियमों तथा प्रशासकीय नियंत्रणों एवं प्रक्रियाओं को देश के तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाता है, ताकि देश की अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय दिशा प्रदान कर उसे विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा के योग्य बनाया जा सके ।

9.3 उदारीकरण के उद्देश्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने आर्थिक नियोजन को अपनाया । इसका उद्देश्य देश का तेजी से आर्थिक विकास करना था । योजनाकाल में कृषि व औद्योगिक विकास, गरीबी निवारण, रोजगार वृद्धि, आर्थिक विषमताओं में कमी, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आदि उद्देश्य रखे गये । यद्यपि विभिन्न योजनाओं के उद्देश्यों में प्राथमिकताओं के अनुसार परिवर्तन किये गये किन्तु उपरोक्त वर्णित उद्देश्य तो सभी योजनाओं में समान रूप से शामिल किये गये । नियोजन की सफलता के लिए सरकार ने नियंत्रित व नियमित व्यवस्था की नीति को अपनाया । सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया गया एवं निजी क्षेत्र पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये । किन्तु 1990 के आस-पास यह अनुभव किया जाने लगा कि नियंत्रणों की अधिकता एवं सरकारी हस्तक्षेप के कारण अर्थव्यवस्था का वांछित विकास नहीं हो पा रहा है । नियोजित अर्थव्यवस्था में अनेक दोष जैसे नौकरशाही एवं भ्रष्टाचार, सार्वजनिक उपक्रमों का अकुशल प्रबन्ध व बढ़ता घाटा, सरकारी हस्तक्षेप, लक्ष्यों व उपलब्धियों में भारी अन्तर, जन सहयोग की कमी, निजी पूँजी व संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं, आर्थिक विषमता में वृद्धि, गरीबी व बेरोजगारी की समस्या,

तकनीकी विकास का अभाव, स्वप्रेरणा की कमी, निर्णय में विलम्ब, साधनों का अपूर्ण उपयोग आदि उत्पन्न हो गये । फलस्वरूप 1991 की औद्योगिक नीति से ही उदारीकरण को बढ़ावा दिया गया । आर्थिक उदारीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:-

(1) **जनता के जीवन स्तर में सुधार :-** उदारीकरण का प्रमुख उद्देश्य गरीबी व बेरोजगारी कम कर सामान्य जनता को जीवन स्तर का उन्नत करना था । इसीलिए उदारीकरण के बाद शिक्षा,चिकित्सा, आवास, स्वच्छ पेयजल आदि सुविधाओं के विस्तार पर बल दिया गया ।

(2) **साधनों का पूर्ण उपयोग :-** उदारीकरण का एक उद्देश्य यह भी है कि देश में निजी क्षेत्र के पास उपलब्ध संसाधनों का देश के आर्थिक विकास में उपयोग किया जाये । इसके लिए निजी क्षेत्र को छूट व प्रोत्साहन देने की नीति अपनायी गई ।

(3) **विकास में बाधक तत्वों को दूर करना :-** नियंत्रित अर्थव्यवस्था में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है जो किसी न किसी रूप में आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है । उदारीकरण का एक उद्देश्य देश के आर्थिक विकास में बाधक संरक्षणात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक नीतियों को समाप्त कर उन्हें विकास के अनुकूल बनाना था ।

(4) **भ्रष्टाचार को समाप्त करना :-** नियंत्रित अर्थव्यवस्था में नौकरशाही व लाल फीताशाही की प्रवृत्तियों के कारण भ्रष्टाचार बढ़ा । लाइसेंस व कोटा राज, इन्सपेक्टर व्यवस्था ने विकास की गति को ही रोक दिया था । अत: उदारीकरण द्वारा लाइसेंस व कोटा राज को समाप्त किया गया ताकि भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सके ।

(5) **विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित करना :-** भारत सदैव ही पूँजी की कमी की समस्या से जुझता रहा है । इसके कारण विकास में बाधा आती रही है । उदारीकरण का एक उद्देश्य निजी एवं विदेशी पूँजी के निवेश को बढ़ाकर देश में पूँजी की कमी को दूर करना था । उदारीकरण के बाद निजी एवं विदेशी निवेश में भारी वृद्धि हुई है ।

(6) **जन सहयोग प्राप्त करना :-** उदारीकरण की नीति का एक उद्देश्य जनता को विकास प्रक्रिया में जोड़ना भी है । यह तभी सम्भव है जब हम सरकारी हस्तक्षेप को न्यूनतम रखें और जन सामान्य को स्वेच्छानुसार कार्य करने की छूट दें ।

(7) **रोजगार व आय में वृद्धि करना :-** उदारीकरण से निजी एवं विदेशी पूँजी प्रवाह में वृद्धि हुई है । इससे रोजगार के अवसरों में भारी वृद्धि हुई है । रोजगार में वृद्धि के साथ आय में भी वृद्धि हुई है ।

(8) **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास :-** उदारीकरण का एक उद्देश्य निजी एवं सामाजिक क्षेत्र में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास करना है ताकि दोनों क्षेत्र कुशलतापूर्वक काम कर लागतों में कमी करें और सामान्य जनता को सस्ती सुविधायें उपलब्ध करा सकें ।

(9) **सस्ती तथा श्रेष्ठ वस्तुओं की उपलब्धता :-** उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की नीति के परिणामस्वरूप वहीं उत्पादक बाजार में अस्तित्व बनाये रख सकेगें जो सस्ती तथा श्रेष्ठ वस्तुओं का उत्पादन करने में सक्षम होगे ।

(10) **अनावश्यक एवं कठोर नीतियों व नियमों को हटाना :-** तीव्र आर्थिक विकास किसी देश को प्रथम आवश्यकता है । इसके लिए आर्थिक नियम एवं नीतियाँ बनायी जाती है ।

जब कभी ये नियम, नीतियाँ, नियन्त्रण एवं सन्नियम इतने अधिक कठोर हो जाते है कि वे आर्थिक विकास में सहायक होने के बजाय बाधक हो जाते है तो इनको हटाना आवश्यक हो जाता है । इसके लिए आर्थिक उदारीकरण आवश्यक होता है ताकि विकास में बाधक तत्वों को हटाया जा सके या उनमें ढील दी जा सके ।

(11) **अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण :-** आर्थिक सुधारों (उदारीकरण) को अपना कर देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था से जोड़ा जा सकता है । इससे देश की अर्थव्यवस्था विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा के योग्य बन जाती है । इस प्रकार उदारीकरण द्वारा देश की अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीकरण होता है ।

(12) **जीवन स्तर में सुधार :-** भूमण्डलीकरण एवं प्रतिबन्धों की समाप्ति से जनता को अच्छी एवं सस्ती वस्तुएँ मिलने लगती हैं । बाजार का क्षेत्र बढ़ने से आय व रोजगार में भी वृद्धि होती है । इससे लोगों के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार होने लगते है ।

9.4 उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की आवश्यकता अथवा महत्त्व

भारत में औद्योगिक विकास हेतु उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की नीति अपनाने के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिये जा सकते हैं-

(1) **तीव्र औद्योगिक विकास (Rapid Industrial Development)-** भारत के पास वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति सहित अर्थव्यवस्था में अब पर्याप्त बुनियादी ढांचा उपलब्ध है । इसलिए यदि उन्मुक्त रूप से निजी पहल और उद्यम को बढ़ावा दिया जाये तो औद्योगिक विकास में तीव्र गति से वृद्धि होने लगेगी ।

(2) **संसाधनों की बर्बादी पर रोक (Check on Westage of Resources)-** योजनाओं से जो निवेश की प्रवृत्ति उभरी है उसने निवेश की प्रणाली और अर्थव्यवस्था की माँग के ढाँचे में सही तालमेल कायम नहीं किया है । फलस्वरूप कुछ उद्योगों में क्षमता मन्द पड़ गई है और जब तक हम उन्हें और अत्यधिक मुक्त भाव से बाजार उपलब्ध नहीं करायेंगे तब तक इस प्रकार के कुप्रबन्ध में संसाधनों की बर्बादी बनी रहेगी ।

(3) **प्रतिस्पर्द्धात्मक औद्योगिक वातावरण (Competitive Industrial Environment) -** विनियमन और नियंत्रण ने फर्मों के प्रवेश तथा निर्गमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया है । इसकी वजह से देश में कम प्रतियोगी औद्योगिक वातावरण बन पाया है । अत: उदारीकरण की नीति से प्रतिस्पर्द्धात्मक औद्योगिक वातावरण बन सकेगा ।

(4) **विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to Foreign Investment)-** औद्योगिक क्षेत्र को उदार बनाये जाने से देश में और अधिक मात्रा में विदेशी साधनों के निवेश की प्रेरणा मिलेगी ।

(5) **रोजगार में वृद्धि (Increase in Employment)-** उदारीकरण (सुधारों) की प्रवृत्ति से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी तथा बढ़ती हुई बेरोजगारी पर काबू पाया जा सकेगा । तीव्र औद्योगिक विकास के फलस्वरूप आय व रोजगार में भी वृद्धि होती है ।

(6) **मुद्रा-प्रसार पर नियंत्रण (Check on Inflation)-** उदारीकरण (सुधारों) के फलस्वरूप देश में औद्योगिक, पूँजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होगी जिससे मुद्रा प्रसार पर नियंत्रण करने में मदद मिलेगी ।

9.5 इतिहास एवं विकास

चरमराती अर्थव्यवस्था को दुरूस्त करने के लिए आठवें दशक के मध्य में भारत सरकार औद्योगिक विकास पर लगे प्रतिबन्धों को एक-एक करके उठाने लगी । उत्पादन और वितरण पर नियंत्रण ढीले किये गये । हर चीज के लिए अलग-अलग लाइसेन्स देने की प्रणाली उदार की गई । आयातों को आसान बनाया गया और यहाँ तक कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी स्वायत्तता से ताजगी महसूस की जाने लगी । इन सबके परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास की गति सहसा तेज हो गयी तथा अर्थव्यवस्था और पूँजी बाजार फलने फूलने लगे । लेकिन सन् 1991 में आकर सरकार का बजट घाटा भयावह रूप से सामने आया । देश का विदेशी मुद्रा भण्डार इस तेजी से घट गया कि सरकार आरक्षित स्वर्ण भण्डार में-से कुछ सोना बेचने को मजबूर हो गई । मुद्रा-स्फीति दोहरे अंकों को छूने लगी ।

विकास मॉडल की असफलता :- भारत ने आर्थिक विकास का जो नेहरू महलनबीस मॉडल अपनाया था, वह असफल रहा । इसने न तो देश में समाजवाद आने दिया और न ही पूँजीवाद को पनपने दिया। आर्थिक विषमता बढ़ी । आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीकरण को लाइसेन्स-राज रोक नहीं सका । हां, इससे औद्योगिक उत्पादन अवश्य प्रभावित हुआ । क्षेत्रीय विषमता बढ़ी । बेरोजगारी बढ़ी । सबसे हास्यास्पद तो यह हुआ कि योजना प्रक्रिया तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सबसे अधिक लाभ उसी निजी क्षेत्र को पहुँचा, जिस पर अंकुश लगाकर सरकार अपने घोषित सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का सपना देख रही थी ।

नियंत्रणों की असफलता :- ऐसी मान्यता है कि बाजार की शक्तियों पर नियन्त्रण नहीं रखा जाए तो आर्थिक विषमताएँ बढ़ती हैं । परन्तु भारतीय अनुभव कहता है कि सरकारी नियंत्रणों ने बाजार की शक्तियों को और भी बर्बर बनाया । नियन्त्रण सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन बने, इसके लिए यह आवश्यक है कि नियन्त्रण की मशीनरी अर्थात् प्रशासन सक्षम तथा मजबूत हो और भ्रष्ट नहीं हो । पर ऐसा हो नहीं पाया । प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और अक्षमता ने आर्थिक प्रबन्ध का काम कठिन कर दिया ।

इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक हो गया था कि आर्थिक गतिविधियों में सरकार हस्तक्षेप कम करे तथा बाजार की शक्तियों से जो लाभ सम्भव है, उसकी सम्भावना को बढ़ाए । अत: तत्कालीन प्रधानमंत्री(1991 -96) श्री पी. वी. नरसिंहराव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार ने उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की प्रवृत्ति को और आगे बढ़ाया । श्री नरसिंहराव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार ने उदारीकरण को जो तीव्रता प्रदान की उसे कालान्तर में बनी विभिन्न सरकारों ने न केवल जारी रखा अपितु उदारीकरण एवं वैश्वीकरण में बाधक अनेक अवरोधों को समाप्त किया ।

उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

भारत में 24 जुलाई, 1991 को नयी उदार औद्योगिक नीति की घोषणा के साथ उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का दौर आरम्भ हुआ । आर्थिक सुधारों की यह प्रक्रिया निरन्तर जारी है । आर्थिक सुधारों की नीति को तीव्र एवं प्रभावी बनाने के लिए सरकार निरन्तर अनेक कदम उठाने जा रही है । भारत में उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) की आधुनिक प्रवृत्तियों को निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) **सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उपक्रमों में कमी :-** उदारीकरण की नीति अपनाने के क्रम में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या में कमी की है । 1991 में इसकी संख्या 17 से घटाकर 8 कर दी गई, जिसे 1993 में पुन: घटाकर 6 कर दिया गया । वर्तमान (2007) में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उपक्रमों की संख्या मात्र 3 है । इनमें आणविक ऊर्जा, रेल परिवहन एवं आणविक ऊर्जा आदेश 1953 की अनुसूची में शामिल खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं । इनमें प्रत्येक मामले पर विचार कर निजी भागीदारी की स्वीकृति दी जा सकती है ।

(2) **लाइसेन्स की अनिवार्यता वाले उद्योगों की संख्या में कमी :-** सन्1991 में सरकार ने 18 उद्योगों के लिए अनिवार्य लाइसेन्स की व्यवस्था रखी थी, जिन्हें बाद में घटाकर 14 कर दिया गया। वर्तमान (2007) में जिन 6 प्रकार के उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता का प्रावधान है वह सुरक्षा, सामाजिक महत्त्व अथवा पर्यावरण से संबंधित हैं ।

(3) **एकाधिकारी घरानों की परिसम्पत्तियों की सीमा समाप्त:-** 1991 में एकाधिकारी एवं बड़े औद्योगिक घरानों की परिसम्पत्तियों की सीमा 100 करोड़ रुपये से घटाकर शून्य कर दी गई है । इसके फलस्वरूप बड़े औद्योगिक घरानों को अपने विस्तार एवं संयंत्रों की स्थापना उनके संयोजन, एकीकरण, अधिग्रहण आदि के लिए सरकार की अनुमति नहीं लेनी होगी । इससे ये उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के योग्य हो जायेंगे ।

(4) **विदेशी पूँजी निवेश की सीमा में वृद्धि :-** सरकार ने चुने हुए उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों की अंश पूँजी निवेश में 51 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की अनुमति दी है । 1997-98 में रिजर्व बैंक द्वारा स्वत: अनुमोदन माध्यम से प्रत्यक्ष विदेशी अंश पूँजी निवेश के लिए पात्र उद्योगों की सूची का विस्तार किया गया । अब उच्च प्राथमिकता वाले उपक्रमों में अनिवासी भारतीय व विदेशी निगमों को 100 प्रतिशत तक अंश पूँजी निवेश की अनुमति दी गई हैं ।मार्च 2001 में सरकार ने विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) के लिए निवेश की सीमा को 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दिया । 2004-05 के बजट में सरकार ने दूर संचार के क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमा बढ़ाकर 74 प्रतिशत, नागरिक उड्डयन क्षेत्र में 49 प्रतिशत तथा बीमा क्षेत्र में 49 प्रतिशत करने की घोषणा की गई ।

व्यवसाय से व्यवसाय- ई कॉमर्स, ऊर्जा क्षेत्र, तेल रिफाइनरी, विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) एवं टेलीकॉम क्षेत्र में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष निवेश (FDI) की अनुमति दी गई

है । इसके बाद विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए अनेक प्रोत्साहन योजनाओं एवं छूटों की घोषणा की गई है ।

(5) **छोटे एवं लघु उद्योग-** ये भारतीय अर्थव्यवस्था के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से का गठन करते है । जिन्होंने वर्ष 2004-05 में देश के विनिर्माण उत्पादन में 39 प्रतिशत एवं निर्यात में 34 प्रतिशत का योगदान दिया । यह देश के ग्रामीण एवं शहरी इलाकों में 295 मिलियन लोगों को रोजगार प्रदान करता है । उदारीकरण से पूर्व लघु-उद्योग क्षेत्र के लिए मदों के आरक्षण का प्रावधान था । केवल लघु उद्योग क्षेत्र के द्वारा उत्पादन के लिए मदों के आरक्षण का प्रावधान था । केवल लघु उद्योग क्षेत्र के द्वारा उत्पादन के लिए मदों के आरक्षण की प्रक्रिया वर्ष 1967 में आरम्भ हुई एवं यह अपनी परिणति पर वर्ष 1984 में पहुँची। 11 अप्रैल, 1967 को लघु उद्योग क्षेत्र के लिए उत्पादन हेतु 47 मदें आरक्षित की गई । धीरे-धीरे) यह संख्या बढ़कर 18 अक्टूबर, 1984 को 873 हो गई । उदारीकरण के फलस्वरूप कालान्तर में आरक्षण नीति में धीरे-धीरे छूट दी गई है एवं 2005 को लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित मदों को संख्या 593 थी । 2005 में इस सूची से 108 वस्तुऐं,2006 में 180 व 2007 में 212 वस्तुओं, तथा फरवरी, 2008 में 79 वस्तुओं व अक्टूबर, 2008 में 14 वस्तुओं को हटाने के बाद अब आरक्षित वस्तुओं की संख्या केवल 2। रह गई है ।

छोटे, लघु एवं मझौले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 द्वारा लघु उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया गया है । यह अधिनियम "उद्यम (विनिर्माण एवं सेवाओं दोनों) की अवधारणा की स्वीकारोक्ति एवं इन उद्यमों के लिए तीन स्तरों अर्थात् छोटे (Micro), लघु (Small) एवं मझौले (Medium) के एकीकरण के लिए अपनी तरह की पहली कानूनी रूपरेखा विहित करता है । इस अधिनियम के अंतर्गत उद्यमों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बांटा गया है यथा- (i) विनिर्माण एवं (ii) सेवाऐं उपलब्ध/प्रदान करना । इन दोनों श्रेणियों को इसके अतिरिक्त, संयंत्र एवं मशीनों में निवेश(विनिर्माण उद्यमों के लिए) अथवा उपस्करों (Equipment). (उन मामलों में जहां उद्यम सेवाऐं उपलब्ध करा रहा है अथवा प्रदान कर रहा है) के आधार पर छोटे, लघु एवं मझौले उद्यमों के रूप में वर्गीकृत किया गया है जो निम्नलिखित है:

(i) विनिर्माण उद्यम :

(A) छोटे उद्यम (Micro Enterprises)- 25 लाख रूपये तक का निवेश,

(B) लघु उद्यम (Small Enterprises)- 25 लाख रुपये से अधिक एवं 5 करोड़ रुपये तक का निवेश, तथा

(C) मझौले उद्यम (Medium Enterprises)-5 करोड़ रुपये से अधिक एवं 1० करोड़ रुपये तक का निवेश ।

(ii) सेवा उद्यम :

(A) छोटे उद्यम (Micro Enterprises)- 10 लाख रूपये तक का निवेश,

(B) लघु उद्यम (Small Enterprises)- 10 लाख रूपये से अधिक एवं 2 करोड़ रुपये तक का निवेश, तथा

(C) मझौले उद्यम (Medium Enterprises)- 2 करोड़ रुपये से अधिक एवं 5 करोड़ रुपये तक का निवेश ।

(6) **फेरा की जगह फेमा (FEMA)-** विदेशी पूँजी की बाधाओं को दूर करने के लिए 1998-99 के बजट में 'फेरा' के स्थान पर नया एवं उदार अधिनियम 'फेमा' बनाने की घोषणा की गई । अब'फेरा' (विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम) का स्थान 'फेमा' (विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम) ने ले लिया है । यह कानून अर्थव्यवस्था की जरूरतों एवं विदेशी मुद्रा बाजारों एवं लेन-देन में हो रहे परिवर्तनों के अनुरूप होगा ।

(7) **विदेशी तकनीक के समझौते में छूट-** नयी उदार नीति में विदेशी तकनीक के आयात को उदार बनाया गया है । यह कहा गया है कि उच्च प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के बारे में एक बार में 1 करोड़ रू. तक की तकनीकी जानकारी समझौतों के लिए अनुमति स्वत: ही दे दी जायेगी । विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा देश में विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण करने के लिए अब विदेशी मुद्रा में भुगतान के लिए अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी ।

(8) **पूँजीगत माल, कच्चे माल आदि के आयात में छूट-** उपभोक्ता वस्तुओं को छोड़कर लगभग सभी प्रकार के पूँजीगत माल व कच्चे माल आदि के आयात की खुली छूट दे दी गई है ।

(9) **सोने तथा चाँदी के आयात में उदारता-** उदारीकरण की नीति में निर्धारित सीमा शुल्क चुकाकर निर्धारित मात्रा तक सोने-चाँदी के आयात की छूट दी गई है ।

(10) **आयात शुल्क की दरों में कमी-** उदारीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत उदारीकरण नीति का विस्तार करते हुए आयात शुल्कों की दरों को धीरे-धीरे कम किया जा रहा है ।

(11) **कर ढांचे में सुधार-** सरकार ने आर्थिक उदारीकरण को गति प्रदान करने के लिए व्यक्तिगत एवं निगम कर ढांचे में व्यापक सुधार किये हैं । सरकार ने उत्पादन शुल्क, प्रत्यक्ष कर एवं अप्रत्यक्ष करों में कमी की है । इससे कर के दायरे का विस्तार होगा ।

(12) **पूँजी बाजार का उदारीकरण-** उद्योगों में पूँजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए पूँजी बाजार में उदारीकरण की नीति अपनाई गई है । 1992 से पूँजी निर्गमन नियन्त्रक (CCI) को समाप्त कर, उसके स्थान पर 'सेबी' (SEBI) की स्थापना की गई हैं । अब कम्पनियाँ अपने अंशों के मूल्य स्वयं निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र हैं । अब भारतीय कम्पनियाँको विदेशों में भी अपनी प्रतिभूतियाँ निर्गमित करने की छूट दी गई है । सरकार पूँजी बाजार को बढ़ावा देने के लिए लगातार अनेक छूटें घोषित कर रही है । अब भारतीय कम्पनियाँ भी विदेशी कम्पनियों में पूँजी लगा सकेगी ।

(13) **विनिमय दर निर्धारण की स्वायत्तता-** सरकार ने रूपये की विनिमय दर का प्रतिबन्धित निर्धारण बन्द कर दिया है । अब रूपये की विनिमय दर उसकी माँग व पूर्ति के आधार पर बाजार में स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है ।

(14) **सार्वजनिक उपक्रमों की अंश पूँजी का विनिवेश-** उदारीकरण के अन्तर्गत सरकार ने विनिवेश की नीति अपनाई । सार्वजनिक उपक्रमों की अंशपूँजी को निजी व्यक्तियों / उपक्रमों को विक्रय करने को विनिवेश की संज्ञा दी गई । वर्ष 1996 में विनिवेश आयोग का गठन किया गया । पिछले दशक के दौरान विनिवेश पर सरकार की नीति विकसित हुई है एवं सामान्य तौर पर इसकी घोषणा बजट के माध्यम से की गई है । केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सरकार की पूँजी (Equity) का विनिवेश वर्ष 1991-92 में शुरू हुआ । अप्रैल, 1991 से मार्च, 2006 के मध्य विनिवेश से 49,241.29 करोड़ रू. की राशि प्राप्त हुई ।

(15) **पूँजी की स्वदेश वापसी की सीमा में वृद्धि-** विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए विदेशी निवेश की स्वदेश वापसी की सीमा को बढ़ाया गया है । अनिवासी, भारतीयों / विदेशी निगम निकायों और विदेशी संस्थागत निवेशकों के संबंध में कुल पोर्टफोलियों निवेश सीमा हेतु मौजूदा24 प्रतिशत की उच्चतम सीमा को निदेशक मण्डल के अनुमोदन से तथा कम्पनी की साधारण सभा द्वारा पारित विशेष प्रस्ताव से उसकी निर्गमित तथा चुकता पूँजी को 40 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है ।

(16) **औद्योगिक रूग्णता के सम्बन्ध में नीति:-** सरकार ने रूग्ण औद्योगिक इकाइयों को समाप्त करने अथवा बेचने अथवा श्रमिक सहकारी समितियों को सौंपने की नीति बनायी । इससे श्रमिकों को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए "राष्ट्रीय नवीनीकरण कोष" बनाया गया । औद्योगिक रूग्णता की समस्या से निपटने के लिए "औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड", को दायित्व सौंपा गया ।

दिसम्बर, 2002 में संसद द्वारा निम्नांकित दो अधिनियम पारित किये गये: (1) कम्पनीज (संशोधन) कानून, 2002 एवं (2) कम्पनीज (द्वितीय संशोधन), कानून, 2002

(17) **बैंकिंग क्षेत्र में सुधार-** औद्योगिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के लिए मौद्रिक एवं ऋण नीति को उदार बनाया गया है । ये सुधार बैंक दर में कमी, नगद कोषानुपात में चरणबद्ध कटौती, व्याज दरों का विनियमन, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में गृह निर्माण हेतु वित्त पोषण के लिए उदार शर्तें निर्धारित करने आदि से सम्बद्ध है ।

(18) **गैर-निवासी भारतीयों को निवेश की छूट-** गैर निवासी भारतीयों तथा भारतीय मूल के लोगों को आधारभूत संरचना सम्बन्धी क्रियाओं जैसे भवन निर्माण, राजमार्गों का निर्माण, विद्युत उत्पादन, आधारभूत दूर संचार सेवाऐं आदि में निवेश की अनुमति दी गई है ।

(19) **सार्वजनिक सेवाओं का निजीकरण :-** अब सरकार सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण को भी प्रोत्साहित कर रही है । पानी व विद्युत की पूर्ति, विद्युत उत्पादन, सड़क व पुलों

का निर्माण व रख-रखाव, रेलवे प्लेटफार्मो, अस्पतालों आदि के रखरखाव, चुंगी वसूली, दूर संचार, बैंकिंग सेवा, बीमा सेवा आदि में निजी क्षेत्र को छूट दी जा रही है ।

(20) **प्रक्रिया का सरलीकरण :-** औद्योगिक विकास विभाग में विनियोग प्रोत्साहन एवं परियोजना मॉनिटरिंग कक्ष स्थापित किया गया है । यह सैल उद्यमियों को लाइसेन्स नीति, तटकर, निगम कानून, विभाग में लम्बित प्रार्थना-पत्रों की वर्तमान स्थिति, आर्थिक संरचना सम्बन्धी सुविधाओं तथा उद्योग स्थापित करने के लिए राज्य स्तर पर उपलब्ध प्रेरणाओं के बारे में सूचना एवं मार्गदर्शन देगा ।

(21) **प्रतिस्पर्द्धा नीति:-** पिछले कुछ दशकों में औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा औद्योगिक नीति का केन्द्र बिन्दु (Focus) रही है । औद्योगिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में सुधार करने एवं एकाधिकारी शक्ति के कारण उत्पन्न हुई विकृतियों (distortion) को दूर करने के उद्देश्य से सितम्बर, 2002 में प्रतिस्पर्द्धा अधिनियम, 2002 (Competition Act,2002) का अधिनियमन (enactment) किया गया

9.6 उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का कृषि विकास पर प्रभाव

भारत में उदारीकरण का कृषि विकास पर दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा है- अच्छा एवं बुरा । उदारीकरण से कृषि विकास पर कुछ सकारात्मक प्रभाव (Positive Impact) पड़ा है तो कुछ नकारात्मक प्रभाव (Negative Impact) भी दृष्टिगोचर होता है । यहां दोनों प्रकार के प्रभावों का उल्लेख किया गया है:-

कृषि विकास पर उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) के सकारात्मक प्रभाव

भारत में कृषि विकास पर उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) के निम्नांकित सकारात्मक प्रभाव पड़े है :-

(1) **सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं कृषि विकास की दर में वृद्धि:-** पिछले एक दशक (1992-93 से 2003-04) में उदारीकरण के फलस्वरूप देश की GDP तथा कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र की GDP में वृद्धि हुई हैं । जिन वर्षों में कृषि क्षेत्र में वृद्धि की दर ऋणात्मक अथवा औसत से कम रही है, वे वर्ष मानसून की दृष्टि से बहुत खराब थे । 2002-03 एवं 2004-05 में कृषि विकास की दर क्रमश: (-) 7.2% एवं शून्य प्रतिशत रही थी, क्योंकि इन दोनों वर्षों में मानसून प्रतिकूल रहा । मानसून की दृष्टि से वर्ष 2002 पिछले 100 वर्षों में सबसे खराब रहा था । 2003-04 में GDP में 8.5% व कृषि में 10.0 प्रतिशत वृद्धि दर रही है । 2006-07 में GDP वृद्धि दूर 9.6% व कृषि विकास दर 3.8% रही । 2007-08 में GDP वृद्धि दर 8.7% व कृषि विकास दर 2.6% रही ।

(2) दुग्ध उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि :- वर्ष 1990-91 में देश में 53.9 मिलि. टन दूध का उत्पादन हुआ जो 2006-07 में बढ़कर 101 मिलि.टन तथा 2007-08 में 102 मिलि. टन होने की आशा है । उदारीकरण के बाद मात्र एक दशक में देश में दुग्ध उत्पादन में 46 मिलि. टन से अधिक वृद्धि हुई है । वर्ष 1990-91 में

प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता 176 ग्राम/दिन थी जो बढ़कर 2005-06 में 241 ग्राम/दिन एवं 2006-07 व 2007-08 में 246 ग्राम/दिन हो गई ।

(3) **मत्स्य एवं समुद्री उत्पादों के उत्पादन एवं निर्यात में वृद्धि :-** उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद देश में मत्स्य एवं समुद्री उत्पादों के उत्पादन एवं निर्यातों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है । मत्स्य क्षेत्र की देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है । इसे आय एवं रोजगार सृजन का सुदृढ़ क्षेत्र माना जाता है, क्योंकि मत्स्य क्षेत्र अनेक सहायक उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करता है एवं सत्ता व पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराता है । इसके अलावा मत्स्य एवं समुद्री उत्पादों के निर्यात से विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है ।

(4) **खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि -** वर्ष 1990-91 में देश में 176.4 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की तुलना में 2001-02 में 212.9 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ । 2002-03 में खाद्यान्न उत्पादन घटकर 174.8 मिलियन टन रहा जो 2003-04 मे पुन: बढ़कर 213.2 मिलियन टन व2006-07 में 217 मिलियन टन व 2007-08 में 219.3 मिलियन टन होने का अनुमान है । वर्ष1990-91 में देश में 55.1 मिलियन टन गेहूँ उत्पादन की तुलना में 2006-07 में 72.5 मिलियन टन गेहूँ का उत्पादन हुआ । इस अवधि में चावल का उत्पादन 74.3 मि. टन से बढ़कर 93.4 मिलि. टन हो गया ।

(5) **गन्ना उत्पादन में वृद्धि-** वर्ष 1990-91 में देश में 241 मिलि. टन गन्ना उत्पादन हुआ जो2006-07 में बढ़कर 355.5 मिलि. टन हो गया । 2007-08 में इसके 340.3 मिलि. टन होने का अनुमान है ।

(6) **कृषि उत्पादन सूचकांक में वृद्धि-** पिछले एक दशक में कृषि उत्पादन के सूचकांक में काफी वृद्धि हुई है । वर्ष 1990-91 में कृषि उत्पादन का सूचकांक 148.4 था जो 2000-01 में 165.7, 2004-05 में 176.9, तथा 2006-07 में 197.1 हो गया ।

(7) **प्रमुख फसलों की प्रति हैक्टेयर उपज में वृद्धि-** पिछले एक दशक में प्रमुख फसलों की प्रति हैक्टेयर पैदावार में काफी वृद्धि हुई है । उदाहरण के लिए 1990-91 में 1880 किग्रा/हैक्टेयर खाद्यान्न का उत्पादन हुआ जो 2000-01 एवं 2006-07 में बढ़कर क्रमश: 1628 किग्रा/हैक्टेयर एवं 1750 किग्रा हैक्टेयर हो गया । 1990-91 मे अनाज का उत्पादन 1571 किग्रा/हेक्टेयर से बढ़कर 2000-01 में 1844 किग्रा हैक्टेयर एवं 2006-07 में क्रमश: 2015 किग्रा/हेक्टेयरहो गया । गेहूँ की उपज जो 1990-91 में 2281 किग्रा हैक्टेयर थी यह 2006-07 में बढ़कर 2671 किग्रा/हैक्टेयर हो गयी ।

(8) **विभिन्न फसलों के सिंचित क्षेत्र में वृद्धि: -** वर्ष 1990-91 में खाद्यान्न उत्पादन के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 35.1 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत था तथा शेष लगभग 65 प्रतिशत गैर सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत । वर्ष 2006-07 में खाद्यान्न उत्पादन के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 45.5 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र था ।

(9) **उर्वरकों के उत्पादन एवं उपयोग में वृद्धि-** पिछले दशक में उर्वरकों के उत्पादन एवं उपभोग में काफी वृद्धि हुई है । वर्ष 1990-91 में देश में सभी प्रकार के उर्वरकों का 9045 हजार टन कुल उत्पादन हुआ जो 2000-01 में बढ़कर 14752 हजार टन तथा 2006-07 में 16095 हजार टन हो गया । इसी प्रकार 1990-91 में भारत में 12546 हजार टन उर्वरकों का उपयोग हुआ जबकि 2006-07 में यह 21652 हजार टन हुआ ।

(10) **कृषि निर्यातों में वृद्धि-** वर्ष 2005-06 में भारत ने 10.5 अरब डालर मूल्य की कृषि वस्तुओं का निर्यात किया । यह देश के कुल प्राप्त निर्यातों (Merchandise export) का लगभग 10.2% था । कृषि उत्पादों के निर्यात में सर्वाधिक हिस्सा (15% से अधिक) अकेले समुद्री उत्पादों (marine products) का है। चावल, खली (oil meals), कपास, काजू गिरी, मसाले, कॉफी, चाय, चीनी, मांस और मांस से बनी वस्तुऐं, फल, सब्जियाँ और संसाधित (Processed) फलों एवं सब्जियों के निर्यात में अच्छी वृद्धि हुई है । वर्ष 2006-07 में भारत ने 13.03 अरब डालर मूल्य की कृषि वस्तुओं का निर्यात किया जो देश के कुल निर्यात का 9.9 प्रतिशत था ।

(11) **किसान साख पत्र योजना :-** अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आयी उदारीकरण की लहर के साथ ही कृषि साख पर भी उदारीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ा है । यद्यपि बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाऐं पहले से ही कृषि साख प्रदान कर रही थी, लेकिन अगस्त, 1998 में किसानों को अल्पकालीन साख प्रदान करने के लिए एक अभिनव स्कीम (Innovative scheme) शुरू की गई । इस स्कीम का नाम किसान क्रेडिट कार्ड (Kisan Credit Card) रखा गया । नवम्बर 2007 तक KCC के तहत कुल 705.55 लाख से अधिक कार्ड जारी किये जा चुके थे ।

(12) **घरेलू बाजार का उदारीकरण :-** भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के फलस्वरूप घरेलू कृषि बाजार में उदारीकरण लाया जा रहा है । वह समस्त नियन्त्रण एवं नियमन, जो कृषि आय में बाधक बने हुए है, समाप्त किये जा रहे है । इससे किसान अपनी मेहनत एवं निवेश के अनुरूप अपनी उपज की कीमत प्राप्त कर सकेंगे ।

(13) **वायदा बाजार का क्षेत्र -** उदारीकरण के परिणामस्वरूप वायदा बाजार के क्षेत्र में विस्तार किया जा रहा है ताकि वस्तुओं की कीमतों में अत्यधिक उच्चावचनों को नियन्त्रित किया जा सके एवं सम्भावित हानि से बचा जा सके ।

(14) **किसानों को संरक्षण की व्यवस्था-** विश्व व्यापार संगठन (WTO) समझौते के फलस्वरूप कृषि आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबन्धों की समाप्ति से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों से बचाव के लिए वस्तुवार व्यूह-रचना (commoditywise strategy) बनायी गयी है । इससे किसानों के हितोंकी सुरक्षा की जा सकेगी एवं विश्व बाजार में कीमतों के अत्यधिक उतार-चढ़ाव के प्रभाव से बचा जा सकेगा तथा कृषि निर्यातों को बढ़ावा मिलेगा ।

(15) **निजी क्षेत्र की भूमिका-** उदारीकरण के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित मिला है, विशेषकर, कृषि अनुसंधान, मानव- संसाधन विकास, फसल कटाई के बाद उसके प्रबन्ध एवं विपणन कार्यो में निजी क्षेत्र की भागीदारी को अनुबन्ध कृषि (Contract Farming) एवं भूमि को पट्टे (lease) पर देने की व्यवस्था के आधार पर प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

उदारीकरण (सुधारों) का कृषि पर नकारात्मक प्रभाव

कृषि विकास पर उदारीकरण के नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है:-

(1) **दालों, तिलहन एवं रेशे वाली फसलों के उत्पादन सूचकांक में गिरावट-** पिछले एक दशक में दालों, तिलहनों तथा रेशे वाली फसलों के उत्पादन सूचकांक में कमी आयी है । 1990-91 में दालों के उत्पादन का सूचकांक 140.5 था जो 2006-07 में घटकर 139.4 रह गया । इसी तरह तिलहनों के उत्पादन का सूचकांक जो 1990-91 में 179.5 था वह 2006-07 में बढ़कर 232.2 रह गया । रेशे वाली फसलों के उत्पादन सूचकांक में भी 2001-02 में गिरावट के बाद कुछ वृद्धि हुई ।

(2) **अनेक फसलों की प्रति हैक्टेयर उपज में कमी -** कपास तथा चाय की प्रति हैक्टेयर उपज में उदारीकरण के बाद गिरावट आयी है । 1990-91 में कपास की प्रति हैक्टेयर उपज 225 किग्रा थी जो 2006-07 में घटकर 190 किग्रा हैक्टेयर रह गयी । यद्यपि 2006-07 में यह बढ़कर 422 किग्रा हो गई। इसी प्रकार इसी अवधि में चाय की उपज 1794 किग्रा/हेक्टेयर से घटकर 2000-01 में 1673 किग्रा/हेक्टेयर रह गई ।

(3) **भारत के निर्यात में कृषि क्षेत्र के प्रतिशत भाग में कमी:-** 1990-91 में भारत के निर्यातों में कृषि क्षेत्र का हिस्सा लगभग 19.4 प्रतिशत था जो 2000-01 में घटकर मात्र 13.5% एवं 2005-06 में 10.2% रह गया । इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि उदारीकरण का भारत के कृषि निर्यातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।

(4) **GDP में कृषि क्षेत्र के पूँजी निर्माण के हिस्से में कमी -** GDP में कृषि क्षेत्र के पूँजी निर्माण का हिस्सा 1990 के दशक के अंत में 2.2% से गिरकर वर्ष 2005-06 में 1.9% रह गया । यह चिंता का विषय है । इस हिस्से में गिरावट मुख्यत: सिंचाई में सरकारी निवेश में, विशेषकर 1990 के दशक के मध्य से गिरावट आने के कारण हुई है ।

(5) **खाद्य तेलों के उत्पादन में वृद्धि करने के असफल-** वर्ष 1990-91 में 18.6 मिलियन टन तिलहन का उत्पादन हुआ । विगत दशक में तिलहनों के उत्पादन में कुछ वृद्धि हुई है लेकिन खाद्य तेलों की बढ़ती हुई मांग की तुलना में यह वृद्धि अपर्याप्त रही है । वर्तमान में देश में प्रतिवर्ष100-110 लाख टन खाद्य तेल की माँग रहती है जबकि सालाना घरेलू उत्पादन 60.7 लाख टन है जो मांग की तुलना में काफी कम है । अत: हमें विदेशों से खाद्य तेलों का आयात करना पड़ता हैं

(6) **कृषि आदानों की लागत में वृद्धि-** उदारीकरण के बाद देश में कृषि आदानों-बीज, उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, सिंचाई आदि की लागत में काफी वृद्धि हुई है जबकि कृषि उत्पादों की कीमत में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हुई है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारतीय कृषि पर उदारीकरण (सुधारों) के जहाँ कुछ नकारात्मक प्रभाव सामने आये है, वहीं उदारीकरण के भारतीय कृषि पर अनेक अच्छे प्रभाव भी पड़े है । यदि हम कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करें, लागतों में कमी लायें, उत्पादकता को बढ़ाये, कृषि प्रसंस्करण को बढ़ावा दें तथा कृषि का विविधीकरण करें तो भारत दुनिया के किसी भी देश से प्रतियोगिता में आगे रहेगा ।

9.7 उदारीकरण (सुधारों) का औद्योगिक विकास पर प्रभाव

उदारीकरण से औद्योगिक क्षेत्र को निम्नलिखित लाभ हुए है:-

(1) **विदेशी पूंजी निवेश में वृद्धि-** उदारीकरण की नीति से देश में पूँजी निवेश में भारी वृद्धि हुई । कुल पूँजी प्राप्तियों के समानुपात के रूप में विदेशी निवेश प्राप्तियों में वर्ष 1990-91 के 1.2% से नियमित रूप से वृद्धि हुई जो वर्ष 1995-96 में बढ़कर 155.2% हो गई । तत्पश्चात् इसमें गिरावट हुई और वर्ष 1998-99 में यह 29.4% कम हो गई । कुछ उतार-चढ़ाव के बाद वर्ष2005-06 में यह निवेश (17.2 अरब अमरीकी डॉलर) कुल पूंजी प्रवाहों के समानुपात में 71.2% था ।

(2) **विदेशी ऋण भार में कमी-** भारत के लिए बढ़ता हुआ विदेशी ऋण भार एक गम्भीर समस्या बना हुआ था । विश्व के सर्वाधिक कर्जदार देशों में ब्राजील (133 अरब डॉलर) और मैक्सिको (118 अरब डॉलर) के बाद भारत तीसरे स्थान पर था । पिछले एक दशक में विदेशी ऋण भार में काफी सुधार हुआ है । सितम्बर 2007 में भारत पर 757,967 करोड़ रुपये का विदेशी ऋण भार था । ऋण सेवा भुगतान (Debt Service Payment) 1990-91 में चालू प्राप्तियों के 35.3% के शीर्ष बिन्दु पर पहुँच गया था । विदेशी ऋण का GDP से अनुपात मार्च 2006 में घटकर 15.8% रह गया । वर्ष1991 में कुल विदेशी ऋणों में अल्पकालीन विदेशी ऋणों का प्रतिशत 10.2 था जो 2005-06 में घटकर मात्र 6.9% रह गया । यद्यपि 1991 में कुल विदेशी ऋणों में रियायती ऋणों का प्रतिशत45.9 था जो 2006 में घटकर 31.2% हो गया ।

(3) **विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि-** भारत 1990-91 एवं 1991-92 में भुगतान असन्तुलन के कठिन दौर से गुजर चुका है । 1964-65 में विश्व निर्यात में भारत का भाग 1 था जो 2006 में 1.1% हो गया । निर्यातों में कमी व आयात में वृद्धि के कारण 1991 में हमारे विदेशी मुद्रा भण्डार 1 अरब डॉलर तक नीचे आ गये जो केवल 2 सप्ताह के आयात भुगतान के लिए भी पर्याप्त नही थे । फलस्वरूप देश की साख बचाने के लिए हमें 20 टन सोना स्विस बैंक में गिरवी रखना पड़ा । इसके बाद पुन: 27 टन सोना बैंक ऑफ इंग्लैण्ड के पास गिरवी रखना पड़ा । लेकिन उदारीकरण की नीति के कारण

मार्च, 1997 से 26,423 मिलियन डॉलर के विदेशी मुद्रा भण्डार थे जो 2 फरवरी, 2007 को 180 बिलियन अमरीका डॉलर के तुल्य हो गये । अत: उदारीकरण के फलस्वरूप देश के विदेशी मुद्रा भण्डारों में भारी वृद्धि हुई है ।

(4) **GDP एवं औद्योगिक विकास दर में वृद्धि-** 'विकास दर' किसी भी देश की प्रगति का मापदण्ड है । 1980-81 से 1991-92 (उदारीकरण से पूर्व) के मध्य देश में GDP में 5.4 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि हुई । 1992-93 से 2000-01 के मध्य (उदारीकरण के बाद) यह बढ़कर 6.4% वार्षिक हो गयी । इसी प्रकार औद्योगिक विकास दर में भी काफी वृद्धि हुई है । वर्ष2004-05 एवं 2005-06 में औद्योगिक विकास की दर क्रमश: 84% एवं 8.2% रही । लेकिन वर्ष2006-07 में देश में औद्योगिक विकास की दर 11.6% रहीं ।

(5) **उत्पादन में वृद्धि -** नियन्त्रणों की समाप्ति से देश में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई है । उदारीकरण से पूर्व देश में अनेक औद्योगिक एवं उपभोक्ता वस्तुओं की कमी थी । उदारीकरण से कुछ ही वर्षों में स्थिति बदल गयी है ।

(6) **महँगाई पर अंकुश-** उदारीकरण के फलस्वरूप लम्बी अवधि में महंगाई पर अंकुश लगा है । उद्योग के बड़े हिस्से से लाइसेन्स और उत्पादन क्षमता पर प्रतिबन्ध हट जाने से उत्पादन में वृद्धि के कारण औद्योगिक एवं उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में गिरावट आयी है ।

(7) **नये उद्यमी वर्ग का प्रादुर्भाव-** उदारीकरणपरिणामस्वरूप देश में एक नये उद्यमी वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ है जो औद्योगिक गतिशीलता को बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय उत्पादों की गुणवत्ता के नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है ।

(8) **प्रतिस्पर्धा की शुरूआत-** उदारीकरण की नीति से भारत में वास्तविक प्रतिस्पर्द्धा की शुरूआत दोहरे तरीके से हुई है । एक तो देशी उद्यमियों के बीच और दूसरे नई नीतियों के बाद आने वाली विदेशी कम्पनियों से । प्रतिस्पर्द्धा के कारण उत्पादक कीमत तथा वस्तु की किस्म पर अधिक ध्यान देने लगे है, क्योंकि बाजार में वही वस्तु टिक सकेगी जो सस्ती तथा श्रेष्ठ होगी ।

(9) **सर्वोत्तम तकनीक आयात-**उदारीकरण का एक लाभ यह हुआ कि देश में सर्वोत्तम तकनीक का आयात किया जाने लगा है । एकाधिकार कानून से एकाधिकारी प्रतिबन्ध हटाने के कारण बड़े पैमाने की बचतें अधिक मिलने लगी है ।

(10) **भ्रष्टाचार में कमी-** लाइसेन्स-परमिट-कोटा राज की समाप्ति से नौकरशाही बाधाऐं दूर हुए हैं तथा भ्रष्टाचार में कमी आयी है ।

औद्योगिक क्षेत्र में उदारीकरण की आलोचनाएँ / सीमाएँ

यद्यपि भारत में औद्योगिक क्षेत्र में उदारीकरण की नीति का व्यापक स्वागत हुआ है, लेकिन इसकी कुछ आलोचनाएँ भी की जाने लगी है जो निम्नलिखित हैं:

(1) **बेरोजगारी में वृद्धि-** उदारवाद से देश में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिला है तथा अनेक सक्षम उद्योग बन्द हो गये है जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई है । विमल जालान के

अनुसार, "घरेलू उदारीकरण का एक नतीजा दिवालियापन भी हो सकता है, क्योंकि ज्यादा प्रतिस्पर्द्धा से कुछ कम्पनियाँ बेमौत मारी जाएँगी ।"

(2) **विदेश हस्तक्षेप:-** उदारीकरण की नीति के फलस्वरूप देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि होगी जिससे हस्तक्षेप की सम्भावना बढ़ेगी । दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स के प्रो. कौशिक बसु के शब्दों में, "जिस देश में भ्रष्टाचार और अकुशलता का स्तर काफी हो वहाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जल्दी ही इस स्तर को और बढ़ाना तथा इससे लाभ उठाना शुरू कर देता है । हमने देखा है कि जहाँ कहीं अमेरिकी डॉलर पहुँचा है, जल्दी ही अमेरिकी सोल्जर (सैनिक) भी पहुँच जाते हैं ।"

(3) **मजदूर संघों द्वारा विरोध-** नई नीति में उदारीकरण के साथ-साथ निजीकरण पर भी जोर दिया गया है । लेकिन मजदूर संघों द्वारा निजीकरण का तीव्र विरोध किया जा रहा है ।

(4) **बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन-** एकाधिकार कानून में संशोधन के कारण देश में बाजार की तलाशा में अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन हुआ है । इससे लाभ की बजाय हानि ज्यादा होने की आशंका है ।

(5) **औद्योगिक क्षेत्र में कठोर प्रतिस्पर्धा-** उदार नीति के कारण देश की अर्थव्यवस्था विदेशी कम्पनियों के लिए खुल गई है । इससे स्वदेशी एवं विदेशी कम्पनियों के बीच प्रतिस्पर्धा बड़ी है, इसकी हानि स्वदेशी कम्पनियों को उठानी पड़ रही हैं । इससे वे अकाल मौत मर सकती है ।

(6) **सार्वजनिक क्षेत्र को हतोत्साहन-** उदारीकरण के साथ सरकार का सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति दृष्टिकोण बहुत बदल गया है । अब यह लगने लगा है कि भारत ने समाजवाद की नीति को छोड़ दिया है । आज सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या घटकर नगण्य रह गई है । इससे सार्वजनिक क्षेत्र हतोत्साहित हुआ है ।

(7) **वास्तविक विदेशी निवेश कम-** उदारीकरण की नीति घोषित करते समय यह आशा की गई थी कि इससे विदेशी निवेशों मे भारी वृद्धि होगी । यद्यपि विदेशी निवेश बढ़े हैं किन्तु वे आशा के अनुकूल नहीं है । भारत द्वारा परमाणु परीक्षण (1998) करने के बाद तो इनमें कुछ समय के लिए कमी आयी । लेकिन बाद में वर्षों में भी इसमें आशानुकूल बढ़ोतरी नहीं हुई है ।

(8) **स्वदेशी एवं लघु उद्योगों को हानि-** उदारीकरण के कारण स्वदेशी तकनीक वाले उद्योगों तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों को विदेशी तकनीक वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है । फलस्वरूप स्वदेशी व लघु उद्योग धीरे- धीरे समाप्त होते जा रहे हैं ।

(9) **निर्यात में अपेक्षित वृद्धि नहीं-** यह आशा की गई थी कि उदारीकरण के फलस्वरूप निर्यातों में भारी वृद्धि होगी । किन्तु उदारीकरण के बाद निर्यातों की तुलना में आयात अधिक बढ़े हैं । यह प्रसन्नता की बात है कि विगत कुछ वर्षों में इस स्थिति में बदलाव आया है । भारत के पण्य निर्यातों ने (डॉलर में) वर्ष 2002-03 में 20%से भी

अधिक दर पर लगातार वृद्धि हासिल करते हुए अपनी गति को बनाए रखा है । वर्ष 2005-06 में 23.4% की वृद्धि व 2006-07 में 22.6% की वृद्धि दर्ज की गई।

9.8 उदारीकरण (सुधारों) का व्यापार विकास पर प्रभाव

भारत में उदारीकरण की नीति का व्यापार विकास पर निम्नांकित प्रभाव पड़ा है-

(1) **विश्व व्यापार में भारतीय निर्यातों के हिस्से में वृद्धि-** विश्व व्यापार में भारतीय निर्यातों का1948 में 2.2 प्रतिशत हिस्सा था जो 1953 में 1.3%, 1963 में 1.0%, वर्ष 1973, एवं 1983 में 0.5% रह गया । उदारीकरण से पूर्व यह 0.5% (1990) था जो 1995 में बढ़कर 0.6% तथा 2001 में 0.7 हो गया । विश्व पण्य निर्यातों में भारत का हिस्सा वर्ष 2003 और 2004 के बीच 0.9% पर अपरिवर्तित रहने के बाद वर्ष 2005 में 1.1% हो गया ।

(2) **भारत के निर्यातों में वृद्धि -** वर्ष 1990-91 में भारत ने 18 अरब डालर के तुल्य वस्तुओं का निर्यात किया जो 1995-96 में बढ़कर लगभग 32 अरब डालर हो गया । वर्ष 2006-07 में भारत ने 126.4 अरब डालर मूल्य का निर्यात किया । स्पष्ट है कि उदारीकरण के बाद भारत के निर्यातों में काफी वृद्धि हुई है ।

(3) **आयातों में वृद्धि-** वर्ष 1990-91 में आयातों में वृद्धि दर 14.4% थी जो 1995-98 में बढ़कर 21.6% हो गयी । बाद के वर्षों में आयातों की वृद्धि दर में गिरावट आयी । 1998-99 में वह -7.1% थी लेकिन 2000-01 में 46०4 हो गई । 2001-०2 में आयातों में वृद्धि की दर-2.8% रही । 2002-03 में आयातों में 14.5% वृद्धि हुई । 2003-04 में 24% हुई । वर्ष 2004-05 एवं2005-06 में आयात वृद्धि (BPO के आधार पर) क्रमश: 48.6% एवं 32.0% रही । वर्ष 2006-07 में यह 24.5% रही ।

(4) **निर्यात-आयात अनुपात में वृद्धि-** उदारीकरण के फलस्वरूप देश के निर्यात-आयात अनुपात में वृद्धि आयी है । 1990-91 में भारत के निर्यात आयातों का 66.2% थे जो 1995-96 में बढ़कर 74% हो गये । लेकिन 1998-99 एवं 1999-2000 में इससे कमी आयी । वर्ष 2004-05 में देश के निर्यात आयात अनुपात में पुन: वृद्धि के कारण यह क्रमश: 71.7% हो गया । लेकिन 2006-07 में घटकर 68% रह गया ।

(5) **आयात आवरण में वृद्धि-** उदारीकरण की नीति लागू करने से पूर्व भारतीय आयातों का विदेशी विनिमय कोषों से आवरण बहुत नीचा था । 1990-91 में यह मात्र 2.5 माह के तुल्य था, लेकिन 1995-96 में यह बढ़कर 6 माह के तुल्य हो गया । उदारीकरण के बाद आयात-आवरण में निरन्तर वृद्धि हुई है । वर्ष 2004-05 में यह 14.3 माह था । वर्ष 2005-06 में आयात आवरण घटकर 11.6 माह रह गया ।

(6) **GDP के प्रतिशत के रूप में निर्यातों में वृद्धि-** वर्ष 1990-91 में GDP के प्रतिशत के रूप में भारत के निर्यात 5.8% थे जो 1995-96 में बढ़कर 9.1% हो गये । बाद के वर्षों में इसमें मामूली कमी आयी लेकिन 2000-01 में यह बढ़कर 9.9% हो गये । वर्ष 2004-05 एवं 2005-06 में यह क्रमश: 12.2% एवं 13.1% हो गये ।

(7) **GDP के प्रतिशत के रूप में आयातों में वृद्धि-** वर्ष 1990-91 में GDP के प्रतिशत के रूप में भारत के आयात 8.8 प्रतिशत थे जो 1995-96 में बढ़कर 12.3 प्रतिशत हो गये । 2000-01 में यह GDP का 12.6 प्रतिशत तथा 2004-05 एवं 2005-06 में क्रमश: 17.1: एवं 19.5: थे । स्पष्ट है कि उदारीकरण के फलस्वरूप GDP के प्रतिशत के रूप में भारत के निर्यात एवं आयात दोनों में वृद्धि हुई है । लेकिन निर्यातों की तुलना में आयात (GDP के प्रतिशत के रूप में) पहले से ही अधिक थे ।

(8) **व्यापार शेष-** 1990-91 में भारत का व्यापार शेष GDP का (-) 3% (Negative 3% of GDP) था जो बाद के वर्षों में ओर अधिक ऋणात्मक हो गया । 1995-96 में व्यापार शेष GDP का-3.2% था । 2000-01 में व्यापार शेष की प्रतिकूलता कुछ कम हुई लेकिन 2004-05 एवं 2006-07 में व्यापार शेष की प्रतिकूलता में वृद्धि हुई तथा यह क्रमश:(-)4.9% एवं (-)6.9% रहा ।

(9) **अदृश्य मदों का शेष-** उदारीकरण के बाद विगत एक दशक में अदृश्य मदों का शेष भारत के अनुकूल रहा है । 1990-91 में यह GDP का -0.1% (Negative 0.1%) था लेकिन 1995-96 में GDP के प्रतिशत के रूप में यह 1.7% हो गया । 2000-01 में यह GDP का 2.1% था लेकिन बाद में इसमें वृद्धि हुई । परिणामस्वरूप 2004-05 एवं 2006-07 में यह क्रमश: 4.5% एवं 5.8% रहा ।

(10) **चालू खाते का शेष-** उदारीकरण के कारण चालू खाते की शेष की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। वर्ष 1990-91 में चालू खाते का शेष GDP के प्रतिशत के रूप में -3.1% था जो1995-96 में -1.7% रहा। वर्ष 2000-01 में चालू खाते का शेष GDP के प्रतिशत के रूप में -0.6% था । वर्ष 2005-06 में यह -1.2% रहा तथा 2006-07 में यह -1.1% रहा ।

9.9 सारांश

सन् 1991 की औद्योगिक नीति से भारत ने उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की । इससे अर्थव्यवस्था में लाइसेंस, कोटा, इन्सपेक्टर राज आदि का समापन हुआ तथा विकास में बाधक प्रक्रियात्मक एवं कानूनी पहलुओं को दूर कर तीव्र विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । उदारीकरण ने निजी क्षेत्र एवं विदेशी पूँजी को प्रोत्साहित किया । इससे कृषि, उद्योग, व्यापार एवं सेवा क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की । किन्तु इससे अनेक नुकसान भी हुए । वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उदारीकरण के साथ-साथ उसका नियमन व नियंत्रण करने वाली प्रभावी एजेन्सियां होनी चाहिए ताकि निजी क्षेत्र में एकाधिकारी एवं शोषण की प्रवृत्ति पर अकुंश लगाया जा सके ।

9.10 शब्दावली

- **उदारीकरण :** सरकारी नियंत्रणों में ढील देना या उन्हें समाप्त करना जिससे विकास की गति तेज हो सके, उदारीकरण कहलाता है ।

- **वैश्वीकरण :** एक देश द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ना ही वैश्वीकरण कहलाता है ।
- **किसान साख पत्र :** कृषि क्षेत्र में ऋण को सुगम बनाने के लिए किसानों को अल्पकालीन साख सुविधा के लिए किसान साख पत्र (KCC) जारी किये जाते हैं ।
- **विदेशी हस्तक्षेप :** विदेशों पूँजी निवेश बढ़ने के कारण उपक्रमों की प्रबन्ध व्यवस्था में विदेशी पूँजी नियोजकों की भूमिका बढ़ जाती है । इसे विदेशी हस्तक्षेप कहते है ।

9.11 स्वपरख प्रश्न

1. आर्थिक उदारीकरण का अर्थ लिखिए,
2. क्या उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) से रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी?
3. भारत में आर्थिक उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) के दौर की शुरुआत कब हुई?
4. वर्तमान में कितने उद्योगों के लिए लाइसेन्स की अनिवार्यता है?
5. 'फेमा' क्या है?
6. 'सेबी' क्या है?
7. भारत में उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) के औचित्य के पाँच बिन्दु लिखिए ।
8. उदारीकरण के लिए लघु उद्योग क्षेत्र में क्या परिवर्तन किये गये हैं?
9. उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का भारतीय कृषि पर प्रभाव बताइये ।
10. भारत की औद्योगिकी नीति में उदारीकरण की प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।
11. उदारीकरण से क्या तात्पर्य है? भारत में उदारीकरण की आवश्यकता क्यों महसूस की गई? भारत में उदारीकरण की आधुनिक प्रवृत्तियाँ बताइये ।
12. भारत में उदारीकरण की नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ।
13. उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का कृषि विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है? स्पष्ट कीजिए ।
14. उदारीकरण (आर्थिक सुधारो) का भारत के औद्योगिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
15. उदारीकरण (आर्थिक सुधारों) का भारतीय व्यापार के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है? स्पष्ट कीजिए ।

9.12 उपयोगी पुस्तकें

1. भारत में आर्थिक पर्यावरण - गुप्ता तथा स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था - नाथूरामका - सी. बी. एच., जयपुर ।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त एवं सुन्दरम, एस. चान्द्र, दिल्ली ।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था वातावरण एवं नीति, डिगरा, सुलतान चन्द, नई दिल्ली ।
5. Business Environment-Francis cherunilan,Himalaya Publishing House, Delhi.

6. भारत - 2008
7. आर्थिक समीक्षा - 2007-08

इकाई-10 : वैश्वीकरण एवं स्वदेशी
(Globalisation and Swadeshi)

इकाई की रूपरेखा :

10.1 प्रस्तावना
10.2 वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) का अर्थ एवं परिभाषा
10.3 भूमण्डलीकरण को बढ़ावा देने वाले घटक/कारण
10.4 वैश्वीकरण के लाभ/सकारात्मक पक्ष
10.5 वैश्वीकरण के दोष/दुष्प्रभाव
10.6 स्वदेशी विचारधारा
10.7 स्वदेशी विचारधारा के भारतीय अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 स्व-परख प्रश्न
10.11 संदर्भ मथ

10.1 प्रस्तावना

विश्व व्यापार संगठन के प्रावधान लागू होने के बाद व्यापारिक दृष्टि से पूरा विश्व एक बाजार बन गया है । भारत भी विश्व व्यापार संगठन (WTO) का सदस्य है । अत: यह भी इसके प्रावधानों से बंधा हुआ है । इस कारण भारत को भी अपनी अर्थव्यवस्था को पूरे विश्व के लिए खोलना पड़ा है । वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण के इस दौर ने हमारी प्राचीन स्वदेशी विचारधारा को हिला कर रख दिया है । गाँधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन के बल पर देश को आजादी दिलायी । हमने अपनी योजनाओं में भी आत्मनिर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य रखा जो स्वदेशी विचारधारा के पोषण से ही सम्भव था । वैश्वीकरण एवं स्वदेशी विचारधारा को विस्तार से निम्नांकित रूपों में देखा जा सकता है ।

10.2 वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) का अर्थ एवं परिभाषा

अर्थ :- वैश्वीकरण का तात्पर्य किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ने से है ताकि व्यावसायिक क्रियाओं का विश्व स्तर पर विस्तार हो सके तथा देशों की प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता का विकास हो । वैश्वीकरण को व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीयकरण के रूप में भी देखा जाता है ।

परिभाषाएँ

थॉमस मैथ्यू (Thomas Mathew) के अनुसार, "वैश्वीकरण परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो सीमा-पार क्रियाओं की वृद्धि तथा सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार के संयोग से घटित होती है तथा जो विश्व स्तर पर सम्प्रेषण में सहायक होती है ।"

श्रीकान्त सोनम (Shrikant Sonam) के अनुसार, "वैश्वीकरण से तात्पर्य किसी अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ना है ।"

एन. वाघुल (N. Vagual) के अनुसार, "वैश्वीकरण शब्द बाजार क्षेत्र के तीव्र गति से विस्तार को प्रकट करता है, जो विश्वव्यापी पहुँच रखता है ।"

प्रो. मधु दण्डवते (Prof. Madhu Dandvate) के मतानुसार, "वैश्वीकरण से आशय किसी एक अर्थव्यवस्था का विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ समन्वय करना है, ताकि विकास तथा व्यापार की सन्तुलित वृद्धि हो सके तथा सम्पत्ति के चक्राकार समुद्र के बीच से सम्पत्ति के द्वीपों को समाप्त किया जा सके ।"

इऐन क्लार्क (Ian Clark) के अनुसार, "वैश्वीकरण' अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्व्यवहारों की तीव्रता एवं विस्तार दोनों को दर्शाता है । पहले अर्थ में, वैश्वीकरण कुछ सम्बन्धित विचारों जैसे-एकीकरण, अन्तर्निर्भरता, बहुपक्षवाद, खुलापन तथा अन्तर्व्याप्तता से संबंधित है । दूसरे अर्थ में, यह इन प्रवृत्तियों के भौगोलिक विस्तार को प्रकट करता है एवं भूमण्डलवाद स्थानिक संकुचन, सार्वभौमिक एवं सजातीयता से संबंध रखता है ।"

जॉन नैसबिट तथा पेट्रिसिया अबुर्डिन (John Naisbitt and Patricia Aburdence) के अनुसार,"इसे ऐसे विश्व के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसमें सभी देशों का व्यापार किसी एक देश की ओर गतिमान हो रहा हो । इसमें सम्पूर्ण विश्व 'एक अर्थव्यवस्था' है और 'एक बाजार' है ।"

स्टोनर एवं अन्य (Stoner and Others) के अनुसार, "वैश्वीकरण दूसरे देशों में व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों के प्रति एक नये परिप्रेक्ष्य अथवा प्रवृत्ति को दर्शाता है । यह अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार संचालित किये जाने वाले व्यावसायिक सम्बन्धों के अभूतपूर्व क्षेत्र, स्वरूप, संख्या एवं जटिलता को दर्शाता है । "

निष्कर्ष रूप में, "वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें देश की अर्थव्यवस्था को सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है, ताकि सम्पूर्ण विश्व एक ही अर्थव्यवस्था एवं एक ही बाजार के रूप में कार्य कर सके तथा जिसमें सीमाविहीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों के लिए व्यक्तियों, पूँजी तकनीक, माल, सूचना एवं ज्ञान का पारस्परिक विनिमय सुलभ हो सके । वैश्वीकरण को 'सार्वभौमीकरण', 'भूमण्डलीयकरण' तथा अन्तर्राष्ट्रीयकरण' आदि नामों से भी पुकारा जाता है ।

10.3 भूमण्डलीकरण को बढ़ावा देने वाले घटक/कारण

विश्व में भूमण्डलीकरण का तेजी से विस्तार हो रहा है । इसके विस्तार के कारणों पर प्रकाश डालते हुए **'फोर्चून'** पत्रिका ने लिखा है कि, "पूर्व सोवियत संघ, चीन, भारत, इण्डोनेशिया तथा अधिकांश लेटिन अमेरिका ने व्यापारिक विश्व को बड़ा बना दिया है । जहाँ से अरबों लोग राजनीतिक तथा आर्थिक दीवारें लांघ कर बाहर आ रहे हैं । यह इतिहास में पूँजीवाद के भूगोल का सर्वाधिक नाटकीय परिवर्तन है ।" स्पष्ट है कि भूमण्डलीकरण में पूंजीवाद एवं साम्यवादी सभी देशों को अपने आगोश में ले लिया है । इससे विश्व अर्थ, परिवहन, संचार, व्यापार, सेवा

आदि सभी दृष्टियों से सिमट कर छोटा हो गया है । भूमण्डलीकरण को बढ़ाना देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:-

(1) **अर्थव्यवस्था का उदारीकरण :-** विकसित देशों की आर्थिक नीतियाँ तो सदैव से उदारीकरण की रही हैं किन्तु विकासशील देशों ने भी उदारीकरण की नीति को अपनाते हुए विदेशी पूँजी के लिए अपने द्वारा खोल दिये हैं । इन देशों ने उद्योग व व्यापार की प्रक्रिया का भी सरलीकरण कर दिया है।

(2) **विकसित तकनीक -** तकनीकी विकास के साथ-साथ विश्व एक छोटे से क्षेत्र में बदल गया है । परिवहन व संचार सुविधाओं के विस्तार ने दूरियाँ कम कर दी है । तकनीकी विकास ने भूमण्डलीकरण को सरल बना दिया है ।

(3) **समाजवाद का समापन :-** विश्व से समाजवाद व साम्यवादी अर्थव्यवस्था के पतन के साथ ही वैश्वीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी । सोवियत रूस के विघटन, चीन व लेटिन अमेरिकी देशों में उदार नीतियों के फलस्वरूप वैश्वीकरण को बढ़ावा मिला ।

(4) **पारस्परिक निर्भरता :-** विश्व का कोई भी देश पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर नहीं है । सभी देशों को कच्चे माल, संयंत्र, बाजार, तकनीकी आदि के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहना होता है, इससे वैश्वीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है ।

(5) **तीव्र विकास की चाह :-** तीव्र आर्थिक विकास की लालसा ने देश के विकास में सहयोग देने वालों के लिए अपने द्वारा खोल दिये हैं । इससे वैश्वीकरण बढ़ा है ।

(6) **परिवर्तनों के साथ समन्वय :-** विश्व में विगत वर्षों में भारी आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन आये हैं । किसी भी देश को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इन परिवर्तनों के साथ समन्वय करना होता है । इससे वैश्वीकरण बढ़ा है ।

(7) **बाजार का विस्तार :-** बड़े पैमाने के उत्पादन को बेचने के लिए स्वदेशी बाजार छोटे पड़ जाते है । अत: बाजार का विस्तार करने के लिए वैश्वीकरण आवश्यक हो गया है ताकि बड़े पैमाने से लाभ प्राप्त कर लाभदायकता को बनाये रखा जा सके ।

(8) **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा :-** भूमण्डलीकरण ने संरक्षणात्मक व्यापारिक नीतियों को समाप्त कर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है ।

10.4 वैश्वीकरण के लाभ / सकारात्मक पक्ष

विकासशील देशों के संदर्भ में वैश्वीकरण की नीति के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्ष हैं । वास्तव में आज व्यावसायिक दृष्टि से विश्व छोटा होता जा रहा है । आज विश्व का प्रत्येक देश वैश्वीकरण की नीति को अपना रहा है । यह बीसवीं शताब्दी की एक प्रमुख आर्थिक घटना बन गई हैं । भारत में भी1991 के बाद धीरे-धीरे वैश्वीकरण की नीति को अपनाना प्रारम्भ कर दिया गया था । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई है । वैश्वीकरण की नीति के सकारात्मक प्रभावों को दो भागों में बाँट कर देखा जा सकता है:-

(A) **व्यवसाय पर प्रभाव :** अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण से व्यवसाय का भी भूमण्डलीकरण हो जाता है । इससे व्यवसाय पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं-

(1) **बाजार का विस्तार :-** भूमण्डलीकरण की नीति के कारण बाजार का विस्तार होता है । व्यावसायिक संस्थाओं को पूरे विश्व में व्यवसाय करने की छूट मिल जाने से उनको विश्वव्यापी बाजार के लाभ प्राप्त होते हैं । बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए राष्ट्रीय सीमाएँ एवं विनिमय महत्त्वहीन हो जाते हैं, क्योंकि ये विश्व के लगभग सभी देशों में व्यापार करती हैं ।

(2) **विशाल आकार :-** वैश्वीकरण के कारण व्यावसायिक संस्थाओं का आकार बहुत बढ़ा हो जाता है, क्योंकि इनका व्यावसायिक क्षेत्र कुछ देश न होकर अनेक देश होते है । अत: ये बड़े पैमाने पर उत्पादन करती हैं ।

(3) **उत्पादन क्षमता का स्वतंत्र निर्धारण :-** वैश्वीकरण का व्यवसाय पर यह प्रभाव होता है कि संस्थाऐं अपनी उत्पादन क्षमता स्वयं तय नहीं कर पाती है । उत्पादन क्षमता का निर्धारण केवल बाजार शक्तियों द्वारा स्वतंत्र रूप से होता है ।

(4) **स्वदेशी बहुराष्ट्रीय निगम :-** वैश्वीकरण से देश में बहुराष्ट्रीय निगमों / कम्पनियों के साथ-साथ स्वदेशी निगमों का विकास भी होता है । भारत में भी अब ऐसी ही बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास हो रहा है ।

(5) **स्वतंत्र मुद्रा बाजार का विकास :-** भूमण्डलीकरण नीति के परिणामस्वरूप सभी देशों में स्वतंत्र मुद्रा बाजार का विकास सम्भव हुआ है । मुद्रा की विनिमय दरें भी बाजार शक्तियों या माँग एवं 'पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं ।

(6) **तकनीकी विकास :-** भूमण्डलीकरण से तकनीकी ज्ञान सर्वत्र उपलब्ध होता है । इससे तकनीकी शोध, अनुसंधान, आविष्कार तथा औद्योगिक उत्पादन की नवीन तकनीकों का विकास होता है ।

(7) **व्यवसाय का स्थानान्तरण :-** भूमण्डलीकरण के कारण व्यवसायिक संस्थाओं को स्थानान्तरण की सुविधा मिल जाती है । उदाहरणार्थ, खाड़ी युद्ध के समय कुवैत बैंक ने अपने कारोबार को बहरीन में प्रत्योरोपित करना उपयुक्त समझा । अत: उस बैंक की सभी आवश्यक सूचनाओं एवं आंकड़ों को फैक्स के माध्यम से बहरीन भेजकर अपना व्यवसाय वहीं से जारी रख लिया ।

(8) **संसाधनों का प्रवाह :-** भूमण्डलीकरण से विश्व के सभी देशों में श्रम, पूँजी, माल, तकनीक, सूचना आदि का प्रवाह सरल हो जाता है । यह प्रवाह सभी देशों से एक देश में ही नहीं, बल्कि एक देश से सभी देशों की ओर सम्भव होगा ।

(9) **ब्राण्ड विकास:-** भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था में 'ब्राण्ड' वाली वस्तुओं का व्यवसाय अधिक होता है । ऐसा केवल पूँजीगत माल या स्थायी वस्तुओं के सम्बन्ध में ही नहीं होता, बल्कि साधारण पेय पदार्थो, खाद्यान्नों, कपड़ों आदि के संबंध में भी होता है । दूसरे शब्दों में, 'ब्राण्ड ईक्विटी' की भरमार होती है ।

(10) **प्रतिस्पर्द्धी क्षमता का विकास :-** भूमण्डलीकरण के कारण व्यवसाय की प्रतिस्पर्द्धी क्षमता का विकास होता है । किसी संस्था के उत्पादों की मांग बढ़ती है, तो उत्पादन

वृहद् एवं अनुकूलतम पैमाने पर किया जाता है तथा नवीन तकनीकों एवं संसाधनों का उपयोग किया जाता है जिससे व्यवसाय की प्रतिस्पर्द्धी क्षमता बढ़ जाती है ।

(11) **अनेक निर्माण संयंत्र :-** भूमण्डलीकरण नीति के परिणामस्वरूप एक व्यावसायिक संस्था के अनेक निर्माण संयंत्र हो सकते है । ये संयंत्र परिस्थितियों एवं मितव्ययताओं का लाभ उठाने की दृष्टि से अलग-अलग स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं । इन संयंत्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर प्राय: इस बात का कोई संकेत नहीं होता है कि ये कहाँ बनाये गये हैं ।

(12) **वातावरण के प्रति सजगता :-** भूमण्डलीकरण से व्यवसाय के वातावरण घटकों की विविधता एवं जटिलता बढ़ जाती है । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में तो संस्था को कुछ बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं जैसे- आपसी व्यापारिक सम्बन्ध, सैन्य संतुलन, संसाधन हस्तान्तरण की सम्भावना आदि । किन्तु भूमण्डलीकरण के कारण व्यावसायिक संस्थाओं को अनेक बातों, जैसे-जनसंख्या, जलवायु, स्वास्थ्य, सुरक्षा की लागतें बीमारियाँ, औषधियाँ, शस्त्र व्यापार, अल्पसंख्यक, शरणार्थी आदि का ध्यान रखना पड़ता है ।

(13) **विस्तृत पूँजी बाजार :-** भूमण्डलीकरण नीति को अपनाने से व्यवसाय को विस्तृत पूँजी बाजार उपलब्ध होगा । इससे सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध होगा । प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ेगा तथा देशी कम्पनियों को विदेशों में अंश पूँजी जारी करने में भी सुविधा होगी ।

(14) **कुशल सेवाएँ :-** वैश्वीकरण से सेवा क्षेत्र का तीव्र गति से विकास हुआ है और साथ ही कुशल सेवाओं की प्राप्ति भी हुई है । दूरसंचार, परिवहन, बैंक, बीमा आदि सेवाओं में वैश्वीकरण के कारण ही सुधार हुआ है ।

(15) **अच्छे श्रम सम्बन्ध :-** भूमण्डलीकरण से श्रम गतिशीलता में वृद्धि हुई है । इससे मालिक एवं कर्मचारी के संबंधों को नया आयाम मिला है । मालिक एवं कर्मचारी अब एक नाव में सवार के रूप में माने जाने लगे हैं ।

(16) **व्यावसायिक स्वतंत्रता :-** भूमण्डलीकरण की नीति ने देश में व्यावसायिक स्वतंत्रता को जन्म दिया है । व्यावसायिक संस्थाएँ नियमनों, लाइसेंसों, इन्स्पेक्टरों, अफसरशाही, प्रशुल्कों, अनुमोदनों आदि के बन्धनों से मुक्त हुई हैं ।

(17) **पेशेवर प्रबन्ध का विकास :-** इस नीति से देश में पेशेवर प्रबन्ध का विकास हुआ है ।

(18) **संयोजनों को बढ़ावा :-**भूण्डलीकरण की नीति से देश की कई छोटी-बड़ी उद्योग संस्थाओं में संयोजनों को बढ़ावा मिला है । इससे कम या अलाभकारी संस्थाओं के साथ जोड़ कर उनकी सफलता को सुनिश्चित किया जा सकेगा ।

(B) **सामाजिक-आर्थिक प्रभाव :-** वैश्वीकरण की नीति का सामाजिक-आर्थिक पहलुओं पर निम्न प्रभाव पड़ा है:-

(1) **आधारभूत संरचना का विकास :-** भूमण्डलीकरण की नीति से देश में आधारभूत संरचना को विकास हुआ है । विद्युत, सड़क, रेलें, बन्दरगाह, वायु परिवहन, औद्योगिक शक्ति के वैकल्पिक स्रोतों, दूर संचार आदि के क्षेत्र में तीव्र विकास वैश्वीकरण की ही देन है ।

(2) **बचत एवं विनियोग में वृद्धि :-** भूमण्डलीकरण के कारण रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने तथा आय बढ़ने से देश में बचत एवं विनियोग दोनों ही बढेगें । इससे देश में पूँजी निर्माण की गति में वृद्धि होगी।

(3) **भुगतान संतुलन :-** इस नीति को अपनाने से देश में भुगतान संतुलन साम्यावस्था में बना रहेगा। ऐसा आयातों एवं निर्यातों के संतुलन से सम्भव हो सकेगा ।

(4) **सामाजिक क्षेत्र में भारी विनियोग :-** भूमण्डलीकरण की नीति के कारण सामाजिक क्षेत्रों में भी भारी विनियोग हुआ है । शिक्षा, चिकित्सा, परिवार कल्याण आदि पर भारी राशि विनियोग होने की सम्भावना है ।

(5) **रोजगार में वृद्धि :-** भूमण्डलीकरण से रोजगार में अवसर बढ़े हैं । वृहद् उद्योगों में प्रत्यक्ष रोजगार अवश्य कम हो सकता है, किन्तु इससे परोक्ष रोजगार तथा सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में अवश्य वृद्धि होती है । लघु एवं कुटीर उद्योगों में रोजगार बढ़ता है । इसके अतिरिक्त स्वरोजगार के अवसर भी बढ़ते है ।

(6) **आपसी सहयोग में वृद्धि :-** इस नीति को अपनाने से प्रमुख सामाजिक समूहों-ग्राहकों कर्मचारियों, निवेशकों तथा सरकार में आपसी सहयोग बढ़ता है ।

(7) **सामाजिक समस्याओं का समाधान -** इस नीति से देश की सामाजिक समस्याओं यथा-गरीबी, बेकारी, बीमारी, अज्ञानता आदि का निवारण भी हो सकता है ।

(8) **प्रतिभा पलायन पर रोक :-** हमारे देश में अनेक प्रतिभावान व्यक्ति है, जिनको कई बहुराष्ट्रीय निगमों एवं खुली अर्थव्यवस्था वाले देशों ने आकर्षित किया है । भूमण्डलीकरण की नीति अपनाने से हमारे देश की प्रतिभाओं को देश में भी अवसर मिल सकेंगे और उन्हें अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं होगी ।

(9) **राष्ट्रीय सीमाओं की समाप्ति :-** भूमण्डलीयकरण की नीति से देश की राष्ट्रीय सीमाएँ विश्व में विलीन हो जायेंगी ।

(10) **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग :-** एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ जाने से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में भी वृद्धि होती है ।

(11) **उन्नत जीवन-स्तर :-** भूमण्डलीकरण से देश के निवासियों के जीवन-स्तर में सुधार होता है । श्रेष्ठ वस्तुएँ, दवाएँ, शिक्षा, मनोरंजन तथा अधिक आराम का समय उपलब्ध होने से लोगों का जीवन अधिक सुखमय एवं उच्च स्तर का होने लगता है ।

10.5 वैश्वीकरण के दोष / दुष्प्रभाव

वैश्वीकरण नीति के नकारात्मक प्रभावों को भी हम दो वर्गों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं:-

(A) **व्यवसाय पर दुष्प्रभाव :-** भूमण्डलीकरण नीति के व्यवसाय पर निम्नांकित दुष्प्रभाव हो सकते हैं:-

(1) **गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा :-** इस नीति के अपनाने से व्यवसाय में गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा जन्म लेती है जिससे अनेक संस्थाएँ प्रतिस्पर्द्धा की आंधी में समय से पूर्व ही समाप्त हो जाती है । इससे औद्योगिक वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

(2) **संरक्षणों की समाप्ति :-** सभी देशों में कुछ उद्योगों को सरकार द्वारा संरक्षण दिया जाता है, किन्तु इस नीति से सभी संरक्षण समाप्त हो जायेंगे जिससे नये तथा अल्पविकसित उद्योगों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा ।

(3) **लघु एवं कुटीर उद्योगों के अस्तित्व को खतरा:-** इस नीति का एक दुष्प्रभाव यह भी है कि इससे लघु एवं कुटीर उद्योगों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जायेगा । यदि ऐसा नहीं होता है, तो भी इन उद्योगों को बड़े उद्योगों के साथ समन्वय या संयोजन करके ही कार्य करना पड़ेगा । इससे लघु एवं कुटीर उद्योगों के संचालकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित हो जायेगी ।

(4) **घरेलू संस्थाओं का सीमित क्षेत्र :-** इस नीति से घरेलू संस्थाओं का कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित हो जायेगा । इनका अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जायेगा ।

(5) **आयात महँगे:-** यदि देश के निर्यातों में वृद्धि नहीं हो पाती है तो देश में आयात बहुत महँगे पड़ेंगे ।

(6) **व्यावसायिक अधिग्रहण :-** भूण्डलीकरण से बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं से छोटी संस्थाओं का अधिग्रहण करने या उनका अपने में संविलयन करने की प्रवृत्ति बढ़ती है । इससे छोटी संस्थाओं के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

(7) **एकाधिकार का जन्म :-** बड़ी व्यावसायिक संस्थाओं के जन्म से एक समय के बाद आर्थिक एकाधिकार स्वत: ही उत्पन्न हो जाता है ।

(8) **बाहरी संस्थाओं का आधिपत्य:-** भूमण्डलीकरण से देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ेगा । इससे स्थानीय उपक्रमों पर बह्रा संस्थाओं का नियन्त्रण होगा । इस प्रकार धीरे-धीरे बाहरी संस्थाओं का देश के व्यवसाय पर आधिपत्य हो जायेगा ।

(B) **सामाजिक-आर्थिक दुष्प्रभाव:-** भूण्डलीकरण नीति के निम्न सामाजिक-आर्थिक दुष्प्रभाव भी होते है:-

(1) **दैनिक जीवन की वस्तुएँ महँगी:-** इस नीति के अपनाने से देश में उत्पादित दैनिक जीवन की वस्तुओं को खुला बाजार उपलब्ध होगा । फलत: सब्जियाँ, फल, अनाज, अण्डे आदि दैनिक जीवन की वस्तुएँ भी सम्पूर्ण विश्व के लिए उपलब्ध रहेगी । इससे हमारे देश में इन वस्तुओं की कीमतें बढ़ जायेगी ।

(2) **योजनाओं की प्राथमिकता प्रभावित:-** भूमण्डलीकरण की नीति से हमारे जैसे विकासशील देशों की योजनाओं की प्राथमिकता प्रभावित होगी जिससे जनसाधारण की समस्याओं की उपेक्षा हो सकती है । देश का संतुलित आर्थिक विकास भी प्रभावित हो सकता है ।

(3) **बेरोजगारी:-** इस नीति के अपनाने से बेरोजगारी भी बढ़ सकती है । उद्योगों में यंत्रीकरण बढ़ने से बेरोजगारी की सम्भावना बहुत अधिक है । परन्तु इस समस्या के समाधान के लिए सभी देशों में ग्रामीण विकास एवं सेवा क्षेत्र के विकास पर पर्याप्त ध्यान देना होगा ।

(4) **असमानताओं में वृद्धि:-** भूमण्डलीकरण से एक और विश्व में एक अर्थव्यवस्था एवं एक बाजार होने की दुहाई दी जाती है, किन्तु दूसरी ओर यह भय भी व्याप्त है कि देशों में असमानताएँ एवं दूरियाँ भी बढ़ सकती है । इस संदर्भ में प्राय: यह कहा जाता है कि इस नीति में "सभी समान होंगे, किन्तु कुछ अन्य की तुलना में अधिक समान होगे ।" दूसरे शब्दों में, राष्ट्रों में असमानताएँ बढ़ने की पूरी सम्भावना है ।

(5) **राष्ट्रीय सार्वभौमिकता प्रभावित:-** इस नीति के अपनाने से सभी राष्ट्र व्यावसायिक बाजार बन जायेंगे । इससे राष्ट्रों की सार्वभौमिकता पर आँच आ सकती है ।

10.6 स्वेदशी विचारधारा

स्वेदशी की विचारधारा स्वावलम्बन व आत्म निर्भरता से जुड़ी हुई है । स्वदेशी का तात्पर्य स्व (अपने) देश(राष्ट्र) द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करने से संबंधित है । लेकिन यह विचार संकुचित है । वास्तव में स्वदेशी का विचार देश प्रेम की साकार और व्यावहारिक अभिव्यक्ति है । देश प्रेम का अर्थ शेष विश्व से अपने आपको अलग थलग करना नहीं है । भारतीय दृष्टि से जहाँ हम "वसुधैव कुटुम्बकम्" का व्यापक विचार रखते हैं, स्वदेशों का तात्पर्य संकुचित अर्थ से नहीं लिया जा सकता है । वास्तव में स्वदेशी का विचार मानवीय चेतना के स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रवाद का विस्तार है ।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह महसूस किया गया कि आर्थिक स्वावलम्बन के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता को अधिक दिनों तक अक्षुण्ण नहीं रखा जा सकता है । इसलिए हमने अपनी योजनाओं में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य रखा तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को अपनाया । स्वदेशी का विचार भारतीय योजनाओं को "आत्म निर्भरता प्राप्ति के लक्ष्य" की ओर ले जाने का मार्ग है । स्वदेशी का विचार जानने से पूर्व हमें आत्मनिर्भरता और अन्त: पर्याप्तता शब्दों में अन्तर को समझना होगा । अन्त: पर्याप्तता का तात्पर्य है कि वे सभी वस्तुएँ एवं सेवाएँ देश के अन्दर ही उत्पन्न हो जो इसे चाहिए और इनके लिए वह दूसरों पर निर्भर न रहे । इस प्रकार अन्त: पर्याप्तता में आयात की कोई गुंजाइश नहीं होती है । इसके विपरीत आत्मनिर्भरता का तात्पर्य अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त मात्रा में अतिरेक उत्पन्न करना ताकि उनका निर्यात कर अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ दूसरे देशों से आयात की जा सके । इस प्रकार आत्मनिर्भरता में विदेशी व्यापार की मनाही नहीं है । वास्तव में कोई भी देश पूर्ण रूप से स्वावलम्बी नहीं हो सकता है और न ही सभी प्रकार के आयातों का परित्याग कर सकता है । अत: स्वदेशी की विचारधारा आत्म-निर्भरता से संबंधित है न कि अन्त: पर्याप्तता से ।

स्वदेशी की विचारधारा स्वावलम्बन से जुड़ी हुई है । भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में स्वदेशी विचारधारा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । गाँधीजी का यह मानना था कि भारत गाँवों का देश है तथा सच्ची स्वतंत्रता तभी प्राप्त हो सकती है जब प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी हो, अर्थात् गाँव के व्यक्ति मिल जुल कर अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ एवं सेवायें स्वयं निर्मित करें, और इन्हें अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए किसी पर भी निर्भर न रहना पड़े । गाँधीजी ने स्वदेशी के बारे में कहा था कि, "वह किसी के देश में जो पैदा होता है उसका उपयोग मात्र नहीं इसका

अर्थ अपनी खुद की ताकत पर भरोसा करना है जो हमारे शरीर, दिमाग और आत्मा की ताकत है ।..... स्वदेशी मानव जीवन के शाश्वत् मूल्यों के साथ-साथ समाज एवं प्राकृतिक भी है ।"

स्वदेशी' विचारधारा भी स्वावलम्बन की विचारधारा पर आधारित है, यह गाँवों की बजाय एक देश के संदर्भ में लागू होती है । इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक देश को अपनी आवश्यकता की वस्तुएं, स्वयं उत्पन्न करनी चाहिये, और यथासम्भव दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये । इसी कारण विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में हमने आत्म-निर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य रखा है, जिसके परिणामस्वरूप हमने अनेक क्षेत्रों में सफलता अर्जित की और विदेशों पर निर्भरता में भी कमी आयी। लेकिन 1991 की नयी उदार नीति के बाद हमने आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को छोड़ दिया है और वैश्वीकरण की नीति को अपनाते हुए स्वतंत्र व्यापार की नीति की ओर अग्रसर हो रहे है । इस नीति के अन्तर्गत हमने आयात-निर्यात को काफी सीमा तक नियन्त्रण मुक्त कर दिया है । फलस्वरूप हम दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का भी आयात करने लगे है । वैश्वीकरण की नीति के परिणामस्वरूप भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन हुआ है ।, इससे छोटी स्वदेशी कम्पनियों के समक्ष अपने अस्तित्व का संकट उपस्थित हो गया है । बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साधन तथा तकनीक अधिक श्रेष्ठ होने के कारण भारतीय कम्पनियाँ इनकी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पा रही है । परिणामस्वरूप या तो स्वदेशी उद्योगपति अपनी कम्पनियाँ विदेशियों को बेच रहे हैं अथवा उन्हें बन्द करना पड़ रहा है । इस प्रकार वैश्वीकरण के कारण भारतीय कम्पनियों की स्थिति खराब होती जा रही है ।

'स्वदेशी आन्दोलन' गाँधीजी के सत्याग्रह की उपज है । यह एक रचनात्मक कार्य है । स्वदेशी को गाँधीजी ने 'कामधेनु' बताया है, जो हमारी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करती हैं तथा हमारी कठिन समस्याओं का समाधान करती है । गाँधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन के माध्यम से जनता में जागृति उत्पन्न की है । गाँधीजी के स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत बहिष्कार, बायकॉट व विदेशी वस्त्रों को होली तक शामिल है ।

गाँधीजी का स्वदेशी आन्दोलन हमारे सम्मान की रक्षा करता है, प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है, ग्राम स्वराज की स्थापना करता है तथा सत्य, अहिंसा व समता पर आधारित समाज की स्थापना करता है । स्वदेशी आन्दोलन दूसरों के प्रति द्वेष का भाव नहीं रखता है, यह तो केवल इस बात की विनम्र स्वीकृति है कि व्यक्ति की कर्त्तव्यपालन की क्षमताएँ सीमित हैं । गाँधीजी के अनुसार, स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है, जिसका तात्पर्य है, निकटतम उपलब्ध संदर्भों के प्रति कर्त्तव्यों का पालन प्रारम्भ करके धीरे-धीरे कर्त्तव्यों को व्यापक बनाये जाने की भावना है ।

स्वदेशी के माध्यम से व्यक्ति अपने समर्पण को अपनी क्षमता के अनुसार सीमित करके अपने आस-पड़ौस व गाँव की सेवा का संकल्प लेता है । शनैः-शनैः स्वदेशी की यह भावना सारे संसार में फैल जाती है । गाँधीजी ने स्वदेशी की भावना को धर्म के विरूद्ध नहीं बताया है, उनका मानना है कि जो चीज देश में नहीं बन सकती उसे विदेश से मांगने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन जहाँ तक सम्भव हो अपने यहाँ की पैदावार व माल को ही अधिकाधिक अपनाया जाये ।

स्वदेशी का पालन करने वालों को विदेशी के प्रति घृणा व द्वेष भी नहीं रखना चाहिये । ऐसा करने से स्वदेशी विचारधारा का विरोध भी नहीं होगा ।

गाँधी ने भारतीय संदर्भ में चरखा व खादी को स्वदेशी पर आधारित अर्थशास्त्र के दो प्रभावशाली प्रतीक बताया था । स्वदेशी की विचारधारा को प्रोन्नत करने के लिए उन्होंने कुछ निर्देश दिये थे और कहा था कि जो भी स्वदेशी के महत्त्व को समझता है व निम्न में से एक या अधिक सभी को अपना सकता है:-

(1) आप स्वयं बुनाई सीखिये, चाहे उसका उद्देश्य मनोरंजन हो या वस्तु की देखभाल करना ही क्यों न हो ।

(2) आप चाहे पुरूष हो या स्त्री, कताई सीखिये व कीजिये । यदि आपको मुद्रा की आवश्यकता हो तो श्रम का मूल्य प्राप्त कीजिये, अन्यथा एक घेरे का श्रम अपने राष्ट्र को उपहार स्वरूप प्रदान कीजिए ।

(3) वर्तमान हस्त करघे में सुधार कीजिए, चरखे में भी सुधार कीजिये । यदि आप अमीर हैं तो उन लोगों के लिए धन की व्यवस्था कीजिये जो ऐसा कर सकते हैं ।

(4) अपने हाथ से ही कते हुए व हाथ से ही बुने हुए कपड़ों को संरक्षण प्रदान के लिए स्वदेशी की प्रतिज्ञा लीजिये ।

(5) हाथ से बुने हुए कपड़े के बारे में अपने मित्रों को अवगत कराइये तथा तुम्हारी बहिनों द्वारा बुनी हुई खादी में अधिक कला है, इसका विश्वास दिलाइये ।

(6) आप एक माता होने के नाते अपने बच्चों को स्वच्छ व राष्ट्रीय संस्कार प्रदान कीजिए तथा उन्हें खादी के सुन्दर कपड़े पहनाइये जो कि भारतीय कला की उपज है ।

10.7 स्वदेशी विचारधारा के भारतीय अर्थव्यवस्था पर निम्नलिखित सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचर होते है:-

सकारात्मक प्रभाव:-

(1) स्वदेशी विचारधारा ने जनता को स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया है ।

(2) स्वदेशी विचारधारा ने बंधुत्व व देशप्रेम की भावना पर बल दिया है ।

(3) स्वदेशी विचारधारा ने भारतीयों की हस्तकला को प्रोत्साहित किया है ।

(4) स्वदेशी विचारधारा ने आयातों को हतोत्साहित किया है ।

(5) स्वदेशी विचारधारा रोजगारोन्मुखी है ।

(6) स्वदेशी विचारधारा ने लघु व कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया है ।

(7) इससे विदेशों पर निर्भरता में कमी आयी है तथा जनता में जागृति उत्पन्न हुई है ।

नकारात्मक प्रभाव :

(1) स्वदेशी विचारधारा ने बाजार को संकुचित कर दिया है ।

(2) स्वदेशी विचारधारा पिछली सदी की ओर ले जाने वाली है ।

(3) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा में स्वदेशी कम्पनियों के अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है ।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हतोत्साहित हुआ है ।

(5) निर्यातों में कमी आयी है ।

(6) आपसी सहयोग में कमी आयी है । पारस्परिक प्रेम में कमी आयी है ।

इस प्रकार स्वदेशी विचारधारा के भी वैश्वीकरण की भाँति सकारात्मक व नकारात्मक पहलू है, जो विकासशील राष्ट्र की प्रगति के लिए शुभ संकेत नहीं हैं ।

10.8 सारांश

विश्व में दो प्रकार की अर्थव्यवस्थायें रही है । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था लाभ, स्वप्रेरणा, वैश्वीकरण व खुलेपन की पक्षधर रही है । वहीं साम्यवादी अर्थव्यवस्था सरकारी नियंत्रण, नियमन व जनहित की पक्षधर रही है । साम्यवादी अर्थव्यवस्था वाले प्रमुख देश सोवियत रूस के विघटन के बाद पूँजीवादी व्यवस्था विश्व पर छाने लगी । यहाँ तक की साम्यवाद के प्रबल समर्थक चीन ने भी किसी ने किसी रूप में पूजींवाद को प्रोत्साहित किया । तीव्र विकास की लालसा ने सभी देशों को अपने हित के लिए विश्व के अन्य देशों से आर्थिक सम्बन्धों को बढ़ाने के लिए प्रेरित किया । फलस्वरूप वैश्वीकरण का तेजी से विस्तार हुआ । वैश्वीकरण के आर्थिक व सामाजिक लाभ भी है तो कुछ दोष भी है । हमारे देश ने भी 1991 के बाद उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति को अपनाया और फलस्वरूप अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास हुआ । किन्तु जहाँ वैश्वीकरण के लाभ हैं वहीं दोष भी हैं । आज अमेरिका की आर्थिक मंदी के प्रभाव से विश्व का कोई भी देश अछूता नहीं है । यह वैश्वीकरण का ही परिणाम है कि अमेरिका का आर्थिक संकट भारत को भी बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है । ऐसे में नियंत्रणों एवं नियमनों की आवश्यकता अनुभव होने लगी है । स्वदेशी की विचारधारा वैश्वीकरण के विचार की विरोधी नहीं है । किन्तु इसमें यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओं को प्राथमिकता दी जाती है । स्वदेशी का भाव स्वावलम्बन को बढ़ाता है । अत: आधुनिक सन्दर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ जाती है । आज अमेरिका की गलत नीतियों का परिणाम विश्व भुगत रहा हैं । यदि स्वदेशी का भाव विकसित होता है तो उसकी गलतियों की सजा अन्य देशों को नहीं भुगतनी पड़ती ।

10.9 शब्दावली

- **वैश्वीकरण :-** वैश्वीकरण का तात्पर्य किसी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य देशों की अर्थव्यवस्था से जोड़ना है ।
- **अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार :-** जब दो व अधिक देशों की राजनैतिक सीमाओं के बीच व्यक्तियों, वस्तुओं, तकनीकी ज्ञान, पूँजी, सूचना आदि का आदान-प्रदान होने लगता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार कहते हैं ।
- **आधारभूत संरचना :-** ऐसी संरचना जो देश के आर्थिक विकास के लिए आधार का काम करती है जैसे सड़क, रेल, दूरसंचार, बैंक व बीमा, विद्युत आदि ।
- **अन्त: पर्याप्तता :-** इसका तात्पर्य यह है कि वे सभी वस्तुएँ एवं सेवायें देश के अन्दर ही उत्पन्न की जाये जिनकी देश को आवश्यकता है तथा किसी भी वस्तु व सेवा के लिए दूसरे देश पर निर्भर न रहा जाये ।

- **आत्मनिर्भरता :-** आत्मनिर्भरता का तात्पर्य अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त अतिरेक उत्पन्न करना है ताकि निर्यात द्वारा आवश्यक वस्तुओं का आयात किया जा सके।
- **स्वदेशी :-** स्वदेशी का तात्पर्य मानवीय चेतना के स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रवाद का विस्तार है ।

10.10 स्वपरख प्रश्न

1. वैश्वीकरण से क्या आशय है?
2. वैश्वीकरण को परिभाषित कीजिये ।
3. स्वदेशी विचारधारा क्या है?
4. वैश्वीकरण के व्यवसाय पर पड़ने वाले चार सकारात्मक प्रभाव बताइये ।
5. वैश्वीकरण नीति के चार सामाजिक-आर्थिक दुष्प्रभाव बताइये ।
6. स्वदेशी विचारधारा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
7. वैश्वीकरण को परिभाषित कीजिये तथा इसके भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभाव लिखिये ।
8. वैश्वीकरण का अर्थ बताइये तथा इसके भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का वर्णन कीजिये ।
9. स्वदेशी विचारधारा पर एक लेख लिखिये ।
10. "वैश्वीकरण बनाने स्वदेशी" पर एक निबन्ध लिखिये ।

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

- भारत में आर्थिक पर्यावरण - गुप्ता एवं स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
- व्यावसायिक संगठन- नौलखा, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।
- भारतीय अर्थव्यवस्था - नाथूरामका - सी. बी. एच., जयपुर ।
- भारतीय अर्थव्यवस्था - दत्त एवं सुन्दरम, एस. चन्द्र, दिल्ली ।
- भारत, - 2008
- आर्थिक समीक्षा, - 2007-08

इकाई-11:भारतीय विदेशी व्यापार-निर्यात संवर्द्धन

इकाई की रूपरेखा :

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 विदेशी व्यापार की आवश्यकता एवं महत्त्व

11.3 भारत का विदेशी व्यापार

11.4 भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख प्रवृत्तियॉ

11.5 निर्यात प्रोत्साहन से आशय

11.6 निर्यात प्रोत्साहन हेतु सरकारी प्रयास

11.7 विनिमय दर का अर्थ

11.8 रुपये की मजबूती व डालर के टूटने के कारण

11.9 सारांश

11.10 शब्दावली

11.11 स्व-परख प्रश्न

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- विदेशी व्यापार का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व
- भारत के विदेशी व्यापार के विभिन्न आयाम
- भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख प्रवृत्तियां
- निर्यात प्रोत्साहन हेतु सरकारी प्रयास ।

11.1 परिचय

आजादी के पूर्व भारत विकसित देशों को खाद्यान्न तथा कच्चे माल का निर्यात करता था और इन देशों से निर्मित माल का आयात करता था । इससे देश में औद्योगीकरण की स्थिति का विकास नहीं हो सका । घरेलू हस्तकला उद्योगों को इंग्लैण्ड में निर्मित उत्पादों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा ।

आजादी के पश्चात् सरकार द्वारा देश के औद्योगिक विकास के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में तीव्र औद्योगीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई । विकास आयात तथा रख रखाव आयात, उत्पादन की नई क्षमता उत्पन्न करने तथा मौजूदा क्षमता का विस्तार एवं अधिकतम उपयोग करने के लिए आवश्यक है । इससे आयातों में वृद्धि हुई और इन आयातों के भुगतान के लिए निर्यातों में वृद्धि करने के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये ।

विदेशी व्यापार देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है । विदेशी व्यापार का सम्बन्ध दो या दो देशों के बीच वस्तुओं तथा सेवाओं के लेन देन से है । एक देश अपने

देशवासियों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है । इसलिए विदेशी व्यापार पर निर्भर रहना पड़ता है (**प्रोफेसर रोबर्टसन** के अनुसार ' 'विदेशी व्यापार आर्थिक विकास का इंजिन माना जाता है । '' विदेशी व्यापार दोनों ही देशों के लिए लाभकारी होता है । तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश वस्तु के उत्पादन तथा वस्तु के आयात का निर्णय ले सकता है । इससे विभिन्न देशों में विदेशी व्यापार सम्बन्ध स्थापित होते है और आयात-निर्यात संभव होते है ।

11.2 विदेशी व्यापार की आवश्यकता एवं महत्त्व

विदेशी व्यापार की निम्न कारणों से आवश्यकता उत्पन्न होती है -

1. विदेशी व्यापार से देश के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता
2. विदेशी व्यापार से देश के उत्पादन के आधिक्य का निर्यात करके विदेशी विनिमय अर्जित किया जा सकता है ।
3. विदेशी व्यापार की सहायता से देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक वस्तुओं, जैसे - मशीनें, कच्चा माल, विदेशी पूंजी, तकनीकी ज्ञान आदि का आयात किया जा सकता है ।
4. बेलोचदार आयातों से विदेशी मुद्रा की मांग बढ़ती है और ऐसी स्थिति में निर्यातों में वृद्धि के लिए विदेशी व्यापार की आवश्यकता पड़ती है ।
5. अनुकूल भुगतान सन्तुलन की स्थिति प्राप्त करने के लिए विदेशी व्यापार की आवश्यकता होती है।
6. रियायती विदेशी सहायता के माध्यम से तीव्र आर्थिक विकास किया जाता है । इसके लिए विदेशी व्यापार की आवश्यकता होती है ।
7. विकासशील देशों में स्फीतिकारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करने हेतु आवश्यक वस्तुओं का आयात करने के लिए विदेशी व्यापार आवश्यक है ।
8. उत्पादन क्षमता में तीव्र वृद्धि करने के लिए विदेशी व्यापार की आवश्यकता है ।

11.3 भारत का विदेशी व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार के तीन आयाम हैं, जिनमें निम्नांकित हैं -

1. विदेशी व्यापार की मात्रा
2. विदेशी व्यापार की संरचना
3. विदेशी व्यापार की दिशा

(1) विदेशी व्यापार की मात्रा

भारत में विदेशी व्यापार की मात्रा योजना काल में तेजी से बड़ी है । व्यापार की प्रवृत्तियों तथा आयात एवं निर्यात में परिवर्तन विदेशी व्यापार के आकार एवं परिवर्तनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते है ।निर्यात एवं आयात के मूल्य में अन्तर देश के व्यापार सन्तुलन को दर्शाता है तथा यह मूल्य ही देश के भुगतान सन्तुलन के अन्तर्गत देश की कुल प्राप्तियों तथा कुल देनदारियों

को दर्शाता है । भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा को निम्न तालिका की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है -

तालिका 11.1

भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा (1950-51 से 2005-08)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार संतुलन
1950-51	606	608	-2
1960-61	642	1,122	-480
1970-71	1,535	1,634	-99
1980-81	6,711	12,549	-5,838
1990-91	32,553	43,198	-10,645
1991-92	44,041	47,851	-3,810
1992-93	53,688	63,375	-9,687
1993-94	61,751	73,101	-3,350
1994-95	82,674	89,971	-7,297
1995-96	1,06,353	1,22,678	-16,325
1996-97	1,18,817	1,38,920	-20,103
1997-98	1,30,100	1,54,176	-24,076
1998-99	1,39,752	1,78,332	-38,580
1999-2000	1,59,561	2,15,236	-55,675
2000-01	2,03,571	2,30,879	-27,302
2001-02	2,09,018	2,45,199	-36,18।
2002-03	1,85,211	2,13,225	-28,014
2005-06	4,65,705	6,95,131	-51,841

स्त्रोत - आर्थिक सर्वेक्षण, 2006-07 पृ. एस-71

उपर्युक्त तालिका से भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा की निम्न विशेषताएं स्पष्ट होती हैं -

1. **विदेशी व्यापार की मात्रा में वृद्धि -** नियोजन काल में भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा में तीव्र गति से वृद्धि हुई है । विदेशी व्यापार की मात्रा वर्ष 1950-51 में केवल 1214 करोड़ रूपये थी । 2001-02 में विदेशी व्यापार की मात्रा बढ़कर 4,54,217 करोड़ रूपये हो गई अर्थात् 374 गुना वृद्धि हुई है । वर्ष 2002-03 में इसके बढ़ने की संभावना 3,98,436 करोड़ रूपये है । आयात एवं निर्यात में भी तेजी से वृद्धि हुई है । विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन आया है । दूसरी पंचवर्षीय योजना के पश्चात् तीव्र औद्योगीकरण इसका प्रमुख कारण रहा है । अब विदेशी व्यापार में भाग लेने वाले देशों की संख्या भी बढ़ी है । अब विश्व के अधिकांश देशों से भारत का व्यापार7500 से अधिक वस्तुओं में होने लगा है । विदेशी व्यापार की मात्रा में वृद्धि

हुई है । वर्ष 2005-06 में विदेशी व्यापार की मात्रा बढ़कर 1,16,08368 करोड़ रूपये हो गई ।

2. **निर्यातों में वृद्धि -** योजना काल में भारत के निर्यात बढ़े हैं लेकिन पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है । वर्ष1950-51 में निर्यातों का मूल्य 606 करोड़ रूपये का था । निर्यातों में निरन्तर वृद्धि हुई है और वर्ष2001-02 में निर्यात बढ़कर 2,09,018 करोड़ रूपये हो गये अर्थात् 344 गुना वृद्धि हुई है । वर्ष2002-03 में निर्यातों का मूल्य बढ़कर 1,85,211 करोड़ रूपये होने की संभावना है । वर्ष 2005-06 में निर्यात बढ़कर 4,65,705 करोड़ रूपये हो गये है ।
3. **आयातों में तीव्र वृद्धि -** भारत के आयातों में तेजी से वृद्धि हुई है । वर्ष 1950-51 में आयातों का मूल्य 608 करोड़ रूपये था । वह वर्ष 2001-02 में बढ़कर 2,45,199 करोड़ रूपये हो गया अर्थात् इस अवधि में आयात 403 गुना बढ़े है । आयात वर्ष 2005-06 में बढ़कर 6,95,131 करोड़ रूपये हो गये । वर्ष 2006-2007 में आयातों की वृद्धि दर 253 प्रतिशत तथा निर्यातों की 229 प्रतिशत रही है । चालू कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का वर्ष 2005-06 में निर्यातों का हिस्सा 13.1 प्रतिशत तथा आयातों का 195 प्रतिशत था । इस प्रकार व्यापार सन्तुलन -6॰4 प्रतिशत था । 1951 से ही हमारे आयातों में वृद्धि का क्रम जारी रहा है । विकासात्मक वस्तुओं, पूंजीगत वस्तुओं तथा रख-रखाव वस्तुओं का भारी आयात किया गया । दूसरी योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता तीव्र औद्योगीकरण को दी गई । जिसके परिणामस्वरूप मशीनरी एवं उपकरण, औद्योगिक कच्चा माल, तकनीकी ज्ञान आदि का बड़ी मात्रा में आयात किया गया । घरेलू कमी के कारण खाद्यान्न का भारी आयात करना पड़ा । पेट्रोल एवं उर्वरकों की कीमतों में वृद्धि के कारण इनके आयात मूल्य में वृद्धि हुई । भारतीय रूपये का अवमूल्यन करने से भी आयातों के मूल्यों में वृद्धि हुई ।
4. **बढ़ता व्यापार घाटा -** निर्यात प्रोत्साहन एवं विभिन्न रियायतों के बावजूद भी हमारा व्यापार घाटा निरन्तर बढ़ा है । वर्ष 1972-73 तथा वर्ष 1976-77 को छोडकर 1950-51 से ही यह व्यापार घाटा बढ़ता जा रहा है । वर्ष 19भ-51 में व्यापार घाटा केवल 2 करोड़ रूपये था । यह वर्ष 1990-91 में बढ़कर 10,645 करोड़ रूपये हो गया । सर्वाधिक व्यापार घाटा 55,675 करोड़ रूपये वर्ष 1999-2000 में था । वर्ष 2002-03 में यह घाटा 28,014 करोड़ रूपये होने की संभावना है । वार्षिक औसत व्यापार घाटा दूसरी योजना में 467 करोड़ रूपये, तीसरी योजना में 747 करोड़ रूपये तथा वार्षिक योजनाओं में 889 करोड़ रूपये था । चौथी योजना में इसे घटाकर 162 करोड़ रूपये वार्षिक लाया गया । पांचवी योजना में यह घाटा 810 करोड़ रूपये औसत वार्षिक लाया गया । छठी योजना में यह 5935 करोड़ रूपये वार्षिक दर पर रहा । वर्ष 1992-93 और 1997-98 की अवधि में औसत व्यापार घाटा 11,352 करोड रूपये रहा । वर्ष 200-01 में व्यापार घाटा 2730 करोड़ रूपये था यह निरन्तर बढ़कर वर्ष

2004-05 में 1,64,542 करोड़ रूपये हो गया लेकिन वर्ष2005-06 में व्यापार घाटा घटकर 51,841 करोड़ रूपये हो गया है ।

(2) भारत के विदेशी व्यापार का संरचना

विदेशी व्यापार की संरचना से आशय आयातों तथा निर्यातों की मदों से है । 1950 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार की संरचना में काफी परिवर्तन आया है । प्रारम्भ में भारत निर्मित उपभोक्ता वस्तुओं का आयात करता था तथा कच्चे माल का निर्यात करता था । व्यापार में केवल 5० मदें (Items) थीं । अब यह स्थिति बदल गई है । विदेशी व्यापार में विविधता तथा मदों की संख्या 7500 तक बढ़ गई है । भारत के आयातों एवं निर्यातों में विविधता पायी जाती है । भारत के विदेशी व्यापार की संरचना का विवरण इस प्रकार है -

1. **भारत के आयातों की संरचना -** नियोजन से पूर्व भारत में आयातों की मुख्य मदें मशीनरी, तेल, अनाज, दालें, कपास, वाहन, औजार एवं मापक, रसायन, दवाइयां, लोहा एवं इस्पात थीं । प्रथम योजना के प्रारम्भ से तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना के शुरू में आयात की संरचना में बड़ा परिवर्तन आया है । औद्योगिकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पूंजीगत औजार एवं उनके भाग बड़ी मात्रा में आयात करना आवश्यक हो गया था । इस प्रकार पूंजी और रख-रखाव आयात के कारण देश की आयात संरचना में बड़ा परिवर्तन आया है ।

भारतीय आयातों को चार वर्गो में विभाजित किया गया है । वे निम्नांकित है -

1. भोजन एवं जीवित जीवों से भोजन
2. कच्चा माल एवं मध्यमवर्ती निर्माण
3. पूंजीगत वस्तुएँ
4. अन्य (अवर्गीकृत)

वर्ष 1960-61 में 2353 मिलियन डालर के आयात किये गये थे । जिनका भारतीय मुद्रा में 1,122 करोड़ रूपये मूल्य था । वर्ष 1970-71 में यह मूल्य बढ़कर 1634 करोड़ रूपये हो गया । वर्ष 1999-2000 में2,15,236 करोड़ रूपये तथा वर्ष 2001-02 में 2,45,199 करोड़ रूपये के आयात किये गये । इस प्रकार1960-61 से 2001-02 की अवधि में आयात 218 गुने बढ़े हैं । 1960-61 में आयातों के वर्गीकरण के आधार पर प्रतिशत परिवर्तन क्रमश: 19.1, 47, 31०7 तथा 2०2 था । वर्ष 2002-03 में भोजन एवं विविध उत्पादों का आयात 4०3, ईंधन का 31०9 प्रतिशत, उर्वरकों का 0.9 प्रतिशत, कागज बोर्ड आदि का 0.8 प्रतिशत था, पूंजीगत वस्तुओं का 10.4 प्रतिशत, अन्य का 29०3 प्रतिशत तथा अवर्गीकृत मदों का 22०4 प्रतिशत आयात में हिस्सा था । इस प्रकार कुल आयातों में सर्वाधिक हिस्सा 31०9 प्रतिशत ईंधन का था जबकि अन्य मदों का हिस्सा 29०3 प्रतिशत था ।

तालिका 11.2

प्रमुख आयातों का हिस्सा (प्रतिशत में)

वस्तु समूह	1998-99	1999-00	2000-01	2001-02	2002-03	2006-07
1. खाद्य एवं विविध उत्पाद	6.9	5.6	3.7	4.5	4.3	-3.5
(i) अनाज	0.7	0.3	-	-	-	30.5
(ii) दालें	0.4	0.1	0.2	1.3	0.9	11.6
(iii) काजू	0.5	0.5	0.4	0.2	0.4	-9.8
(iv) खाद्य तेल	4.3	3.9	2.6	2.6	2.8	-1.1
2. ईंधन	17.4	24.3	33.2	29.5	31.9	42.2
(i) कोयला	2.3	2.1	2.2	2.2	2.0	21.1
(ii) पी.ओ.एल.	15.1	22.2	31.0	27.2	29.9	44
3. उर्वरक	2.5	2.9	1.5	1.3	0.9	62.6
4. पेपर बोर्ड एवं न्यूज प्रिन्ट	1.1	0.9	0.9	0.9	0.8	35.2
5. पूंजीगत वस्तुएं	18.1	11.4	11.0	11.4	10.4	43.1
(i) मशीनरी, मशीन टूल्स	7.2	5.8	5.4	5.8	5.4	38.8
(ii) बिजली मशीनरी	1.0	0.8	1.0	1.2	1.1	37.5
(iii) यातायात उपकरण	1.9	1.4	1.9	2.2	1.9	49.1
(iv) परियोजना वस्तुएं	6.3	1.9	1.5	1.1	0.9	117.1
6. अन्य	35.4	33.8	29.4	30.2	29.3	16.6
(i) रसायन	8.8	8.3	6.7	7.6	7.0	12.9
(ii) मोती, बहुमूल्य पत्थर	8.9	11.4	9.6	9.0	10.4	-31.3
(iii) लोहा एवं इस्पात	2.4	2.0	1.4	1.5	1.5	21
(iv) अलोह धातुएं	1.4	1.2	1.1	1.2	1.2	43.9
(v) पेशेवर उपकरण	1.9	1.7	1.7	1.9	1.9	18.5
(vi) चांदी एवं सोना	12.0	9.3	9.2	7.4	7.4	20.8
7. अवर्गीकृत मदें	18.5	21.0	20.1	22.2	21.9	-
कुल योग	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00

(2) भारत के निर्यातों की संरचना- भारत के निर्यातों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है, वे है-

1. कृषि और विविध उत्पाद
2. कच्चे एवं खनिज पदार्थ
3. निर्मित वस्तुएँ
4. खनिज ईंधन तथा तेल

भारत में परम्परागत निर्यात कृषि और खनिज सम्पदा पर निर्भर करते है । जो वर्ष 1970-71 में कुल निर्यातों का 42 प्रतिशत थे जिनका हिस्सा घटकर वर्ष 1999-2000 में 15 प्रतिशत रह गया है । निर्मित माल का हिस्सा इस अवधि में अवधि में 50 प्रतिशत से बढ़कर 81 प्रतिशत भारत के विदेशी व्यापार में निर्यातों की संरचना निम्न तालिका से स्पष्ट है -

तालिका 113

भारत के निर्यातों की संरचना (करोडो रू.)

वस्तु समूह	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2001-02	2002-03	2004-05
कृषि एवं विविध उत्पाद	487 (31.7)	2,057 (30.6)	6,317 (19.4)	28,582 (13.5)	29,312 (13.4)	22,224 (11.9)	39,579 (25)
कच्चे एवं खनिज पदार्थ	164 (10.7)	413 (6.2)	1,497 (4.6)	4,139 (2.6)	4736 (2.9)	1,28,337 (3.8)	20,524 (1.1)
निर्मित वस्तुएं	722 (50.3)	3,747 (55.8)	23,7361 (72.9)	60,7231 (78)	61,611 (76.1)	38,908 (75.8)	2,78,679 (17.6)
पेट्रोलियम उत्पाद	13 (0.8)	28 (0.4)	948 (2.9)	8,822 (4.2)	10,411 4.8	9,260 (5.0)	32,083 (85.3)
अन्य	99 (6.5)	465 (6.9)	55 (0.2)	1305 (1.7)	3398 (2.8)	6482 (3.5)	निल (-25.3)
योग	1,535 (100)	6,710 (100)	32,553 (100)	2,03,571 (100)	2,09,018 (100)	1,85,211 (100)	3,75,340 (100)

(3) भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

विदेशी व्यापार की दिशा से आशय व्यापार में भाग लेने वाले देशों से है । भारत के साथ विदेशी व्यापार में जिन देशों की सहभागिता है वह व्यापार की दिशा के अन्तर्गत आता है । आजादी के पहले व्यापार की दिशा का निर्धारण ब्रिटेन के द्वारा किया जाता था । वर्ष 1950-51 में भारत के विदेशी व्यापार में 42 प्रतिशत हिस्सा इंग्लैण्ड एवं अमरीका का था । भारत के आयात में इनका हिस्सा 39.1 प्रतिशत है । अब यह स्थिति बदल गई है तथा भारत के व्यापारिक संबंध विकसित तथा विकासशील सभी देशों से है । वर्तमान में भारत के विदेशी

व्यापार में सहभागी अमरीका, जापान, जर्मनी, तेल निर्यातक देश, ब्रिटेन, बेल्जियम फ्रांस, सऊदी अरब, कुवैत, हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया आदि है ।

भारत के विदेशी व्यापार की दिशा का अध्ययन हम दो वर्गो में विभाजित कर सकते हैं । वे निम्नांकित है-

1. आयातों की दिशा
2. निर्यातों की दिशा

(1) आयातों की दिशा

भारत के आयातों की दिशा व अध्ययन करने के लिए विदेशी व्यापार में आयातों में जिन देशों की सहभागिता है, उन्हें पांच वर्गो में विभाजित किया जा सकता है । वे निम्नांकित हैं-

1. आर्थिक सहयोग एवं विकास हेतु संगठन वाले देश
2. तेल निर्यातक देशों का संगठन
3. पूर्वी यूरोप
4. कम विकासशील देश
5. अन्य देश

आयातों की दिशा को निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है -

तालिका 11.4

व्यापार की दिशा-आयात (प्रतिशत हिस्सा)

संगठन/देश	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96	1990-00	2000-01	2000-02
1॰ OECD	78.0	63.9	45.7	54.0	52.4	43.0	39.9	40.1
2. OPED	4.6	7.7	27.8	16.3	20.9	22.5	5.4	5.8
3. Eastern Europe	3.4	13.5	10.3	7.8	3.4	1.6	1.3	1.4
4. L॰D॰ Countries	11.8	14.6	15.7	18.4	18.3	20.7	17.5	19.1
5. Others	2.2	0.4	0.5	3.5	5.0	12.2	35.9	33.6
योग	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक हिस्सा आयातों में (०8००) देशों का है जो वर्ष 2001-02 में 40.1 प्रतिशत था । लेकिन वर्ष 1960-61 में यह हिस्सा 78 प्रतिशत था जो घटकर आधे से कम रह गया है । वर्ष 1950-51 में कुल आयातों का 30.5 प्रतिशत यूरोप, 302 प्रतिशत पश्चिम यूरोप से था । वर्ष 1955-56 में पश्चिम यूरोप का हिस्सा बढ़कर 49 प्रतिशत हो गया । इसके दो कारण थे- एक ओर इंग्लैण्ड से आयात बढ़ गये, क्योंकि स्टर्लिंग ऋण की अदायगी करना था तथा दूसरा कारण योरोपीय साझा बाजार विशेषकर प जर्मनी से

आयात बढ़ गये थे । वर्ष 1976-77 में योरोपीय आर्थिक समुदाय का हिस्सा घटकर 21 प्रतिशत हो गया । इसके पश्चात् यह बढ़कर वर्ष 1998-99 में 25 प्रतिशत हो गया और वर्ष 2000-01 में घटकर 21 प्रतिशत हो गया । कम विकसित देशों का हमारे आयातों में हिस्सा 1960-61 में 11,8 प्रतिशत था जो वर्ष 1999-2000 में बढ़कर 20.7 प्रतिशत हो गया और वर्ष2000-01 में घटकर 17.5 प्रतिशत हो गया । पुन: वर्ष 2001-02 में बढ़कर 19.1 प्रतिशत हो गया ।

विभिन्न देशों की व्यापार दिशा-आयात की स्थिति निम्न प्रकार रही है-

तालिका 11.5

व्यापार की दिशा -आयात

देश	**2006-07 (करोड़ो रु:)**	**2006-07 (प्रतिशत हिस्सा)**
1. यूरोप 1950	78,226,97	19.50
2. सीआईएस. एवं बाल्टिक राज्य	6,963.36	1.74
3. एशिया तथा .एसियन	24,9361.26	62.07
4. अफ्रीका	28,176.99	7.03
5. अमेरीका	36,812.70	9.18
योग	**4,01,069.88**	**100.00**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि आयात मूल्य यूरोप के देशों 78,226,97 करोड रूपये है जो कुल आयातों का केवल 19.50 प्रतिशत है जबकि एशिया एवं एशियन देशों का सर्वाधिक आयात24,49,361,26 करोड रूपये है तथा कुल आयतों का 62.17 प्रतिशत है । सबसे कम आयात का हिस्सा सीआईएस. एवं बाल्टिक राज्यों का है जो 6,963.36 करोड़ रूपये है अर्थात् आयातों का हिस्सा केवल 17.4 प्रतिशत है ।

(2) निर्यातों की दिशा

भारत के विदेशी व्यापार में निर्यातों का सम्बन्ध (OECD), (OPEC) पूर्वी यूरोप, अन्य कम विकसित देश तथा अन्य देशों से रहा है ।

भारत के निर्यातों की दिशा का अध्ययन निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है-

तालिका 11.6

निर्यातों की दिशा (प्रतिशत मे)

संगठन/देश	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96	1999-00	2000-01	2000-02
1. OECD	66.1	50.1	46.6	53.5	55.7	57.3	52.7	49.3
2. OPED	4.1	6.4	11.1	5.6	9.7	10.6	10.9	12.0
3. Eastern Europe	7.0	21.0	22.1	17.9	3.8	3.1	2.4	2.3
4. L.D. Countries	14.8	19.8	19.2	16.6	25.7	25.6	26.7	28.0

5. Others	8.0	2.7	1.0	6.2	5.1	3.4	7.3	8.4
योग	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक निर्यात वर्ष 1960-61 में ओईसीडी. देशों को किये गये जो कुल निर्यातों का 66.1 प्रतिशत था । लेकिन इन देशों से निर्यात घटकर वर्ष 2001-02 में 49.3 प्रतिशत रह गये है । ओपीईसी देशों को निर्यात 4.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2001-02 में 12 प्रतिशत हो गये है । पूर्वी यूरोप को निर्यात 7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1980-81 में 22.1 प्रतिशत हो गये लेकिन इसके पश्चात् घटते हुए वर्ष 2001-02 में केवल 23 प्रतिशत रह गये है । अन्य कम विकसित देशों को निर्यात14.8 प्रतिशत से बढ़कर 28 प्रतिशत हो गये है । निर्यातों की दिशा तथा कुल निर्यातों में हिस्सा निम्न तालिका से स्पष्ट है-

तालिका11.7

व्यापार की दिशा-निर्यात

देश	2006-7 (करोड़ों मे)	2006-07(प्रतिशत हिस्सा)
1. यूरोप	6,879.26	22
2. सीआईएस. एवं बाल्टिक राज्य	3,180.89	1.13
3. एशिया तथा एशियन	14,1817.54	50.42
4. अफ्रीका	18,978.87	6.75
5. अमेरीका	55,000.29	19.56
योग	**2,81,24.41**	**100.00**

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि एशिया एवं एशियन देशों के निर्यात मूल्य सर्वाधिक 141,1817।54 करोड़ रू. है जो कुल निर्यातों का 50.42 प्रतिशत है । कुल निर्यातों का मूल्य 28,1249.41 करोड़ रू. है । सबसे कम निर्यात सीआईएस. एवं बाल्टिक राज्य हैं जिनके निर्यात मूल्य 3,18.89 करोड़ रूपये है और निर्यात में हिस्सा 1.13 प्रतिशत है ।

11.4 भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख प्रवृत्तियां

आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीतियां अपनाई गई जिसका प्रभाव हमारे विदेशी व्यापार पर भी पड़ा है । निर्यात प्रोत्साहन के लिए प्रक्रियाओं को सरल किया गया। मात्रात्मक प्रतिबंध को समाप्त कर दिया गया जिससे कि हमारे उद्योगों में प्रतिस्पर्धात्मक सुधार हो और भारतीय उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक मांगे जा सकें ।

निर्यात-आयात नीति में कई संशोधन किये गये जिससे कि निर्यातों में वृद्धि हो । गुणात्मक एवं तकनीकी उन्नयन के माध्यम से प्रतिस्पर्धात्मक सुधार हो सके । बहुपक्षीय तथा द्विपक्षीय समझौतों के माध्यम से विभिन्न देशों एवं क्षेत्रों में भारतीय व्यापार बढ़े ।

भारत के विदेशी व्यापार की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं-

1. **विदेशी व्यापार के मूल्य तथा मात्रा में वृद्धि -** भारत के विदेशी व्यापार के मूल्य तथा मात्रा में वृद्धि हुई है । वर्ष 1950-51 में व्यापार की मात्रा 1,214 करोड़ रूपये थी वह बढ़कर वर्ष2002-03 में 3,98,436 करोड़ रू. हो गया । यह 374 गुना वृद्धि हुई है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में व्यापार की मात्रा में वृद्धि से भारत के विदेशी व्यापार में महत्त्व बढ़ा है । वर्ष 2002-03 में विदेशी व्यापार की मात्रा 1,18,238 करोड़ रूपये थी जो वर्ष 2005-06 में 11,60,836 करोड रूपये हो गया ।

2. **आयातों में तीव्र वृद्धि -** भारत के आयात तेजी से बढ़े है । वर्ष 1950-51 में आयात 608 करोड़ रूपये थे जो वर्ष 2001-02 में बढ़कर 2,45,199 करोड़ रूपये हो गये अर्थात् आयातों में यह वृद्धि403 गुना बढ़ गई है । पचास के दशक में आयातों की औसत वार्षिक दर 800 करोड़ रूपये थी जो निरन्तर बढ़ती गई । वर्तमान में यह औसत वार्षिक दर 1,11,1620 करोड़ रूपये है । आयात वर्ष2004-05 में 5,32,969 करोड़ रूपये थे जो वर्ष 2005-06 में बढ़कर 6,95,131 करोड़ रूपये हो गया ।
3. **निर्यातों में धीमी वृद्धि -** योजनाकाल में भारत के निर्यातों में वृद्धि हुई है लेकिन यह वृद्धि दर असमुचित रही है । वर्ष 1950-51 में निर्यातों का मूल्य केवल 606 करोड़ रूपये था जो बढ़कर2001-02 में वर्ष 209018 करोड़ रूपये हो गया अर्थात् निर्यात इस अवधि में 344 गुना बढ़ा है ।2002-03 में निर्यातों का मूल्य 1,85,211 करोड़ रूपये हो जायेगा । निर्यात वर्ष 2004-05 में3,68,427 करोड़ रूपये थे जो वर्ष 2005-06 में बढ़कर 4,65,705 करोड़ रूपये हो गये । आयातों एवं निर्यातों में प्रतिशत परिवर्तन विभिन्न वर्षों में तालिका 11.6 से स्पष्ट है कि आयातों तथा निर्यातों में परिवर्तन की दर में उच्चावचन रहे है ।
4. **व्यापार सन्तुलन का बढ़ता हुआ घाटा -** वर्ष 1972-73 तथा 1976-77 के वर्षों को छोड़कर भारत के व्यापार सन्तुलन में घाटा बढ़ा है । वर्ष 1950-51 में व्यापार सन्तुलन में घाटा केवल 2 करोड़ रूपये था । सर्वाधिक घाटा वर्ष 1999-2000 में 55,675 करोड़ रूपये था । इससे स्पष्ट है कि हमारे आयात निर्यातों की तुलना में अधिक रहे है । यह घाटा वर्ष 2002-03 में बढ़कर 28,014 करोड़ रूपये होने की संभावना है । व्यापार सन्तुलन घाटा वर्ष 2002-03 में 51,697 करोड़ रूपये था जो वर्ष 2004-05 में बढ़कर 164592 करोड़ रूपये हो गया । वर्ष 2005-06 में 51,641 करोड़ रूपये था ।
5. **वैश्वीकरण की प्रवृत्ति** - भारत के विदेशी व्यापार की एक प्रमुख प्रवृत्ति वैश्वीकरण एवं विविधता के रूप में देखने को मिलती है । भारत का विदेशी व्यापार कुछ देशों तथा वस्तुओं तक ही सीमित है । वर्तमान में भारत 7500 वस्तुओं का 190 देशों में निर्यात कर रहा है जबकि 600 वस्तुएं 140 देशों से आयात की जा रही है । इससे देश का विदेशी व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ा है ।
6. **व्यापार की संरचना में परिवर्तन -** आजादी के समय तक भारत का व्यापार बड़ा सीमित तथा कुछ वस्तुओं तक ही था । पिछले दो दशकों में देश की व्यापार संरचना में परिवर्तन आया है । आजादी के समय 84 प्रतिशत भारतीय आयातों में निर्मित वस्तुएं थी तथा 70 प्रतिशत वस्तुओं में कच्चा माल तथा परम्परागत वस्तुएं थी । अब

यह संरचना बदल गई है । कच्चा माल, पूंजीगत वस्तुएं, उर्वरक, कच्चा तेल, रसायन आदि का आयात किया जाता है जबकि निर्यात संरचना भी बदल गई है । योजनाकाल में कच्चे माल तथा परम्परागत वस्तुओं का हिस्सा 70 प्रतिशत से 20 प्रतिशत घट कर रह गया है ।

7. **विश्व व्यापार में घटता हिस्सा -** आजादी के समय विश्व व्यापार का 2.45 प्रतिशत हिस्सा भारत का था जो वर्ष 1999-2000 में घटकर 0.60 प्रतिशत रह गया है । इससे स्पष्ट है कि विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घट रहा है । वर्ष 2004-05 में विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा 0.8 प्रतिशत तथा 1 प्रतिशत था । वर्ष 2006-07 में भी 1 प्रतिशत रहा है ।
8. **व्यापार की दिशा में परिवर्तन -** आजादी के समय भारत का व्यापार प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटेन तक ही सीमित था । वर्ष 1950-51 में इंग्लैण्ड तथा अमरीका का भारत के निर्यात में 42 प्रतिशत तथा आयात में 39.1 प्रतिशत था । अब यह स्थिति बदल गई है । अधिकांश विकसित तथा विकासशील देशों से भारत का व्यापार होता है । संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, जर्मनी, तेल निर्यातक देश ब्रिटेन, बेल्जियम, फ्रांस, इटली, सउदी अरब, कुवैत, हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया इत्यादि भारत के प्रमुख व्यापार के साझेदार है । वर्ष 2006-07 में आयातों का 62.17 प्रतिशत तथा निर्यातों का 50.42 प्रतिशत एशिया और एशियन देशों से रहा है ।

11.5 निर्यात प्रोत्साहन से आशय

निर्यात प्रोत्साहन से आशय वे सभी सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयास, नियम, प्रक्रियाएं, कार्यवाहियां तथा विधियां आदि सम्मिलित हैं जिनके द्वारा निर्यात, मूल्य तथा मात्रा में बढ़ते हैं। निर्यात बढ़ाने के लिए वे सभी उपाय काम में लिये जाते हैं, निर्यात प्रोत्साहन उपाय कहलाते है । प्रत्येक देश आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को पूरा करने के लिए निर्यातों का विस्तार करता है ।

निर्यात प्रोत्साहन की आवश्यकता एवं महत्त्व

भारत एक विकासशील देश है जहां विदेशी व्यापार में व्यापार सन्तुलन तथा भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलता देखने को मिलती है । विदेशी विनिमय की कमी की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है । इसलिए निर्यातों में वृद्धि करना आवश्यक है । निर्यात प्रोत्साहन न केवल निर्यातों एवं आयातों के बीच अन्तर को पाटने का कार्य करता है बल्कि एक दी हुई अवधि में देश के भुगतान सन्तुलन में साम्यावस्था प्राप्त करने का प्रयास भी किया जाता है । निर्यात विकास का इंजिन माना जाता है । वे सभी देश जो स्वावलम्बन तथा तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं वे निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपनाते है । प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन, व्यापार सन्तुलन में घाटा, विदेशी विनिमय संकट तथा ऋण भार में वृद्धि आदि समस्याओं के कारण निर्यात प्रोत्साहन उपाय अपनाये जाते है ।

11.6 निर्यात प्रोत्साहन हेतु सरकारी प्रयास

आजादी के पश्चात् भारत सरकार ने निर्यात प्रोत्साहन के लिए अनेक कदम उठाये है । सरकार -द्वारा किये गये उपायों को निम्नांकित तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

1. जांच समितियों की नियुक्ति
2. निर्यात प्रोत्साहन संस्थाओं की स्थापना
3. निर्यात प्रेरणाएं एवं प्रोत्साहन योजनाएँ

जांच समितियों की नियुक्ति

निर्यातों से सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने तथा निर्यात बढ़ाने के लिए, सुझाव देने के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर अनेक समितियों का गठन किया है । वे निम्नांकित हैं-

1. **गौरवाला जांच समिति, 1949** - गौरवाला की अध्यक्षता में इस समिति का गठन किया गया जिसका कार्य भुगतान सन्तुलन की समस्या का अध्ययन कर निर्यात सम्बर्द्धन हेतु सुझाव देना था । इस समिति ने व्यापार प्रतिनिधि मण्डल विदेशों में भेजने का सुझाव दिया तथा निर्यात सम्बर्द्धन निदेशालय के गठन तथा आयात प्रतिस्थापन पर जोर दिया गया ।
2. **डी-सूजा जांच समिति, 1957 -** इस समिति ने सीमा शुल्क तथा रेलवे भाड़े में रियायतें, यातायात सुविधाओं का विस्तार, निर्यात जोखिम बीमा निगम का गठन, व्यापार समझाते तथा विदेशों में निर्यात वस्तुओं का प्रचार करने हेतु सिफारिशें की ।
3. **मुदालियर समिति, 1981 -** इस समिति ने निर्यात करों में छूट तथा निर्यातकों को कच्चा माल उपलब्ध कराने का सुझाव दिया ।
4. **अलेक्जेण्डर पेनल, 1977 -** लघु उद्योगों को संरक्षण देने हेतु कुछ आयातों पर प्रतिबंध लगाने का सुझाव दिया । निर्यातोन्मुखी उद्योगों को कच्चा माल, निर्यात-आयात प्रक्रिया को सरल मनाना तथा निर्यातकों को सुविधाओं का विस्तार करने की सिफारिशें भी की ।
5. **टण्डन समिति, 1981 -** इस समिति ने निर्यात नीति में निर्यात बढ़ाने के अनेक सुझाव दिये ।

निर्यात प्रोत्साहन संस्थाओं की स्थापना

प्रमुख संस्थाएं निम्नांकित है-

1. **निर्यात प्रोत्साहन निदेशालय -** गौरवाला समिति की सिफारिश के आधार पर 1957 में निर्यात सम्बर्द्धन निदेशालय का गठन किया गया । यह निदेशालय निर्यातकों को आवश्यक सूचनाओं की पूर्ति,आवश्यक सहायता तथा विदेश का कार्य करेगा तथा व्यापार प्रमण्डल के सुझावों को क्रियान्वित करेगा ।
2. **निर्यात प्रोत्साहन परिषदें -** ये परिषदें स्वायत्तशासी है जिनमें व्यापार, उद्योग तथा सरकार का प्रतिनिधित्व होता है । सम्बन्धित निर्यात मद के निर्यात में वृद्धि करना इनका प्रमुख कार्य है ।

3. **वस्तु बोर्ड -** विशिष्ट मदों के निर्यात के लिए वस्तु बोर्ड गठित किये गये है । इनमें चाय बोर्ड, कॉफी बोर्ड, रबड़ बोर्ड, केन्द्रीय रेशम बोर्ड, इलाइची बोर्ड, अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड, अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड तथा नारियल जूट बोर्ड आदि प्रमुख है ।
4. **पंच फैसले की भारतीय परिषद् - भारत** में विदेशी व्यापार के पंच फैसले के कार्य को देखने के लिए एक -सर्वोच्च संस्था के रूप में इसका गठन किया गया है । यह 1956 में स्थापित की गई थी । इसका प्रमुख उद्देश्य पंच फैसले के बारे में जागरूकता पैदा करना है तथा सुचारू रूप से विवादों को हल करना है ।
5. **भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान -** भारत सरकार ने इस संस्थान का गठन 1964 में किया था । निर्यात समवर्द्धन के क्षेत्र में प्रशिक्षण एवं अनुसंधान का प्रबंधन करना इसका प्रमुख उद्देश्य
6. **भारतीय पैकिंग संस्थान -** इस संस्थान की स्थापना 1966 में की गई थी । इसका कार्य पैकिंग के नये तरीकों के बारे में सूचना देना है ।
7. **राज्य व्यापार निगम** - इस निगम की स्थापना व 956 में की गई थी । निर्यात व्यापार का विस्तार करना तथा आवश्यक आयातों की पूर्ति करना इस निगम के मुख्य क्षेत्र है ।
8. **भारतीय निर्यात-आयात बैंक -** इसकी स्थापना 1982 में की गई थी । निर्यातकों एवं आयातकों को समुचित वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली एक संस्था का कार्य करता है ।

निर्यात सम्वर्द्धन योजनाऐं -

इन योजनाओं में निम्न प्रमुख है-

1. **कर रियायतें -** निर्यात सम्वर्द्धन के लिए सरकार द्वारा कर रियायतें दी जाती है । विज्ञापन, बाजार सर्वेक्षण, विदेशी पर्यटन, विदेशों में कार्यालयों की स्थापना आदि निर्यात सम्वर्द्धन के लिए किये जाते है । इन पर हुए खर्चे पर आयकर में छूट एवं रियायतें दी जाती है ।
2. **रेल किराये में छूट -** भारतीय रेलवे निर्यात योग्य वस्तुओं को वरीयता देता है जिससे कि बन्दरगाहों तक यह माल पहुंचाया जा सके । निर्यातकों से रियायती दरों पर रेल भाड़ा वसूल किया जाता है ।
3. **निर्यात व्यापार गृहों को मान्यता एवं सुविधा -** निर्यातकों द्वारा कुछ शर्त पूरी करने पर निर्यात व्यापार राहों को मान्यता प्रदान की गई है ।
4. **अतिरिक्त आयात सुविधा -** नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत निर्यात आधारित उद्योगों को अतिरिक्त आयात सुविधा प्रदान की गई है । इन उद्योगों में रिफाइण्ड चाय, कॉफी, फल, मछली, सब्जी तथा उच्च तकनीकी उत्पाद प्रमुख है ।
5. **निर्यात साख -** निर्यातकों को पर्याप्त साख प्रदान करने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा व्यापारिक बैंकों को निर्देश दिये हैं कि अधिक से अधिक साख सुविधा प्रदान की जाये । रिजर्व बैंक ने निर्यात-आयात बैंक को निर्यातकों को आपातकालीन

आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मध्यमकालीन ऋण प्रदान करने की अनुमति दी है ।

11.7 विनिमय दर का अर्थ

विदेशी विनिमय दर अथवा विनिमय दर वह दर होती है जिस पर एक करेंसी का दूसरी करेंसी से विनिमय किया जाता है । यह दर एक करेंस में दूसरी करेंसी की कीमत होती है । इसे व्यक्त करने का प्रचलित तरीका यह है कि घरेलू करेंसी के रूप में विदेशी करेंसी की एक इकाई की कीमत । डालर तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर बताती है कि एक पाउण्ड खरीदने के लिए कितने डालरों की आवश्यकता पड़ेगी । इस प्रकार डालर तथा पाउण्ड के बीच विनिमय दर संयुक्त राज्य अमेरिका के दृष्टिकोण से यों व्यक्त की जाती है - डालर 2.50=1 पाउण्ड ($2.50=£1)। ब्रिटेन के लोग इसे व्यक्त करने के लिए कहेंगे कि एक डालर खरीदने के लिए कितने पाउण्ड चाहिए और ऊपर दी गई विनिमय दर को इस रूप में व्यक्त करेंगे कि 0.40 पाउण्ड = 1डालर ($0.40=£1) ।

तत्काल और अग्रिम विनिमय दर

विदेशी विनिमय मार्केट में दो प्रकार की विनिमय दरें होती हैं तत्काल विनिमय दर और, अग्रिम विनिमय दर । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न है:

तत्काल विनिमय दर - तत्काल विनिमय दर वह दर है जिस पर एक देश की करेंसी का दूसरे देश की करेंसी से वर्तमान अवधि में विनिमय किया जाता है । 'स्पाट' शब्द से अभिप्राय करेंसीयों की तुरंत सुपुर्दगी अथवा विनिमय है । व्यवहार में, सौदा दो दिन में हो जाता है । तत्काल लेन-देन के लिए प्रभावी विनिमय दर को तत्काल दर, और ऐसे सौदों के लिए मार्किट को तत्काल मार्केट कहते है ।

अग्रिम विनिमय दर - अग्रिम विनिमय दर वह दर है जिस पर भविष्य में विदेशी करेंसी उपलब्ध की जाती है । अग्रिम सौदा दो ग्रुपों के बीच होता है, जिसके अनुसार भविष्य में एक निश्चित तिथि तक विदेशी करेंसी की एक निश्चित राशि को एक पार्टी दूसरी पार्टी के सुपुर्द करती है । यह भुगतान राशि घरेलू करेंसी के बदले अनुबंध में तय की गई कीमत पर दूसरी पार्टी द्वारा देय होती है । अग्रिम अनुबंध पर लागू विनिमय दर, अग्रिम विनिमय दर कहलाती हैं और अग्रिम सौदों के लिए मार्केट को अग्रिम मार्केट कहते है ।

11.8 रूपये की मजबूती व डालर के टूटने के कारण

प्रमुख रूप से हम निम्न कारणों को रूपये की मजबूती व डालर के टूटने के कारण मान सकते है।

1. **विदेशी पूंजी निवेश में वृद्धि -** उदारीकरण की नीति से देश में पूंजी निवेश में भारी वृद्धि हुई कुल पूंजी प्राप्तियों के समानुपात के रूप में विदेशी निवेश प्राप्तियों में वर्ष 1990-91 के 12 प्रतिशत से नियमित रूप से वृद्धि हुई जो वर्ष 1995-96 में बढ़कर 155.2 प्रतिशत हो गई । कुछ उतार चढ़ाव के बाद वर्ष 2005-06 में यह (निवेश 17.2 अरब अमरीकी डालर) कुल पूंजी प्रवाहों के समानुपात में 71.2 प्रतिशत था ।

2. **विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि -** भारत 1990-91 एवं 1991-92 में भुगतान असन्तुलन के कठिन दौर से गुजर रहा था । लेकिन उदारीकरण की नीति के कारण मार्च 1997 को 26423 मिलियन डालर के विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़कर जनवरी 2000 में 31940 मिलियन डालर हो गया । मार्च 2002 में भारत के विदेशी विनिमय कोष 51.05 अरब (बिलियन) डालर के तुल्य थे जो 2 फरवरी 2007 को 180 बिलियन अमरीकी डालर के तुल्य हो सके । अत: उदारीकरण के फलस्वरूप विदेशी मुद्रा भण्डारों में वृद्धि हुई जो रुपये की मजबूती का कारण रही ।
3. **विदेशी ऋण भार में कमी -** पिछले एक दशक में विदेशी ऋण भार में काफी सुधार हुआ सितम्बर 2006 में भारत पर 6,38,181 करोड़ का विदेशी ऋण भार था । ऋण सेवा अनुपात जो1990-91 में चालू प्राप्तियों के 35.3 प्रतिशत के शीर्ष बिन्दु पर पहुंच गया था वह धीरे-धीरे घटकर 1999-2000 में 16 प्रतिशत के स्तर पर आ गया । विदेशी ऋण का जीडीपी. से अनुपात जो मार्च 1992 में 38.7 प्रतिशत था वह मार्च 2006 में घटकर 158 प्रतिशत रह गया यह घटता विदेशी ऋण भार रूपये की मजबूती का कारण बना ।
4. **जी.डी.पी. एवं औद्योगिक विकास दर में वृद्धि -** विकास दर किसी भी देश की प्रगति का मापदण्ड है । 1980-81 से 1991-92 के मध्य में देश में जी.डी.पी. में 5.4 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि हुई 1992-93 से 2000-01 के मध्य यह बढ़कर 6.4 प्रतिशत वार्षिक हो गई इस प्रकार औद्योगिक विकास दर में काफी वृद्धि हुई वर्ष 2006-08 में देश में औद्योगिक विकास दर 10.60 रही इस तरह बढ़ते ओद्योगिक विकास ने रूपये को मजबूती प्रदान की।
5. **प्रतिस्पर्धा की शुरूआत -** उदारीकरण की नीति से भारत में वास्तविक प्रतिस्पर्धा की शुरूआत दोहरे तरीके से हुई एक तो देशी उद्यमियों के बीच और दूसरे नई नीतियों के बाद आने वाली विदेशी कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादक कीमत तथा वस्तु की किस्म पर अधिक ध्यान देने लगे क्योंकि बाजार में वही वस्तु टिक सकेगी जो सस्ती तथा श्रेष्ठ होगी ।
6. **बढ़ता निर्यात -** यह भी रूपयों की मजबूती का एक प्रमुख कारण रहा बढ़ते निर्यातों के कारण बड़ी मात्रा में विदेशी पूंजी का प्रवाह देश में होने लगा जिससे डालर के मुकाबले भारतीय रूपये को मजबूती मिली ।
7. **वार्षिक विकास दर में वृद्धि -** भारत में आर्थिक विकास की दर को हिन्दू विकास दर की अवधारणा को जोड़ा गया है लेकिन विगत वर्षों में भारत की विकास दर में निरन्तर वृद्धि हुई है दसवीं योजना में यह विकास दर 8 प्रतिशत प्रस्तावित थी जो बढ़ कर 9 प्रतिशत रही ।
8. **मुद्रा प्रसार पर काफी हद तक नियंत्रण -** वर्ष 1991 में मुद्रा प्रसार की दर 17 प्रतिशत थी जो फरवरी 1994 में घटकर 8 प्रतिशत हो गई यह फिर घटकर 30 जनवरी

1999 को 4.6 प्रतिशत हो गई । फरवरी 2006 को यह घटकर 4.1 प्रतिशत रह गई जिससे स्पष्ट है कि मुद्रा प्रसार लगभग नियंत्रण में रहा ।

11.9 सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा रचना एवं दिशा में निरन्तर परिवर्तन हुए । निर्यात संवर्द्धन नीति बनी रही है विश्व व्यापार में विकसित राष्ट्रों का वर्चस्व होने के कारण उनसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ रहा है वर्तमान प्रवृत्तियों को देखते हुए भारतीय विदेशी व्यापार का भविष्य उज्जवल दिखाई देता है कम्प्यूटर, साफ्टवेयर, इंजीनियरिंग, सामान, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग, हार्डवेयर तथा फल सब्जियों का विश्व बाजार व्यापक संभावनाएं लिए खड़ा है केवल राष्ट्रीय चरित्र को बढ़ाने की आवश्यकता है । 2002-07 की आयात निर्यात नीति में 11.9 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर का लक्ष्य यदि पूरा हो गया तो भारत भी विदेशी व्यापार में एक शक्ति बन जाएगा ।

11.10 शब्दावली

- **विदेशी व्यापार** - जब देश की सीमा के बाहर अन्य देशों से व्यापार होता है उसे विदेशी व्यापार कहा जाता है ।
- **निर्यात सम्वर्द्धन** - निर्यात सम्वर्द्धन से आशय निर्यात बढ़ाने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों, कार्यो, नीतियों तथा कार्य कलापों से है ।
- **अवमूल्यन** - एक देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देश की मुद्रा के मूल्य की तुलना में कम करना अवमूल्यन कहलाता है ।
- **विनिमय दर** - विनिमय दर वह होती है जिस पर एक करेंसी का दूसरी करेंसी से विनिमय किया जाता है यह दर एक करेंसी में दूसरी करेंसी की कीमत होती है ।

11.11 स्वपरख प्रश्न

1. भारतीय विदेशी व्यापार की मात्रा, रचना एवं दिशा की व्याख्या कीजिए ।
2. भारत के विदेशी व्यापार की आधुनिक प्रवृतियों को समझाइये ।
3. भारतीय विदेशी व्यापार में निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता समझाइये । इस सम्बन्ध में सरकार ने जो भी प्रयत्न किये उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

11.12 संदर्भ ग्रंथ

1. बी॰ एल॰ ओझा-'भारत में आर्थिक पर्यावरण'' रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. गुप्ता, स्वामी - भारत में आर्थिक सर्वेक्षण 2005-06, 2007-08
3. भारत 2008
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, रूद्रदत्त सुन्दरम्

इकाई-12 :जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

इकाई की रूपरेखा.

12.1 जनसंख्या विस्फोट का अर्थ
12.2 भारत की जनसंख्या
12.3 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000
12.4 भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण
12.5 भारत में जनसंख्या विस्फोट की अवस्था
12.6 भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के दुष्प्रभाव
12.7 भारत में जनसंख्या विस्फोट का समाधान
12.8 स्व-परख प्रश्न
12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.1 जनसंख्या विस्फोट का अर्थ (Meaning of Population Explosion)

नव-माल्थसवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अल्प-विकसित देशों में जनसंख्या की समस्या मनुष्य के पुरूत्पादक आचरण से जुड़ी हुई है । लेकिन जनांकिकी परिवर्तन सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक देश की जनसंख्या को तीन चरणों से गुजरना होता है और केवल दूसरे चरण में जनसंख्या तेजी के साथ बढ़ती है । पहली अवस्था में जन्म एवं मृत्यु दोनों की दरें ऊँची होती है, इसलिए जनसंख्या स्थिर रहती है । अल्पविकसित कृषि प्रधान देशों में प्रति व्यक्ति आय कम होने से आर्थिक विकास के सभी कारक निम्न होने के कारण मृत्यु दर ऊँची होती है एवं सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से जन्म दर ऊँची होती है । कृषकों का जीवन स्तर नीचा होता है और उनके परिवार में मृत्यु दर अधिक होती है । इसलिए वे अधिक बच्चों की इच्छा रखते हैं । कोल तथा हूवर के अनुसार, "कृषि व्यवसाय में बच्चों को कम आयु में ही काम पर लगाया जा सकता है । इसके लिए अतिरिक्त परिवार में लड़कों का होना भी सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक होता है ।" लोगों को परिवार नियोजन के बारे में जानकारी नहीं होती । ये सभी कारण सामूहिक रूप से ऊँची जन्म दर के लिए जिम्मेदार होते हैं । इस प्रकार पहली अवस्था में ऊँची मृत्यु दर और ऊँची जन्म दर के बीच संतुलन रहता है जिससे जनसंख्या स्थिर रहती है ।

दूसरी अवस्था में मृत्यु दर नीचे आने लगती है लेकिन जन्म दर ऊँची बनी रहती है । इसका कारण यह है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है जिससे आम लोगों के जीवन स्तर में सुधार होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु दर में कमी होती है । सामाजिक रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, शिक्षा, परिवार के बारे में दृष्टिकोण, पुत्र प्राप्ति आवश्यक आदि से जन्म दर ज्यों की त्यों बनी रहती है । अत: जन्म दर और मृत्यु दर का अन्तर काफी हो जाता है और जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगती है । भारत में इस समय यही अवस्था विद्यमान है । तीसरी अवस्था में, जन्म एवं

मृत्यु दरें नीची हो जाती है । जब किसी देश में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया साथ-साथ चलती है तो जन्म दर में कमी होती है ।

किसी राष्ट्र के लिए जनसंख्या एक- वरदान तथा अभिशाप दोनों ही है । आवश्यकता से अधिक जनसंख्या संसाधनों के विनाश तथा आवश्यकता से कम जनसंख्या संसाधनों के बेकार पड़े रहने का द्योतक है । अत: आदर्श स्थिति जनसंख्या के उचित आकार से है । विश्व में बहुत कम ऐसे राष्ट्र है जो उचित जनसंख्या के आदर्श को प्राप्त कर चुके हैं । अधिकांश राष्ट्र जनसंख्या के संसाधनों की तुलना में आधिक्य अथवा संसाधनों की तुलना में कमी से पीड़ित है । यदि मोटे रूप में देखा जाय तो विश्व के अधिकांश राष्ट्र प्रथम स्थिति अर्थात संसाधनों की तुलना में जनसंख्या के आधिक्य में है । जनसंख्या विस्फोट का अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जिसमें जन्म दर तथा मृत्यु दर में बहुत अधिक अन्तर हो जाने के फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि दर में विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो जाती है । जनसंख्या का आकार इतना बड़ा हो जाए और भविष्य में भी उसमें इतनी तेजी से वृद्धि हो कि वह देश अपने वर्तमान साधनों द्वारा अपने लोगों की अनिवार्य आवश्यकताओं को भी ठीक से पूरा न कर पाए ।

भारत में जनसंख्या वृद्धि की अवधि को निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । इस विभाजन से जनसंख्या विस्फोट की स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है

1. गतिहीन जनसंख्या की अवधि (1921 से पूर्व की स्थिति)
2. स्थिर गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की अवधि (1921-1951)
3. जनसंख्या विस्फोट की अवधि (1951-1981)
4. तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या परन्तु वृद्धि दर में कमी होने की अवधि (1981 के बाद की अवधि)

भारत में जनसंख्या वृद्धि एक अत्यन्त गम्भीर समस्या है । भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति को स्पष्ट करने हेतु विगत वर्षों में घटित हुई जनसंख्या वृद्धि की दर का अध्ययन करना आवश्यक है । उपर्युक्त वर्णित तीनों अवधियों का अध्ययन करने के पश्चात भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति को सुगमता पूर्वक समझा जा सकता है । भारत में जनसंख्या के आकार तथा वृद्धि को तालिका 1 में प्रस्तुत आंकड़ों की सहायता से अध्ययन कर जनसंख्या विस्फोट की अवधि को दर्शाया जा सकता है

तालिका 1

भारत में जनसंख्या का आकार तथा वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी.)
1981	23.87	-
1901	23.83	77
1911	25.21	82
1921	25.14	0.07

महान विभाजन वर्ष

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	वृद्धि या कमी (करोड़)
1931	27.90	90
1941	31.86	102
1951	36.10	117

जनसंख्या विस्फोट के वर्ष

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	वृद्धि या कमी (करोड़)
1961	43.92	142
1971	54.81	178
1981	68.33	216
1991	84.63	274
2001	102.7	314

स्रोत: भारत की जनसंख्या 2001

1. स्थिर जनसंख्या की अवधि (1921 से पूर्व)-

इस अवधि में भारत की जनसंख्या में एक गतिहीन वृद्धि अनुभव की गयी । इन तीन दशकों में भारत की जनसंख्या में केवल 1.27 करोड़ की वृद्धि निम्न प्रकार घटित हुई ।

(i) **1891 से 1901-** इस दशक में जनसंख्या में 4 लाख की कमी हुई । इसका मुख्य कारण यह था कि इन वर्षा में देश के विभिन्न भागों में अकाल, प्लेग, मलेरिया आदि महामारियों के कारण बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई ।

(ii) **1901 से 1911-** इस दशक में जनसंख्या में 1.38 लाख की वृद्धि हुई । इसका मुख्य कारण यह था कि इस अवधि में अकाल इत्यादि नहीं पड़े तथा मृत्यु दर कम रही ।

(iii) **1911 से 1921-** इस दशक में जनसंख्या 7 लाख कम हो गई । इसका मुख्य कारण अकाल, प्लेग, हैजा और मलेरिया आदि महामारियाँ थी । 1918 में इल्फ्लूएंन्जा की महामारी से 140 लाख लोग मृत्यु का शिकार हो गये ।

2. स्थिर गति से बढ़ती जनसंख्या की अवधि (1921-1951)

भारत में 1921 के पश्चात् जनसंख्या अत्यन्त स्थित गति से बढ़ने की प्रवृत्ति दर्शाती है । भारत में 1921 से जनसंख्या में जो वृद्धि की प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया वह कुछ अर्थ में आज तक विद्यमान है । इसी कारण जनसंख्या आयोग ने 1921 को महान विभाजन वर्ष कहा है । इस अवधि के दौरान भारत की जनसंख्या में हुई वृद्धि की प्रवृत्ति को निम्न प्रकार दर्शाया गया है :

(i) **1921 से 1931 तक की अवधि (Period from 1921-1931)-** इस दशक में भारत की जनसंख्या में 276 लाख की वृद्धि हुई । यह वृद्धि इससे पूर्व 30 वर्षों में होने वाली वृद्धि में सर्वाधिक रही है ।

(ii) **1931 से 1941 तक की अवधि (period from 1931-1941)-** इस दशक में जनसंख्या में 3.96 करोड़ की वृद्धि हुई । इस दशक के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि की दर 11 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 14 प्रतिशत हो गयी ।

(iii) **1941 से 1951 तक की अवधि (period from 1941-1951)-** इस दशक में भारत की जनसंख्या में 424 करोड़ की वृद्धि हुई । इस अवधि में ब्रिटेन की कुल जनसंख्या के लगभग व बराबर भारत की जनसंख्या में वृद्धि हुई । इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि दर कुछ कम रही क्योंकि देश के विभाजन के कारण साम्प्रदायिक दंगों में अत्यधिक मानव जीवन की हानि हुई ।

3. जनसंख्या विस्फोट की अवधि (Period from 1951 to1981)

विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भ में नागरिकों के जीवन स्तर में कुछ सुधार होना एक आवश्यक प्रवृत्ति है । शिक्षा में वृद्धि के परिणामस्वरूप अन्धविश्वास कम होता है तथा सरकार भी प्लेग, मलेरिया, हैजा, चेचक आदि की रोकथाम के प्रयास करती है । इन सब का संयुक्त प्रभाव मृत्यु दर में भारी कमी होने के रूप में सामने आता है । किंतु यदि कोई समाज कृषि प्रधान है और शिक्षा का विस्तार बड़े पैमाने पर संभव नहीं होता है तो परिवार के आकार के संबंध में लोगों के दृष्टिकोण में किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं देता है । इन सब कारणों में से जन्म दर ऊँची रहती है । इस स्थिति में जनसंख्या बहुत तेजी के साथ बढ़ती है । प्राय: इस स्थिति में वार्षिक जन्म दर लगभग 40 प्रति हजार और मृत्यु दर लगभग 15 प्रति हजार होती है । इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि इस स्थिति में जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग 25 प्रतिशत वार्षिक रहती है । अर्थशास्त्री इसे ही जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) की स्थिति कहते हैं ।

भारत में इस अवधि अर्थात् 1951 से 1981 तक की अवधि में जनसंख्या वृद्धि की दर अत्यन्त विकट हो गई, जिसके कारण इसे जनसंख्या विस्फोट की अवधि कहा जाता है । इस अवधि के दौरान भारत में हुई जनसंख्या वृद्धि की दर की विवेचना निम्न प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है

(i) **1951 से 1961**- यह वह अवधि है जिसके दौरान भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर सर्वाधिक दर्ज की गई । इसी कारण इसे विस्फोट (Explosion) का वर्ष भी कहते हैं । इस दशक के दौरान भारत की जनसंख्या 7.82 करोड़ बढ़ गई । भारत के विभाजन के कारण पाकिस्तान के हिस्से में जो जनसंख्या गई थी, करीब करीब उसके बराबर जनसंख्या इस अवधि में बढ़ गई । इस अवधि के दौरान जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक, अर्थात् 21.6 प्रतिशत रही ।

(ii) **1961 से 1971-** इस अवधि में यद्यपि भारत की जनसंख्या में 10.89 करोड़ की वृद्धि हुई, किंतु इस अवधि में वृद्धि दर 2.2 प्रति वर्ष आँकी गई ।

(iii) **1971 से 1981-** इस दशक भारत की जनसंख्या बढ़कर 68 करोड़ 33 लाख हो गई । इस प्रकार इस दशक के अन्तर्गत जनसंख्या में 13 करोड़ 52 लाख अर्थात् 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई ।(iv) तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या परन्तु वृद्धि दर में कमी होने

की अवधि-इस अवधि के दौरान भारत की कुल जनसंख्या में तो यद्यपि वृद्धि हुई किंतु वृद्धि दर में कमी होने की प्रवृत्ति। परिलक्षित हुई ।

4. **1981 से 1991-** इस अवधि में भारत की जनसंख्या बढ़कर 84 करोड़ 63 लाख हो गई, यद्यपि वृद्धि की दर 2.1 प्रतिशत गिरकर 1॰9 प्रतिशत रह गई ।
5. **1991 से 2001-** इस अवधि में भारत की जनसंख्या बढ़कर 102॰7 करोड़ हो गई । इस प्रकार इस दशक में भारत की जनसंख्या में लगभग 18.07 करोड़ की वृद्धि हुई । विगत दशक की तुलना में जनसंख्या वृद्धि की दर कम होकर 1॰8 प्रतिशत रह गयी ।

12.2 भारत की जनसंख्या (Population Of India)

भारत में विश्व की कुल जनसंख्या की 16॰87 जनसंख्या निवास करती है जबकि भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल की मात्र 2.4 प्रतिशत ही है । इस प्रकार विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है जबकि क्षेत्रफल की दृष्टि से सातवाँ है । संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) द्वारा जारी विश्व जनसंख्या रिपोर्ट, 2004 के अनुसार वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 1॰53 अरब हो जायेगी और तब भारत विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश होगा । रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में विश्व की जनसंख्या 6॰4 अरब है जो वर्ष 2050 तक बढ़कर 8॰9 अरब हो जायेगी ।

जनसंख्या की दृष्टि से राज्यों/संघ शासित प्रदेशों का क्रम

उत्तर प्रदेश की जनसंख्या (16,16,97,921)ए देश में सर्वाधिक है । जबकि सिक्किम (5,40,851) जनसंख्या की दृष्टि से सबसे छोटा राज्य है ।

राज्य :	जनसंख्या
1. उत्तर प्रदेश	16,61,97,921
2. महाराष्ट्र	9,68,78,657
3॰ बिहार	8,29,98,509
4. पश्चिम बंगाल	8,01,76,197
5. आन्ध्रप्रदेश	7,6210,007
6. तमिलनाडु	6,24,05,679
7. मध्य प्रदेश	6,03,48,023
8. राजस्थान	5,65,07,188
9. कर्नाटक	5,28,50,562
10. गुजरात	5,06,71,017
11. उड़ीसा	3,68,04,660
12. केरल	3,18,14,374
13. झारखण्ड	2,69,45,829
14. असम	2,66,55,528
15. पंजाब	2,43,58,999

16. हरियाणा	2,11,44,564
17. छत्तीसगढ़	2,08,33,803
18. जम्मु एवं कश्मीर	1,01,43,700
19. उत्तरांचल	84,899,349
20. हिमाचल प्रदेश	60,77,900
21. त्रिपुरा	31,99,203
22. मेघालय	23,93,896
23. मणिपुर	122,93,896
24. नागालैण्ड	19,90,036
25. गोवा	10,97,968
26, अरूणाचल प्रदेश	13,47,668
27. मिजोरम	8,88,573
28. सिक्किम	5,40,851
संघ शासित प्रदेश :	
1. दिल्ली	1,38,50,507
2. पांडिचेरी	9,74,345
3. चण्डीगढ़	9,00,635
4. अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह	3,56,152
5. दादरा व नागर हवेली	2,20,490
6. दमन व दीव	1,58,204
7. लक्षद्वीप	60,650

12.3 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000

इस नवीनतम् संशोधित जनसंख्या नीति के अनुसार सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए जीवन में गुणात्मक सुधार किया जाना आवश्यक है ताकि मानव शक्ति समाज के लिए उत्पादक पूंजी में परिवर्तित हो सके । इस नीति में तीन उद्देश्यों का समावेश है :

(i) तात्कालिक उद्देश्य- गर्भ निरोधक उपायों के विस्तार हेतु स्वास्थय एवं बुनियादी ढांचे का विकास

(ii) मध्यमकालीन उद्देश्य- सन् 2010 तक कुछ प्रजननता दर को घटाना ।

(iii) दीर्घकालीन उद्देश्य- सन् 2046 तक स्थायी आर्थिक विकास हेतु आवश्यक स्थिर जनसंख्या के उद्देश्य की प्राप्ति । संशोधित नई नीति में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित सामाजिक जनांकिकीय लक्ष्य भी घोषित किये गये हैं :

1. बुनियादी प्रजनन तथा शिशु स्वास्थ्य सेवाओं आपूर्तियों तथा आधारभूत ढांचे से संबंधित अपूर्ण आवश्यकताओं पर ध्यान देना ।
2. 14 वर्ष की आयु तक विद्यालयी शिक्षा को मुफ्त तथा अनिवार्य बनाना ।

3. प्रारम्भिक तथा माध्यमिक विद्यालय स्तरों पर छात्र और छात्राओं दोनों का ही विद्यालय छोड़ने में20 प्रतिशत तक कमी लाना ।
4. शिशु-मृत्यु दर प्रति हजार पर 30 से नीचे लाना ।
5. मातृत्व मृत्यु दर 100000 प्रति जीवित जन्मों पर 100 से नीचे लाना ।
6. टीकों द्वारा रोकथाम वाली बीमारियों के विरूद्ध सार्वभौमिक टीकाकरण लाना ।
7. कन्याओं के विवाह में देरी को प्रोत्साहित करना जो, 18 वर्ष से पहले नहीं तथा 20 वर्ष के बाद करने को तरजीह दी जाये ।
8. 80 प्रतिशत प्रसव संस्थानों द्वारा 100 प्रतिशत प्रसव प्रशिक्षित दाइयों द्वारा होना ।
9. प्रजनन विनियमन के लिए सूचना/सलाह और सेवाओं की सार्वभौमिकता पहुंच तथा गर्भ-निरोधक के व्यापक विकल्पों का पता लगाना ।
10. जन्म, मृत्यु विवाह तथा गर्भावस्था का 100 प्रतिशत पंजीकरण करना ।
11. एड्स के प्रसार को रोकना तथा प्रजनन अंग-संक्रमण (आरटीआई) और यौन संचारी रोगों तथा राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन के बीच अपेक्षाकृत अधिक एकीकरण को बढ़ावा देना ।
12. संक्रमण बीमारियों की रोकथाम व उन पर नियंत्रण ।
13. प्रजनन तथा शिशु सेवाओं की व्यवस्था तथा घरों तक इनकी पहुंच करने हेतु भारतीय औषध पद्धति को एकीकृत करना ।
14. टी.एफ.आर. को प्रतिस्थापन स्तरों को प्राप्त करने हेतु छोटे परिवार के मानदण्डों को ठोस रूप से बढ़ावा देना ।
15. संबंधित सामाजिक क्षेत्र कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को एकीकृत करना ताकि परिवार कल्याण एक जन केन्द्रित कार्यक्रम बन सके ।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (National Population Commission)

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 19, मई, 2005 को राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग का पुर्नगठन किया । जनसंख्या स्थिरीकरण का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए इसकी कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु इसके सदस्यों की संख्या 131 से घटाकर 44 कर दी गई है । प्रधानमंत्री आयोग के अध्यक्ष, जबकि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री ए. रामदास तथा योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोटेक सिंह आहलूवालिया इसके दो उपाध्यक्ष हैं । यूपीए अध्यक्ष और कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी, भाजपा अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी और बसपा प्रमुख मायावती आयोग के सदस्य हैं ।

जनसंख्या-स्थिरता कोष

पहले बने राष्ट्रीय जनसंख्या स्थिरता कोष' का नाम अब 'जनसंख्या-स्थिरता कोष कर दिया गया है । 100 करोड़ रुपये की प्रारम्भिक राशि से स्थापित किये गए इस स्वायत्त कोष के अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। जबकि केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री इसके उपाध्यक्ष तथा इस मंत्रालय के सचिव इस कोष के सदस्य सचिव हैं । कोष में सरकार के अतिरिक्त उद्योगों, गैर-सरकारी, संगठनों व समाज के लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है । जनंसख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाकलापों के संचालन के लिए दाता

संस्थाओं व चैरिटेबल संगठनों सहित निजी क्षेत्र से संसाधन जुटाना इस कोष का मुख्य उद्देश्य है। जनंसख्या नियन्त्रण के मामले में पिछड़े राज्यों को वित्तीय सहायता इस कोष से उपलब्ध कराई जायेगी ।

12.4 भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण :

भारत में जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से हो रही है । 1901 में भारत की जनसंख्या 238 करोड़ थी जो2001 में 102.87 करोड़ हो गई । जनसंख्या में इस वृद्धि के परिणामस्वरूप नियोजित आर्थिक विकास के सारे प्रयास निकल हो रहे हैं तथा देश में भोजन, वस्त्र एवं आवास की समस्या विकराल होती जा रही है । भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारणों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है- (अ) उच्च जन्म-दर तथा उसको प्रेरित करने वाले कारक तथा (ब) मृत्यु-दर में निरन्तर आती गिरावट ।

ऊंची जन्म-दर :

भारत में जन्म-दर में यद्यपि लगातार गिरावट आती जा रहो है फिर भी यहां अपेक्षाकृत जन्म-दर अभी भी बहुत ऊंची है । सन् 1901-10 के दशक में यहां जन्म-दर 49.2 प्रति हजार थी । जो घटकर वर्तमान समय में 25.0 प्रति हजार हो गई है जो अन्य देशों की तुलना में अभी भी बहुत ऊंची है । यह जन्म दर जर्मनी में 9 प्रति हजार, स्विट्जरलैण्ड में 10, आस्ट्रेलिया में 13, संयुक्त राज्य अमेरिका में16, फ्रांस में 13, ब्रिटेन में 11 तथा स्वीडन में 10 प्रति हजार है । भारत में जन्म-दर को बढ़ावा देने वाले प्रमुख कारक निम्न प्रकार है-

(1) शिक्षा का निम्न स्तर
(2) परम्परावादी समाज
(3) धार्मिक अन्धविश्वास
(4) संयुक्त परिवार
(5) लड़कों का महत्त्व
(6) समाज में स्त्रियों का कम सम्मान,
(7) आर्थिक कारण
(8) आयु संरचना एवं जलवायु
(9) ग्रामीण समाज
(10) सबका विवाह होना तथा विवाह की आयु का नीचा होना ।

मृत्यु-दर में कमी :

भारत में विगत 102 वर्षों में मृत्यु-दर में पर्याप्त गिरावट आई है व 1901-10 के दशक में भारत में मृत्यु दर 42.6 प्रति हजार थी जो वर्तमान में घटते हुए 8.1 रह गई । इसका प्रमुख कारण लोगों की आय में वृद्धि तथा रहन-सहन के स्तर में सुधार, औषधि विज्ञान तथा शल्य चिकित्सा में हुई अभूतपूर्व प्रगति, स्त्रियों की दशा में सुधार, साक्षरता में वृद्धि, मनोरंजन के साधनों में वृद्धि, विवाह की आयु में वृद्धि, अन्धविश्वासों में कमी, शहरीकरण में वृद्धि तथा परिवार नियोजन के प्रति लोगों का बढ़ता रूझान, आदि है।

12.5 भारत में जनसंख्या विस्फोट की अवस्था
(The State of Population Explosion In India)

क्या भारत जनसंख्या विस्फोट की अवस्था से गुजर रहा है? भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित निम्नलिखित तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि वर्तमान में भारत जनसंख्या विस्फोट की अवस्था में है-

1. भू-क्षेत्र की तुलना में जनसंख्या का बड़ा आकार

(Large size of population in comparison to land-area)-

भारत में विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 167 प्रतिशत का निवास है जबकि इसके पास विश्व की कुल भू-क्षेत्र का 24 प्रतिशत ही है । इस प्रकार भू-क्षेत्र की तुलना में भारत में जनसंख्या का काफी बड़ा आकार है । 2001 की जनगणना की अनुसार भारत की जनसंख्या लगभग 102.70 करोड़ थी । विश्व का प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है । चीन और भारत की जनसंख्या मिलकर विश्व की जनसंख्या की लगभग 33 प्रतिशत है । एशिया की कुल जनसंख्या का एक चौथाई भाग (25 प्रतिशत) भारत में ही रहता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि विश्व के विभिन्न देशों की तुलना में भारत में जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है ।

2. जनसंख्या की तीव्र वृद्धि-दर (Rapid rate of population increase)

भारत में जनसंख्या का आकार ही बड़ा नहीं है, बल्कि इसकी वृद्धि दर भी बहुत ऊँची है। 50 वर्षों की योजना-अवधि (1951-2001) में भारत की जनसंख्या लगभग तीन गुना हो गई । 1981-91 के दशक में जनसंख्या की औसत वार्षिक दर 2.14 प्रतिशत थी जो घटकर 1991-2001 के दौरान1.93 प्रतिशत हो गई । ऐसा अनुमान है कि भारत में एक मिनट में लगभग 40 व्यक्ति और एक वर्ष में 180 करोड़ व्यक्ति बढ़ जाते हैं । भारत प्रत्येक महीने में एक इजराइल, हर छः महीने में एक स्विट्जरलैण्ड और हर एक वर्ष में एक आस्ट्रेलिया उत्पन्न कर देता है । 1991-2001 के दशक में भारत की जनसंख्या में कुल वृद्धि ब्राजील की जनसंख्या के बराबर थी । ऐसा अनुमान है कि 2050 तक भारत चीन से भी आगे बढ़कर संसार का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश हो जायेगा ।

3. जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की समस्या

(Problem of Basic Amenities of Life)-

भारत में जनसंख्या इस गति से बढ़ रही है कि उसके लिए भोजन, पानी, आवास और चिकित्सा की मूलभूत आवश्यकताओं को जुटा पाना भी कठिन हो रहा है ।

4. गरीबी, बेरोजगारी व निम्न रहन-सहन का स्तर

(Poverty, Unemployment and Low Standard of Living)-

देश में कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन की तुलना में जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है । इसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने की गति काफी धीमी है और उपभोग के लिए प्रति

व्यक्ति वस्तुएं भी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पा रही हैं । इन सबके कारण देश की अत्यंत बड़ी जनसंख्या को गरीबी, बेरोजगारी एवं निम्न रहन सहन के स्तर में जीवन निर्वाह करना पड़ रहा

12.6 भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के दुष्प्रभाव (Evil Effects of Fast Increasing Population in India)

भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया हैं । इस प्रवृत्ति के भविष्य में भी अनेक दुष्प्रभाव हो सकते हैं । इनमें से कुछ संभावित दुष्प्रभावों को संक्षेप में वर्णन किया गया है-

1. **खाद्य समस्या (Food problem)-**

   जनसंख्या बढ़ने पर भी भूमि की मात्रा तो सीमित ही रहती है । अत: कई बार सम्पूर्ण जनसंख्या की आवश्यकता की तुलना में अनाज के कम उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो जाती है । भारत को कई बार खाद्य समस्या का सामना करना पड़ा है । आज भारत में खाद्यानों की कमी तो नहीं हैं किंतु आज देश की जनसंख्या के एक बड़े भाग को पर्याप्त एवं संतुलित आहार नहीं मिल पा रहा है ।

2. **बेरोजगारी (Unemployment)-**

   भारत में बढ़ती बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है । विभिन्न योजनाओं में रोजगार के अवसरों की व्यवस्था करने के बावजूद भी बेराजगारों की संख्या बढ़ते जाना वास्तव में चिंता का ही विषय है । इससे देश की श्रमशक्ति का अपव्यय होता है तथा बेरोजगार युवकों में उत्पन्न तनावों के कारण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के अस्तित्व के लिये खतरा उत्पन्न हो जाता है ।

3. **अनुत्पादक उपभोक्ताओं का भार (Burden of Unproductive Consumers)-**

   जनसंख्या वृद्धि के कारण अनुत्पादक उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि होती जाती है । अनुत्पादक उपभोक्ताओं में उन्हें सम्मिलित किया जाता है जो उपभोग तो करते हैं किंतु उत्पादन में कोई योगदान नहीं देते जैसे 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे एवं 60 वर्ष से अधिक आयु के बुढ़े । इसके अतिरिक्त अपंग, असहाय, बीमार एवं बेरोजगार जनंसख्या भी अनुत्पादक उपभोक्ताओं की श्रेणी में ही आती है । हमारे देश में यह अनुपात बहुत ऊँचा है और लगातार बढ़ता ही जा रहा है ।

4. **भूमि से संबंधित समस्यायें (Problem Related to Land)-**

   जनसंख्या बढ़ने के कारण भूमि पर जनसंख्या का भार निरन्तर बढ़ता जा रहा है । इसके परिणामस्वरूप औसत जोत का आकार घट रहा है और अनार्थिक जोत की समस्या उत्पन्न हो गई है । इसी प्रकार, उपविभाजित एवं अपखण्डन की समस्या भी उत्पन्न हो रही है ।

5. **पूँजी निर्माण में कमी (Law Capital Formation)-**

जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने पर उपभोग व्यय बढ़ने तथा बचत कम हो जाने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । सरकार को भी सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पहले की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक व्यय करना पड़ता है । इसके फलस्वरूप व्यक्तिगत और सार्वजनिक बचत कम हो जाती है । इससे देश में पूंजी निर्माण की दर भी घट जाती है । पूँजी निर्माण की दर घट जाने से आर्थिक विकास पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है ।

6. निम्न रहन सहन स्तर (Low Standard of Living)-

जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण उपभोग के लिए प्रति व्यक्ति कम वस्तुएँ उपलब्ध हो पाती है और साथ ही रहन सहन का स्तर भी घटता जाता है । भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण आवास, चिकित्सा, सफाई, पानी व बिजली, महंगाई, नगरों में गंदी बस्तियों का निर्माण, नैतिक मूल्यों में गिरावट आदि कई निरन्तर वृद्धि आम बात होती जा रही है । कुल मिलाकर उत्पादन में जितनी वृद्धि होती है, उसकी तुलना में उपभोग करने वाले लोगों की संख्या काफी बढ़ जाती है । इसके परिणामस्वरूप देश को लोगों का रहन सहन का स्तर गिरने लगता है । अर्थात् उत्पादन वृद्धि की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से कम है ।

7. निम्न प्रति व्यक्ति आय (Low Per Capital Income)-

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय आय में जिस दर से वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति आय में उस दर से वृद्धि संभव नहीं हुई । इसका कारण जनसंख्या बढ़ना ही रहा है । उदाहरण के लिए सम्पूर्ण योजना अवधि के दौरान राष्ट्रीय आय में औसत वार्षिक वृद्धि 4 प्रतिशत की दर से हुई किंतु इस अवधि में जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति आय में 2.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ही वृद्धि संभव हो सकी । अत: भारत में निम्न प्रति व्यक्ति आय के लिए भी जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ही उत्तरदायी है ।

8. महिलाओं पर बुरा प्रभाव (Adverse Effects on Women)-

बार-बार बच्चों को जन्म देने के कारण माताओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है । बच्चों के लालन-पालन के अतिरिक्त महिलाएँ परिवार के बाहर अन्य किसी भी सामाजिक कार्य में हिस्सा नहीं ले पाती है । वे तनावों व दबावों में जीने को विवश होती है । अत: जनसंख्या के तेजी से बढ़ने का महिलाओं के स्वास्थ्य, रहन सहन एवं उनकी सामाजिक भूमिका पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है ।

9. आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव (Adverse Effects on Economic Development)-

भारत में आर्थिक विकास के मार्ग में जनसंख्या का तेजी से बढ़ना आज सबसे बड़ी बाधा हैं । आर्थिक विकास पर जनसंख्या का बढ़ता भार अनेक रूपों में परिलक्षित हुआ है । इसके कारण कृषि जोतों का आकार घटता जा रहा है, भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है । बेरोजगारी व छुपी हुई बेरोजगारी की समस्या की स्थिति भी ज्यों की त्यों बनी हुई है । बचत व निवेश में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि नहीं हो पा रही । परिवहन व संचार साधनों और ऊर्जा के स्त्रोतों पर लगातार दबाव बढ़ता जा रहा है ।

प्राकृतिक संसाधन तथा उत्पादन बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं के लिए कम पड़ रहे हैं । शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन की अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा न होने से श्रम की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है । इन सब कारणों से आर्थिक विकास की गति त्वरित नहीं हो रही है । जो कुछ थोड़ा बहुत प्रयास किया जाता है, उसे बढ़ी हुई जनसंख्या छीन लेती है और देश की अर्थव्यवस्था वही-की-वहीं खड़ी रह जाती है ।

जनसंख्या विस्फोट के इन सब दुष्प्रभावों के कारण ही यह कहा जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्त समस्याओं का कारण जनसंख्या विस्फोट है ।

10. अन्य कारण-

शिक्षा का निम्न स्तर धार्मिक अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार, लड़कों का महत्त्व, समाज में स्त्रियों को कम सम्मान, ग्रामीण समाज, विवाह की आयु का नीचा होना आदि ।

12.7 भारत में जनसंख्या विस्फोट का समाधान (Remedial Measures against Population Explosion)

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत मे जनसंख्या विस्फोट की समस्या अत्यन्त गम्भीर है । जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने की दिशा में प्रभावी प्रयास आवश्यक है । यदि जनसंख्या विस्फोट, (जो कि जनसंख्या वृद्धि की समस्या की सर्वोच्च सीमा है,) की समस्या से निबटने हेतु समय रहते सार्थक प्रयास नहीं हुए तो भविष्य में उत्पन्न होने वाली भंयकर स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । भारत में जनसंख्या विस्फोट की समस्या के समाधान के लिए एक साथ दो दिशाओं में प्रयास किये जाने आवश्यक है- (क) आर्थिक विकास एवं (ख) जन्म-दर नियन्त्रण ।

(क) आर्थिक विकास (Economic Development)-

किसी भी देश की जनसंख्या की समस्या का स्थायी एवं दीर्घकालीन हल उस देश के तीव्र आर्थिक विकास पर ही निर्भर करता है । इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि देश के कृषि एवं उद्योग दोनों क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता बढाने के सजा उपाय किये जायें । देश के प्रत्येक भाग में कुटीर एवं लघु उद्योग के विकास की विशेष योजनाएँ तैयार की जायें । इस नीति के फलस्वरूप शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी कम होगी और भूमि पर से जनसंख्या का दबाव भी घटेगा । चूंकि गरीबी स्वयं ही जनसंख्या वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण होती है ।

(ख) जन्म-नियन्त्रण के उपाय (Measures of Birth Control)-

निःसन्देह जनसंख्या की समस्या के समाधान के लिए आर्थिक विकास एक महत्त्वपूर्ण उपाय है किंतु इसकी अपनी सीमाएँ है । भारत में केवल आर्थिक विकास के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि की समस्या निपट जाय, यह संभव नहीं लगता है । वास्तविकता तो यह है' कि इस गति से बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास को अगतिशील बना देती है । अत: हमें आर्थिक विकास के साथ-साथ जन्म दर को नियंत्रित करने के उपाय भी

करने होंगे । इस दृष्टि से अपनाए जा सकने वाले कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं-

1. देरी से विवाह (Late Marriages)-

विवाह की आयु में वृद्धि करके हम जन्म दर पर कुछ सीमा तक नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है । ऐसा अनुमान है कि यदि भारत में सभी लकड़ियों का विवाह 20 वर्ष से अधिक आयु में किया जाए तो जन्म दर में 15 से 30 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है । सरकार द्वारा वर्तमान में लड़कों एवं लड़कियों के विवाह की उम्र क्रमश: 21 एवं 18 वर्ष निर्धारित कर रखी है ।

2. शिक्षा (Education)-

शिक्षित व्यक्तियों में अपने आप ही परिवार को सीमित रखने की भावना आ जाती है । अनेक अध्ययनों से यह बात सिद्ध हुई है कि सामान्य तौर पर शिक्षा का स्तर बढने के साथ-साथ बच्चों की संख्या घटती जाती है । शिक्षित व्यक्ति परिवार नियोजन के विभिन्न उपायों को आसानी से समझ सकते हैं एवं प्रयोग कर सकते हैं । इसके लिए हमें विशेष रूप से महिलाओं व प्रोढ़ों में शिक्षा का विस्तार करना होगा तथा शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवार नियोजन की शिक्षा को भी जोड़ना होगा ।

3. उच्च रहन-सहन स्तर (High Standard of Living)-

जनसंख्या वृद्धि की दर को प्रभावी रूप से नियन्त्रण करने हेतु लोगों में उच्च रहन-सहन के स्तर की आकांक्षा उत्पन्न करने एवं उनके स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करना चाहिए । रहन-सहन के स्तर में सुधार की चाह उत्पन्न होने पर व्यक्ति अपने-आप ही अपने परिवार को छोटा रखने लग जाता है ।

4. महिलाओं की स्थिति में सुधार (Improvement in the Status of Women)

स्त्रियों को संतान उत्पन्न करने एवं उनके लालन-पालन के कार्यो तक ही सीमित न रखकर घर की चारदीवारी के बाहर सामाजिक कार्यो में सक्रिय हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । उन्हें आर्थिक आधार पर स्वतन्त्र होने में भी समर्थन प्रदान किया जाना चाहिए । इस परिवर्तन के आने पर महिलाएँ स्वयं कम संतान उत्पत्ति हेतु प्रेरित होगी ।

5. सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन (Change in the Social Outlook) -

भारत में सामाजिक विचारधारा एवं दृष्टिकोण को जन्म दर नियन्त्रण के अनुकूल बनाना होगा । इसके लिए बच्चों को केवल भगवान की देन समझने, स्त्रियों को केवल सन्तानोत्पति का साधन मानने, बड़े परिवार को प्रतिष्ठा का सूचक मानने, लड़के और लड़की में अंतर रखने आदि मान्यताओं में बदलाव लाना आवश्यक है ।

6. सामाजिक सुरक्षा (Social Security)-

सामाजिक सुरक्षा का अभाव भी कई बार ऊँची जन्म-दर के लिए उत्तरदायी होता है । भारत में बच्चों को बुढ़ापे का सहारा माना जाता है । अत: सामाजिक तथा वृद्धावस्था सुरक्षा के श्रेष्ठ उपाय करने होंगे । इसके साथ ही वृद्धावस्था में चिकित्सा व अन्य

सुविधाएँ प्रदान करने व उनकी उचित देखभाल व्यवस्था के द्वारा भी जन्म दर घटाने में सहायता मिल सकती है ।

7. परिवार नियोजन (Family Planning)-

जन्म दर को कम करने वाले उपर्युक्त वर्णित उपाय स्वायत्त कहलाते हैं । किंतु भारत में केवल इन उपायों को अपना कर जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता । इस समस्या पर प्रभावी नियन्त्रण हेतु जन्म दर कम करने के लिए सोच समझकर चुने गए कृत्रिम एवं वैज्ञानिक उपायों को भी अपनाना होगा । इस प्रकार के उपायों द्वारा जन्म दर नियन्त्रण के लिए प्रारम्भ की गई योजना को परिवार नियोजन कार्यक्रम कहा जाता है ।

भारत में जन्म-नियंत्रण की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावी उपाय परिवार नियोजन ही है । चीन में एक बच्चे के आदर्श को अपनाकर, सरकार ने जन्म दर लगभग 20 प्रति एक हजार तक कम करने में सफलता पाई है । इसी प्रकार, श्रीलंका और थाईलैण्ड ने भी परिवार नियोजन की विधियों को अपनाकर जनसंख्या नियंत्रण में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है । अत: भारत द्वारा भी अपनी ऊँची जन्मदर की समस्या के समाधान के लिए पड़ौसी देशों के अनुभवों का लाभ उठाना अनुपयुक्त नहीं होगा । इसके लिए व्यापक स्तर पर गर्भनिरोधकों के प्रयोग और स्त्रियों की स्थिति में सुधार की ओर ध्यान देना होगा । इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, विशेषकर ग्रामीण एवं वनवासी क्षेत्रों में परिवार नियोजन केन्द्रों का एक बड़ा तंत्र विकसित करना होगा । लोगों को परिवार छोटा रखने के लिए प्रेरित करने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन एवं दंड की भी व्यवस्था पर विचार किया जाना चाहिए ।

भारत में जनसंख्या विस्फोट की समस्या अत्यंत गंभीर है किंतु उपर्युक्त वर्णित आर्थिक और सामाजिक उपायों में से किसी को भी परिवार नियोजन कार्यक्रम का हिस्सा नहीं बनाया गया है । भारत में सरकारी प्रयासों का अधिकांश महत्त्व परिवार नियोजन पर है । भारत में परिवार नियोजन को सरकारी नीति का अंग स्वीकार किया गया है । प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में सरकार द्वारा परिवार नियोजन के प्रति जन साधारण की प्रतिक्रिया जानने के लिए कुछ अध्ययन किये गए है । इन अध्ययनों से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि भारत में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में यद्यपि इसका बड़े पैमाने पर विरोध नहीं है लेकिन अभी जनसाधारण परिवार को सीमित करने के लिए अधिक प्रेरित नहीं है । शहरों में जो आज भी सामान्यत: तीन बच्चों का होना और ग्रामीण क्षेत्रों में चार बच्चों का होना उचित आदर्श समझा जाता है । बच्चों के जन्म के बीच में तीन से चार वर्षों का अंतर उचित माना जाता है । चार से अधिक बच्चों की माताएं और 35 से अधिक आयु वाली स्त्रियां परिवार नियोजन मे अधिक रूचि लेती है। गाँवों में भी यद्यपि परिवार के वृद्ध सदस्य परिवार नियोजन का विरोध नहीं करते, परन्तु संकोच के कारण युवा दम्पत्ति खुलकर इसमें रूचि नहीं दिखाते । मजदूर तथा किसान वर्ग के लोग कृत्रिम निरोधों को मुफ्त प्राप्त करना चाहते हैं । शहरों में आवास को समस्या के कारण भी संतती निरोध के लिए काफी प्रेरणा मिलती

है । खाद्य समस्या और जनसंख्या विस्फोट द्वारा उत्पन्न संकट में एक दूसरे से पृथक किया जाना संभव नहीं है । यद्यपि आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक दस वर्षों में परिवार नियोजन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया था ।

8. **उत्पादक कार्यो का अभाव (lack of Productive work)**

विशेषकर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या के पास उत्पादक कार्य का अभाव पाया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप ग्रामीण समाज में निवास करने वाली जनता की मानसिकता भी समय को व्यतीत करने की बन जाती है । इन क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग आपस में मिलकर बाते करना, झगड़े करना, जुआ, सट्टा आदि बुराईयों में लिप्त हो जाते है । इनका अधिकांश समय पत्नी के साथ एवं बचा हुआ समय उपर्युक्त बुराइयों में व्यतीत होता है । ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन कार्यो को बढ़ावा दिया जाना चाहिए तथा ग्रामीण जनता की मानसिकता में इस प्रकार का बदलाव लाने की है जिससे समय बर्बाद करने के बजाय उत्पादक कार्यो में लगाया जा सके ।

9. अन्य उपाय (Other Measures)-

भारत में जनसंख्या वृद्धि की दिशा में किये गये उपर्युक्त वर्णित उपायों के अतिरिक्त नगरीकरण एवं मनोरंजन सुविधाओं में विस्तार करने से भी जन्म दर घटाने में सहायता मिल सकती है । भारत में प्राचीन काल से ही ब्रह्मचर्य के पालन एवं आत्मसंयम पर बड़ा बल रहा है । अत: इस भावना को पुन: जागृत किया जाना चाहिए।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत परिवार नियोजन

(Family Planning Under Five Year plans)-

जनसंख्या नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन की सफलता हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में इस प्रकार प्रयास किये गये-

प्रथम चार योजनाएँ (First Four plans)-

प्रथम पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन के कार्यक्रमों पर कुल 65 लाख रुपया व्यय किया गया । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी परिवार नियोजन संबंधी नीति में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ और केवल 5 करोड़ रुपये व्यय किया गया । प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में शहरों में 549 और ग्रामीण क्षेत्रों में 1, 100 परिवार नियोजन केन्द्र स्थापित किये गये । इसके अतिरिक्त 1,864 ग्रामीण और330 शहरी अस्पतालों अथवा स्वास्थ्य केन्द्रों में भी परिवार नियोजन संबंधी सुविधाएं प्रदान की गई । तृतीय योजना अवधि में परिवार नियोजन संबंधी कार्यक्रमों पर 27 करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई थी । किंतु वास्तविक व्यय केवल 24.86 करोड़ रुपये ही हुआ । योजनाकाल में राज्य स्तर पर सभी राज्यों में और जिला स्तर पर 199 जिलों में परिवार नियोजन ब्यूरो गठित किये गए । 1960 में तृतीय योजना की समाप्ति के समय 1,381 नगर परिवार कल्याण आयोजन केन्द्र और 3,676 ग्रामीण परिवार कल्याण आयोजन केन्द्र कार्य कर रहे थे । इनके अतिरिक्त ग्रामीण केन्द्रों का कार्य परिवार नियोजन के संबंध में सलाह के अतिरिक्त संतति निरोध के लिए आवश्यक सेवायें भी प्रदान करना है । तृतीय योजना काल में परिवार नियोजन प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या 28 हो

गई थी, जिसमें 7,641 व्यक्तियों के लिए परिवार नियोजन संबंधी पूरे प्रशिक्षण की व्यवस्था थी । इसके अतिरिक्त 34,484 व्यक्ति अल्पकालीन प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते थे ।

अप्रैल 1966 में केन्द्र और राज्य सरकारों के जनसंख्या नियन्त्रण संबंधी प्रयासों में तालमेल बैठाने के उद्देश्य से परिवार नियोजन का एक अलग विभाग स्थापित किया गया । ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन के कार्यक्रम की प्रगति संतोषजनक नहीं है । इसका प्रधान कारणों गाँवों में कार्य करने के लिए इच्छुक प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव था । 1966 से 1969 तक सरकार ने परिवार नियोजन के कार्यक्रम पर लगभग 75 करोड़ रुपया व्यय किया जो पहली तीन योजनाओं में कुल व्यय का ढाई गुना था । चौथी योजना के अन्तर्गत परिवार कार्यक्रमों पर 280 करोड़ रूपये व्यय किये गए ।

अत: परिवार नियोजन के कार्यक्रम को प्रथम दो योजनाओं में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था परन्तु तृतीय योजना और उसके बाद इस और विशेष ध्यान दिया गया था । इसके बावजूद भी जहाँ तक जन्म दर नियन्त्रण का प्रश्न है, वह ज्यादा नीची नहीं आई, इसका कारण यह रहा है कि परिवार नियोजन के कार्यक्रम को तैयार करने के लिए जितनी जानकारी आवश्यक है, उसका भारत में अभी अभाव है ।

पाँचवीं योजना (Fifth Plan)-

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में परिवार कल्याण नियोजन के कार्यक्रम को प्राथमिकता क्रम में उतना ही ऊँचा स्थान प्रदान किया गया जितना कि चौथी योजना में प्रदान किया गया था । इस कार्यक्रम पर516 करोड़ रुपये व्यय किये गए । इस योजना के अन्तर्गत जन्म दर को 1978-79 तक 30 हजार प्रति लाने का लक्ष्य रखा गया था । परन्तु इस दिशा में सफलता नहीं मिली । पाँचवीं योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम का स्वास्थ्य एवं चिकित्सा कार्यक्रमों के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास किया गया था ।

पाँचवीं योजना में परिवार नियोजन संबंधी नीति की कुछ उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित थी-

(1) परिवार नियोजन कार्यक्रम को जन स्वास्थ्य, मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य तथा पोषण संबंधी कार्यक्रमों के साथ समाविष्ट कर दिया गया । अत: एक ही कार्यक्रम से जुड़े हुए कर्मचारियों को बहुउद्देश्य कर्मचारियों में बदलने की व्यवस्था की गई, परन्तु साथ ही इन पर परिवार-नियोजन कार्यक्रम पर विशेष ध्यान देते रहने का उत्तरदायित्व जारी रखा गया ।

(2) लोगों की परिवार नियोजन कार्यक्रम में रूचि जागृत करने के लिए सामान्य शिक्षा, श्रमजीवी वर्ग की शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी शिक्षण तथा विशिष्ट कल्याणकारी कार्यक्रमों में भी तालमेल बैठाने हेतु सार्थक प्रयास किये गये । परिवार नियोजन के संबंध में चेतना 'का स्तर उठाने के लिए टेलीविजन और रेडियो का अधिकाधिक प्रयोग किया गया ।

(3) जिन राज्यों में परिवार नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रमों को अब तक अधिक सफलता नहीं मिली है, वहाँ परिवार नियोजन की अधिक सुविधाएँ प्रदान की गई ।

(4) परिवार नियोजन कार्यक्रम को परिवार कल्याण कार्यक्रम के रूप में लागू करने की व्यवस्था की गई । अत: इसी कार्यक्रम में बाल मृत्यु दर घटाने की दिशा में भी प्रयत्न किए गए ।

(5) जनसंख्या नियन्त्रण कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता के दृष्टिकोण से परिवार नियोजन कार्यक्रम में चयनात्मक दृष्टिकोण (Selective Approach) अपनाया गया था । इस दृष्टि से 25 से 35 वर्ष की आयु में आने वाले दम्पत्तियों की तरफ विशेष ध्यान दिया गया ।

(6) परिवार नियोजन कार्यक्रम की सफलता योग्य तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की उपलब्धि पर निर्भर होती है । अत: कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए क्षेत्रीय परिवार नियोजन केन्द्रों की सेवाओं का पूरा-पूरा उपयोग करने की दिशा में प्रयास किये गए । इसके अतिरिक्त 40

नई नर्स दाई प्रशिक्षण स्कूल और 25 महिला स्वास्थ्य निरीक्षक प्रशिक्षण स्कूल खोलने की व्यवस्था पांचवीं योजना में की गई ।

छठी योजना (Sixth Plan)

छठी योजना के अन्तर्गत 1985 के लिए जन्म दर का लक्ष्य 30 प्रति हजार था । यदि यह लक्ष्य प्राप्त हो जाता तो जनसंख्या वृद्धि की दर 1.5 प्रतिशत के आस-पास ही रहती और जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति से छुटकारा मिल जाता । परन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाना इतना सहज नहीं था । इसलिए छठी योजना में कुछ बुनियादी उपायों पर जोर दिया गया । इस श्रेणी में इस योजना में जिन उपायों का उल्लेख किया गया था, वे है विवाह की न्यूनतम आयु में वृद्धि, स्त्री शिक्षा, छोटे परिवार की उपयुक्त का प्रचार, परिवार नियोजन की विधियां से सम्बन्धित शोध कार्य और व्यक्तियों, समूहों और समुदायों को परिवार नियोजन कार्यक्रम को परिवार कल्याण कार्यक्रम में बदल दिया गया । इस कार्यक्रम पर 1,010 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान था ।

सातवीं योजना (Seventh Plan)-

सातवीं योजना के अंतर्गत पुरुरूत्पादन वर्ग में आने वाले दम्पत्तियों में से 42 प्रतिशत को परिवार नियोजन विधियों को अपनाने के लिए प्रेरित करने का लक्ष्य रखा गया था । यह लक्ष्य प्राप्त कर पाना आसान नहीं था । इसके लिए जनचेतना का स्तर ऊंचा करना जरूरी है । लोगों को छोटे परिवार के लाभ समझाने होंगे और लड़कियों के प्रति भेदभाव को दूर करना होगा । सातवीं योजना में परिवार नियोजन कार्यक्रम की बुनियादी संरचना में सुधार कर कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाने की प्रयास किये गये थे । अन्य पंचवर्षीय योजनाओं तरह सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर व्यय की राशि अपर्याप्त ही थी । इस योजना में इन कार्यक्रमों पर 3,256 करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई थी ।

आठवीं योजना (Eighth Plan)-

आठवीं पंचवर्षीय योजना में जनसंख्या वृद्धि की दर को जन सहयोग से नीचे लाना एक मुख्य उद्देश्य था । इसके लिए लोगों को विभिन्न प्रकार से प्रेरित करने के कार्यक्रम लागू किए जाएंगे।

परिवार नियोजन के लिए आवश्यक सुविधाएं प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं पहुँची है । इसलिए इन क्षेत्रों में परिवार नियोजन केन्द्र और उपकेन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले जाने का प्रस्ताव किया गया जिनमें परिवार नियोजन के लिए आवश्यक सेवाएं मिल सकेंगी । भारत में आगे आने वाले वर्षों में परिवार नियोजन स्वैच्छिक ही होगा और दम्पत्ति इस सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र होंगे ।

नौंवी योजना (Ninth Plan)-

इस योजना में परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर 15,120 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान किया गया । इस योजना में परिवार कल्याण के जो प्रयास किये गये उनसे (अ) सन् 2001 तक जन्म दर कम होकर 26 प्रति हजार रह गई । (ब) मृत्यु दर 8 प्रति हजार हो गई । (स) शिशु मृत्यु दर कम होकर 70 प्रति हजार रह गई । (द) परिवार नियोजन अपनाने वालों का प्रतिशत बढ़कर 46 प्रतिशत हो गया ।

कार्यक्रम के दोष व कमियाँ (Demerits of the Programme)

इस कार्यक्रम की आंशिक असफलता के पीछे कुछ कमियाँ एवं दोष हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. **उत्साह एवं प्रेरणा का अभाव (Lack of Incentives)**-

   इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी कमी है कि इसके प्रति जनता में स्वत: प्रेरणा नहीं है । एक सरकारी कार्यक्रम के रूप में इसे पूरा किया जाता है ।

2. **अशिक्षा (Illiteracy)-**

   2001 के अनुसार भारत में केवल 65.38 प्रतिशत लोग साक्षर है । अशिक्षित जनता आज भी सन्तानोत्पत्ति को भाग्य की देन मानती है । शिक्षा का अभाव इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी बाधा है ।

3. **धार्मिक एवं सामाजिक बाधायें (Religious and Social Barriers)-**

   समाज में प्राय: यह चर्चा सुनने को मिलती है कि परिवार नियोजन का कार्यक्रम हिन्दुओं में तेजी से अपनाया जा रहा है । लेकिन अभी तक यह मुसलमानों में बहुत ही कम लोकप्रिय हुआ है । परिणामस्वरूप कुल जनसंख्या में हिन्दुओं का प्रतिशत घट रहा है । तथ्यात्मक दृष्टि से यह बात सही हो सकती है लेकिन दोनों ही समुदायों के शिक्षित लोग छोटे परिवार में विश्वास करते हैं ।

4. **ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का अभाव**
   (Lack of Facilities in Rural Areas)-

   देश में लगभग 40% जनसंख्या गाँवों में रहती है । वहाँ न तो परिवार नियोजन के चिकित्सा केन्द्रों की पर्याप्त सुविधायें हैं और न ही प्रशिक्षित चिकित्सक । न परिवार नियोजन के तरीकों का ज्ञान है और न उनमें रूचि ही ।

5. **निर्धनता (Poverty)-**

   भारत में व्यापक निर्धनता भी परिवार नियोजन की सफलता में बाधक है । गरीब आदमी परिवार नियोजन के तरीकों के उपयोग को नहीं जानता । साथ ही ये साधन

महँगे भी हैं । आपरेशन आदि के कारण होने वाली परेशानी से भी वह बचना चाहता है। दैनिक मजदूरी करने वाला श्रमिक आराम नहीं कर सकता तथा उसको मिलने वाली आर्थिक सहायता भी कम है ।

6. शिविरों पर जोर (Camp Approach)-

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम शिविर दृष्टिकोण के आधार पर चलाया जाता है । इसमें आपरेशन आदि से पहले तो लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अति-उत्साह होता है, लेकिन आपरेशन के पश्चात् उचित देखभाल नहीं की जाती । परिणामस्वरूप अन्य आपरेशन योग्य स्त्री-पुरूष पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

7. लक्ष्य प्रधान कार्यक्रम (Target-oriented Programme)-

भारत में यह कार्यक्रम लक्ष्य प्रधान है । वर्ष में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पहले 8-9 महीनों तक विशेष प्रयत्न किये जाते है लेकिन अन्तिम 3-4 महीनों में जैसे-तैसे लक्ष्य पूरे करने पर जोर दिया जाता है । पूरी सरकारी मशीन इस काम में लग जाती है । इस भागदौड़ में गलत तरीकों से भी लक्ष्यों को पूरा किये जाने का प्रयत्न किया जाता है । 1996 से लक्ष्ययुक्त दृष्टिकोण अपनाया जाता है ।

8. प्रशिक्षित चिकित्सकों व कर्मचारियों का अभाव (Lack of Trained Staff)-

देश में योग्य एवं प्रशिक्षित चिकित्सकों को अभाव है । देश की 70% जनंसख्या गाँवों में रहती है और 80% डॉक्टर शहरों में । चिकित्सक इस कार्यक्रम को मन से नहीं बल्कि सरकारी निर्देशों की अनुपालना से पूरा करते हैं ।

9. स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव (Adverse Impact on Health)-

कई बार गर्भ निरोधक साधनों के उपयोग से लोगों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । इससे लोगों में भय का वातावरण व्याप्त है । इसी तरह इस कार्यक्रम के संबंध में अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई है जिनका समाधान आवश्यक है ।

10. परिवार नियोजन साधनों की असफलता (Failure of Family Planning Devices)-

कई बार परिवार नियोजन साधनों को अपनाने के बावजूद भी गर्भ ठहर जाता है । इससे समाज में कई तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है ।

11. केवल संख्यात्मक नियन्त्रण (Only Quantitative Control)-

इस कार्यक्रम में संतानोत्पत्ति नियन्त्रण को प्राथमिकता दी गई । लेकिन गुणात्मक पहलू-मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है ।

12. यौन शिक्षा का अभाव (Lack of sex Education)-

भारत में युवक-युवतियों में यौन शिक्षा का अभाव होने के कारण इस कार्यक्रम के प्रति जागरूकता उत्पन्न नहीं होती है ।

13. पेशेवर लोगों का प्रभाव (Gang of Professionals)-

इस कार्यक्रम पर कुछ पेशेवर लोगों का प्रभाव है । कुछ लोग बार-बार नसबन्दी के लिए आते हैं । प्रेरक लोगों की एक गैंग है । गरीब लोग थोड़े से लालच में आ जाते हैं । उनको निर्धारित राशि भी नहीं दी जाती है ।

14. नौकरशाही का बोलबाला (Dominance of Bureaucracy)-

परिवार कल्याण कार्यक्रम पर नौकरशाही का दबदबा है । डॉ. पन्निकर ने अपने अध्ययन में बताया है कि, "परिवार कल्याण कार्यक्रम अत्यधिक केन्द्रित तथा नौकरशाही प्रधान है ।"

15. अपर्याप्त वित्तीय प्रेरणा (Inadequate Incentives)-

परिवार कल्याण कार्यक्रम को अपनाने वाले लोगों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता अपर्याप्त है

16. सामाजिक सुरक्षा के अभाव (Lack of Social Security)-

सामाजिक सुरक्षा के अभाव के कारण भी यह कार्यक्रम पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ है। परिवार कल्याण कार्यक्रम को इन कमियों से मुक्त करना होगा तथा इसे गंभीरता से लागू करना होगा ताकि आर्थिक विकास का लाभ सर्वसाधारण तक पहुँच सके । जनसंख्या की समस्या का युद्ध स्तर पर मुकाबला किया जाना चाहिए । इस संबंध में शहरी विकास संस्थान निदेशक ने यह सुझाव दिया है कि भारत को जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए तुरन्त कदम उठाने चाहिए और इसके लिए चीन की भाँति **"एक परिवार एक बच्चा'** (One family One Child) का सिद्धांत अपनाना चाहिए ।

परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता के लिए सुझाव (Suggestion for the success of the Family Welfare Programme)

भारत में परिवार कल्याण को अधिक सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. **छोटे -.परिवार के महत्त्व का प्रचार (Publicity of the Importance of small Family)-**

   प्रचार-प्रसार के साधनों से छोटे परिवार के महत्त्व को समझाया जाना चाहिए । छोटे परिवार के लाभ एवं बड़े परिवार की परेशानियों से भी अवगत करवाया जाना चाहिए ।

2. **ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं. में वृद्धि (Medical Facility in Rural Areas)-**
   ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की वृद्धि की जानी चाहिए तथा उन्हें इस कार्यक्रम के लाभों से अवगत करवाया जाना चाहिए ।

3. **स्त्री शिक्षा पर जोर (Women Education)-**
   इस कार्यक्रम की सफलता के लिए स्त्री को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए । देश के केरल राज्य में जहाँ स्त्री साक्षरता का स्तर ऊँचा है वहाँ जन्म दर नीची है । इसके विपरीत उत्तर प्रदेश में जहाँ स्त्री साक्षरता का स्तर नीचा है वहाँ जन्म दर ऊँची है ।

4. **शिशु मृत्यु दर पर नियन्त्रण (Control on Infant Mortality)-**

इस कार्यक्रम के माध्यम से शिशु मृत्यु दर पर भी नियन्त्रण लगाया जाना चाहिए । दक्षिण भारत में एक सर्वेक्षण के अनुसार 49 गर्भवती महिलाओं ने परिवार नियोजन को इसलिए नहीं अपनाया, क्योंकि वे अपने बच्चों के जीवित रहने के विषय में निश्चित नहीं थी । इसका हल यह है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम को शिशु कल्याण के साथ जोड़ दिया जाये ।

5. प्रादेशिक दृष्टिकोण (Regional Approach)-

जनंसख्या वृद्धि के संबंध में देश के विभिन्न भागों की परिस्थितियों में अंतर है जिन राज्यों में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है उनमें लड़कियों की शादी की औसत उस कम थी । जिन राज्यों में शादी की औसत उम्र कम है वहाँ इसे बढ़ाया जाना चाहिए ।

6. भ्रांतियों का निवारण (Removal of Misgivings)-

इस कार्यक्रम के बारे में हुई विभिन्न भ्रांतियों का यथाशीघ्र निवारण किया जाना चाहिए।

7. सस्ते साधनों का विकास (Easy Availability of Means)-

परिवार नियोजन के काम आने वाले साधनों को सस्ती दर पर एवं पर्याप्त मात्रा में सभी इच्छुक दम्पत्तियों को उपलब्ध करवाया जाना चाहिए ।

8. यौन शिक्षा (Sex Education)-

युवक-युवतियों को पाठ्यक्रम एवं अन्य तरीकों से यौन शिक्षा दी जानी चाहिए । जिससे कि वे सुखी दाम्पत्य जीवन जी सकें तथा स्वस्थ संतान प्राप्त कर सकें । यौन शिक्षा के द्वारा यौन विकारों पर भी रोक लगाई जा सकेगी ।

9. धार्मिक एवं सामाजिक बंधनों से मुक्ति

(Removal of Religious and Social)-

देश में समान कानून बनाना चाहिए जो सभी भारतीयों पर समान रूप से लागू हो ।

10. शिविर दृष्टिकोण के स्थान पर चिकित्सालय दृष्टिकोण

(Clinic Approach in place of Camp Approach)-

परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए शिविरों की जगह चिकित्सालयों में काम किया जाना चाहिए । चिकित्सालयों में संबंधित दम्पतियों की स्थायी रूप से देखभाल हो सकती है।

11. निजी चिकित्सकों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग

(Co-operation of Voluntary Organisations)-

इस कार्यक्रम में निजी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान लेना चाहिए । इनका समाज पर प्रभाव भी होता है तथा स्वयंसेवी संस्थायें प्रोत्साहन राशि के अलावा भी राशि दे सकती है । यद्यपि आजकल ऐसा किया जा रहा है तथापि इस दिशा में और अधिक प्रयास किया जा सकता है ।

12. जोर-जबरदस्ती पर रोक (No Coercion)-

भारत में यह कार्यक्रम स्वैच्छिक कार्यक्रम है । इसको लागू करने में किसी तरह की बाध्यता नहीं होनी चाहिए इसी तरह लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कुंवारे, वृद्ध, विधवा, विधुर आदि की नसबन्दी नहीं की जानी चाहिए ।

13. आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथिक प्रणालियों का प्रयोग

(Use of Ayurvedic and Homoeopathic Methods)-

इस कार्यक्रम की सफलता के लिए आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथिक चिकित्सा का भी लाभ उठाना चाहिए तथा इन्हें प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

14. गोपनीयता (Confidentiality)-

यह कार्यक्रम लोगों के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित है, अत: व्यक्ति से संबंधित अभिलेख गोपनीय रखे जाने चाहिए ।

15. विशेष सुविधायें (Special Facilities)-

नियोजित परिवार को विशेष सुविधायें दी जानी चाहिए । इस संबंध में राजस्थान 'ग्रीन कार्ड' योजना अच्छी हो सकती है ।

16. संबंधित कानूनों की अनुपालना (Observations of Related Statutes)-

परिवार नियोजन से संबंधित कानूनों का कड़ाई से पालन करना चाहिए । विवाह, जन्म, व मृत्यु का पंजीयन अनिवार्य किया जाना चाहिए ।

17. जनसहयोग (Public Co-operation)-

इस कार्यक्रम की सफलता के लिए जनसहयोग अत्यावश्यक है । इस संबंध में **के.के. पोहा (K.K. Pooviah)** का यह कथन उल्लेखनीय है कि, "मिस्त्र में हर शुक्रवार को शाम की नमाज के बाद यह दुआ की जाती है कि अल्लाह परिवार नियोजन के कार्यक्रम की अच्छी तरह सफल बनाने में सहायता दे ।" भारत में भी यह प्रार्थना की जानी चाहिए ताकि जनभावना उसके साथ जुड़े ।

अंत में यह कहा जा सकता है कि भारत में इस कार्यक्रम को, जो सफल नहीं हुआ है, सफल बनाना है । भारत का भविष्य इसकी सफलता पर निर्भर करता है । यह एक ऐसा कार्य है जिसमें हम सबका योगदान अपेक्षित है । यह हमारा कर्त्तव्य भी है । यदि हम जनसंख्या की इस बाढ़ को रोकने में सफल नहीं हुए तो हमारी सम्पूर्ण योजनायें धराशाही हो जायेगी ।

12.8 स्व- परख प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत का कौन-सा स्थान है?
   What is the position of India with regard to population?
2. जनसंख्या विस्फोट से क्या अभिप्राय है?
   What is the meant by Population Explosion?
3. जनसंख्या वृद्धि के दो प्रमुख कारण लिखिए ।
   Write two main causes of Population Explosion.
4. भारत की पहली जनगणना कब हुई थी?
   When first census of India taken place?
5. भारत की अन्तिम जनगणना कब हुई है?
   When last census of India taken place?

6. सन् 1921 को महान विभाजन का वर्ष क्यों कहा जाता है?
   Why year 1921 is called as year of great division?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण के कोई चार उपाय लिखो ।
   Suggest four measures to control over population.
2. जनांकिकी परिवर्तन के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?
   What are the principle of population study?
3. जनसंख्या विस्फोट के पांच कारण कौन-कौन से है?
   What are the five consequences of population explosion?
4. भारत की जनसंख्या की मुख्य समस्या क्या है?
   What is the main problem of population in India?
5. भारत में ऊँची जन्म दर होने के मुख्य कारण लिखो ।
   Discuss causes of High Birth rate in India?
6. भारत की जनसंख्या सम्बन्धी समस्या के समाधान के लिए तीन उपाय बताइये ।
   Point out three suggestion for solution of population problem in India?
7. भारत में परिवार नियोजन की प्रगति पर एक टिप्पणी लिखिए ।
   Write an essay on Progress of Family Planning in India?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में सन् 1950 से जनसंख्या वृद्धि की प्रमुख प्रवृत्तियां बताइये। इसके फलस्वरूप आर्थिक विकास किस प्रकार कठिन हो गया?
   Discuss briefly main trends of population Growth since 1950 in India. How economic development become difficult because of it's?
2. जनसंख्या विस्फोट से क्या अभिप्राय है? जनसंख्या विस्फोट रोकने के लिये व्यावहारिक सुझाव दे । What do you mean by population explosion? Give suggestion to check Population explosion.
3. जनसंख्या विस्फोट का भारत के निवासियों की आर्थिक सम्पन्नता पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? जनसंख्या विस्फोट रोकने के लिए व्यावहारिक सुझाव दीजिये ।
   What has been impact of population explosion on India's population? Give empherical suggestion to solve population explosion problem.

12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

1. भारत की जनसंख्या आकड़े एवं तथ्य, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2001
2. भारत की जनसंख्या, सामान्य अध्ययन, प्रतियोगिता साहित्य, आगरा, 2007

3. परीक्षा मंथन, सामान्य अध्ययन श्रृखला, इलाहाबाद, 2006
4. भारत, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली- 2007
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक आगरा, 2008
6. भारत में आर्थिक पर्यावरण, गुप्ता स्वामी, रमेश बुक डिपो, जयपुर- 2008
7. भारत में आर्थिक पर्यावरण, जाट, वशिष्ठ, भिण्डा, जैन, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर- 2008
8. भारतीय अर्थव्यवस्था, भिण्डा-पुरी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2008

इकाई-13: भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र
(Service Sector in Indian Economy)

इकाई को रूपरेखा :

13.1 प्रस्तावना

13.2 सेवा का अर्थ एवं परिभाषा

13.3 सेवा संगठनों की विशेषताएँ / प्रकृति

13.4 सेवा संगठनों के प्रकार

13.5 सेवा संगठनों का महत्त्व/भूमिका

13.6 सेवा क्षेत्र में विश्व व्यापार एवं भारत की स्थिति

13.7 सेवा संगठनों की समस्याएँ / सीमाएँ

13.8 सेवा संगठनों की सफलता के लिए सुझाव

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 स्व-परख प्रश्न

13.12 उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

विगत चार-पाँच दशकों से सम्पूर्ण विश्व में सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है । भारत में भी विगत वर्षों में विशेषत: उदारीकरण की नीति के बाद सेवा क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ है । भारत में उपलब्ध मानव शक्ति का समुचित उपयोग करने के लिए सेवा क्षेत्र का विस्तार भारत के हित में है । विगत वर्षों में हमारे देश में मानव शक्ति में गुणात्मक सुधार हुए हैं । हमारे यहाँ की जनसंख्या में युवाओं का प्रतिशत बढ़ रहा है । देश में शिक्षा एवं प्रशिक्षण सुविधाओं के तीव्र विकास के कारण हमारे यही पेशेवर लोगों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है । आज भारत की युवा शक्ति ने पेशेवरों के रूप में पूरे विश्व में अपना लोहा मनवाया है । हमारे यहाँ के डाक्टर, इंजीनियर्स, लेखाकार, सूचना प्रौद्योगिकी, प्रबन्धक, सलाहकार आदि पूरे विश्व में छाये हुए हैं तथा देश को इनसे बड़ी मात्रा में विदेश मुद्रा प्राप्त हो रही है । भारतीय पेशेवरों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त होने लगी है ।

भारत में सेवा क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ है । सन् 1997 में वाणिज्यिक सेवाओं के निर्यात से देश को 89 बिलियन अमेरिकी डालर की आय हुई जो 2006-07 में बढ़कर 81.3 बिलियन अमेरीकी डालर हो गयी । 2006-07 में देश की सकल राष्ट्रीय आय में सेवा क्षेत्र का योगदान 55.1% था जो उद्योग व कृषि क्षेत्र के संयुक्ता योगदान से भी अधिक था । 2006-07 में सेवा क्षेत्र में विकास दर 28% रही है । विश्व के कुल सेवा निर्यात में वर्तमान में भारत का योगदान 2.3% है । यदि सेवा क्षेत्र में इसी दर से वृद्धि होती रही तो 2012 में यह योगदान बढ़कर 6% हो जायेगा ।

13.2 सेवा का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य शब्दों में, सेवा से तात्पर्य उन अमूर्त क्रियाओं से है जो प्रतिफल के बदले एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के लिए की जाती हैं जिससे उस दूसरे व्यक्ति को संतुष्टि, आराम या सुविधा प्राप्त होती है । सेवा की कुछ परिभाषाएँ निम्नानुसार है:-

अमरीकी विपणन संघ (American Marketing Association) के अनुसार,'सेवाएँ वे क्रियाएँ, लाभ या संतुष्टि हैं जो विक्रय हेतु प्रस्तुत की जाती हैं अथवा माल के साथ उपलब्ध की जाती हैं । "

बेसम (bessom) के अनुसार, ' 'उपभोक्ता के लिए, सेवाएँ विक्रय हेतु प्रस्तावित वे क्रियाएँ हैं जो मूल्यवान लाभ या संतुष्टि प्रदान करती है, तथा वे क्रियाएँ हैं जिन्हें वह स्वयं अपने आप नहीं कर सकता है या अपने आप नहीं करने का निश्चय करता है । "

कुर्ज एवं बून (Kurtz and Boone) के अनुसार, ' सेवाएँ वे अमूर्त क्रियाएँ हैं जो चुने हुए बाजार क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक विकसित एवं वितरित करने पर औद्योगिक एवं उपभोक्ता उपयोगकर्त्ताओं की आवश्यकताओं को संतुष्ट करती हैं । "

भारत के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (Consumer Protection Act) के अनुसार, ' 'सेवा से तात्पर्य किसी भी प्रकार की सेवा से है जो सम्भाव्य उपभोक्ताओं को उपलब्ध की जाती है तथा बैंकिंग, वित्तीय, बीमा, परिवहन, अभिक्रिया, विद्युत व अन्य ऊर्जा की आपूर्ति, भोजन एवं आवास अथवा दोनों, मनोरंजन, आमोद-प्रमोद, समाचारों तथा अन्य सूचनाओं को प्रदान करने संबंधी सेवाएँ भी सम्मिलित हैं, किन्तु निःशुल्क अथवा व्यक्तिगत अनुबन्ध के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली सेवाओं को इनमें सम्मिलित नहीं किया जाता है । ' (धारा 2(1)(0)

कोटलर (Kotler) ने एक छोटी एवं सारगर्भित परिभाषा दी है । उनके अनुसार ' 'सेवा मूलत: अमूर्त कार्य का निष्पादन है जिसका एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को प्रस्ताव कर सकता है तथा जिससे किसी भी चीज पर स्वामित्व उत्पन्न नहीं होता है । इसका उत्पादन किसी भी भौतिक उत्पाद से जोड़ा जा सकता है अथवा नहीं भी । "

निष्कर्ष रूप में, सेवा वह अमूर्त क्रिया या क्रियाओं की श्रृंखला है जो किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को मूल्य के बदले प्रस्तुत की जाती है ताकि उस दूसरे व्यक्ति की समस्या का समाधान हो सके या उसे सुविधा या संतुष्टि प्राप्त हो सके । सेवा किसी उत्पाद के साथ या स्वतंत्र रूप से भी प्रदान की जा सकती है ।

13.3 सेवा संगठनों की विशेषताएँ/ प्रकृति

सेवा संगठनों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) **आर्थिक-सामाजिक संगठन-** सेवा संगठन आर्थिक, सामाजिक संगठन होते हैं । ये आर्थिक- सामाजिक, मानवीय एवं राष्ट्रीय उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं ।

(2) **सेवाओं का विक्रय-** ये संगठन किसी भौतिक वस्तु का विक्रय नहीं करते हैं । ये प्रतिफल के बदले सेवाएँ उपलब्ध करवाते हैं ।

(3) **संतुष्टि का विक्रय-**सेवा संगठन किसी भौतिक वस्तु का विक्रय नहीं करते हैं । वे तो संतुष्टि का विक्रय करते हैं । ग्राहक के संतुष्ट होने या उसकी समस्या का समाधान होने पर ही सामान्यत: वह संगठन को भुगतान करता है ।

(4) **प्रतिफल के विभिन्न नाम-**सेवा संगठनों द्वारा प्रतिफल के बदले सेवा का विक्रय किया जाता है, किन्तु विभिन्न सेवाओं के लिए प्रतिफल को भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है । कुछ सेवाओं में, वह शुल्क या 'फीस' कहलाता है तो कुछ में यह पारिश्रमिक कहलाता है । कुछ दशाओं में इस मूल्य को प्रभार, भाड़ा, किराया, कमीशन आदि नामों से जाना जाता है ।

(5) **अमूर्त क्रियाएँ-**सेवा संगठनों के द्वारा प्रदत्त सेवाएँ अमूर्त (intangible) होती हैं । इन्हें देखा, छुआ एवं सूँघा नहीं जा सकता है, बल्कि इन्हें केवल अनुभव किया जा सकता है।

(6) **अविभाज्य सेवाएँ-**सेवा संगठनों की सेवाओं को संगठन के व्यक्तियों या उपकरणों से पृथक नहीं किया जा सकता है । अत: इन सेवाओं को ग्राहकों को प्रत्यक्ष रूप से ही बेचा जा सकता है । उदाहरण के लिए चिकित्सक मरीज को ही सेवाएँ दे सकता है, किसी अन्य को नहीं ।

(7) **मध्यस्थ सम्भव-**यद्यपि सेवाओं को सेवा प्रदाताओं से पृथक नहीं किया जा सकता है फिर भी इन संगठनों में भी मध्यस्थ हो सकते है । होटल, परिवहन, बीमा आदि सेवाओं के अनेक मध्यस्थ होते हैं ।

(8) **नाशवान या असंग्रहणीय-**सेवायें नाशवान होती हैं एवं इनका संग्रहण नहीं किया जा सकता है । सेवा संगठन तभी सेवा प्रदान करते हैं जबकि ग्राहकों को आवश्यकता होती है । ग्राहक न होने पर उपलब्ध सेवा व्यर्थ हो जाती है । उदाहरणार्थ, यदि किसी समय विशेष पर ग्राहक नहीं आते हैं तो होटल के कमरे, हवाई जहाज में सीटें आदि खाली ही रहती है ।

(9) **साधन या माल का उपयोग-** सेवा संगठन सेवा देने के लिए अनेक साधनों का उपयोग करते है । इन साधनों में यंत्र, उपकरण, सामग्री, शारीरिक श्रम आदि होते हैं ।

(10) **साधनों के स्वामित्व का हस्तान्तरण नही-** यद्यपि सेवा संगठनों द्वारा सेवाएँ उपलब्ध करने में अनेक साधनों तथा सामग्रियों का उपयोग किया जाता है, किन्तु ये इनके स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं करते हैं । उदाहरण के लिए, चिकित्सा या मरम्मत सेवा संगठन सेवाओं के विक्रय के लिए स्थापित होते हैं । ये जाँच मशीनों या पुर्जों के विक्रय के लिए स्थापित नहीं होते हैं ।

(11) **उपयोगिता में वृद्धि-** सेवा संगठन माल या वस्तुओं की उपयोगिता में भी वृद्धि करते हैं । परिवहन संगठन स्थान उपयोगिता में, भण्डारण संगठन समय उपयोगिता में वृद्धि करते हैं ।

(12) **माल के अधिकार का अस्थायी हस्तान्तरण-**सेवा संगठनों की एक विशेषता यह भी है कि कुछ संगठनों को अपने माल के अधिकार का अस्थायी हस्तान्तरण करना पड़ता

है। उदाहरणार्थ टैण्ट हाऊस को टैण्ट क्राकरी, होटल को कमरे आदि किराये देने वाले को माल के अधिकार का अस्थायी हस्तान्तरण करना पड़ता है ।

(13) **सेवाओं में विषमता-**एक ही प्रकार की सेवाएँ देने वाले विभिन्न संगठनों की सेवाओं में भी अन्तर पाया जाता है । ऐसा इसलिए होता है कि ये सेवाएँ व्यक्तियों द्वारा प्रदान की जाती हैं और व्यक्तियों का चातुर्य भिन्न-भिन्न होता है । जैसे डाक्टर या वकील की सेवायें ।

(14) **संगठनों का आकार-**जिन सेवाओं के संचालन में व्यक्तिगत ज्ञान, श्रम तथा चातुर्य की आवश्यकता अधिक होती है तथा पूँजी की आवश्यकता कम होती है, उन संगठनों का आकार प्राय: छोटा ही होता है । परन्तु जिनमें पूँजी की आवश्यकता बहुत अधिक होती है तथा यंत्रों एवं उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है, वे सेवा संगठन बहुत बड़े भी हो सकते है । स्वास्थ्य के क्षेत्र में उन्नत तकनीकी के उपकरणों का उपयोग बढ़ने से आज बड़े-बड़े अस्पताल बनने लगे हैं । किन्तु वकील, कर-सलाहकार, विनियोग सलाहाकार आदि सेवाओं में व्यक्तिगत ज्ञान एवं चातुर्य की अधिक आवश्यकता होती है । अत: इनके संगठनों का आकार छोटा ही होता है ।

(15) **विस्तृत क्रियाएँ-** यद्यपि सेवा संगठनों की क्रियाएँ अत्यन्त विस्तृत है । इनके द्वारा पेशेवर, वैधानिक, व्यक्तिगत, परिवहन, बीमा, बैंक, संचार आदि अनेक प्रकार की सेवाएँ प्रदान की जाती है । आज विकसित राष्ट्रों में सेवा संगठनों का अर्थव्यवस्था में योगदान औद्योगिक संगठनों से कहीं अधिक हो गया है ।

(16) **उपभोक्ता तथा औद्योगिक सेवाएँ-**सेवा संगठनों द्वारा उपभोक्ता तथा औद्योगिक दोनों ही प्रकार की सेवाएँ प्रदान की जाती हैं ।

(17) **नियमन एवं नियंत्रण-** सेवा संगठनों का भी नियमन एवं नियन्त्रण किया जाता है । पेशेवर सेवाओं पर पेशे सम्बन्धी कानून तथा नियम लागू होते हैं । बीमा, बैंकों, परिवहन सेवाओं सम्बन्धी कानून भी सभी देशों में लागू होते हैं । हमारे देश में, उपभोक्ता संरक्षण कानून लागू होने के बाद अनेक सेवा संगठन इसके क्षेत्र में आ गये हैं ।

13.4 सेवा संगठनों के प्रकार

सेवा संगठन अनेक प्रकार के हैं । उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं के आधार पर इन्हें निम्नलिखित वर्गो में बाँट सकते हैं-

(1) **व्यापारिक सेवा संगठन (Mercantile Service Organisation)-**ये व्यावसायिक संगठन वस्तुओं के व्यापार (क्रय-विक्रय) में प्रत्यक्ष रूप से सेवा प्रदान करते हैं । ये संगठन व्यापार प्राप्त करने तथा व्यापार का विकास करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है । विभिन्न प्रकार के व्यापारिक एजेन्ट यथा, कमीशन एजेन्ट, परिशोध एजेन्ट, अग्रेषण एजेन्ट, निकासी एजेन्ट आदि व्यापार में महत्त्वपूर्ण रूप से सेवा करते हैं । इसी प्रकार कई सरकारी संस्थायें भी देशी, विदेशी व्यापार में महत्त्वपूर्ण सेवायें

प्रदान करती हैं जैसे निर्यात संवर्द्धन संस्थायें, व्यापारिक मण्डियाँ तथा उपज विनिमय केन्द्र, व्यापार संघ तथा चेम्बर आदि । इन सभी को व्यापारिक सेवा संगठन कहते हैं ।

(2) **वित्तीय सेवा संगठन (Financial)-**वित्तीय सेवा संगठन व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं तथा व्यवसाय के वित्तीय कार्यो के सम्पादन में सहयोग करते हैं । बैंक, विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ, देशी साहूकार आदि व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्त उपलब्ध करने की सेवा करते है तथा प्रतिफल में ब्याज प्राप्त करते हैं । इनके अतिरिक्त, बैंक धन के हस्तान्तरण करने, ग्राहकों के बिलों, चैकों आदि का भुगतान प्राप्त करने, अंशों पर देय राशि प्राप्त करने, कम्पनियों की सार्वजनिक जमायें एकत्र करने, व्यापारिक प्रपत्र जारी करने आदि की महत्त्वपूर्ण सेवा भी करते हैं ।

(3) **परिवहन सेवा संगठन (Transport Service Organisation)-**इनमें वे सभी सम्मिलित हैं जो परिवहन सेवा प्रदान करते हैं या परिवहन सेवा प्रदान करने में सहयोग करते हैं । भारत सरकार का रेल विभाग, बहुत बड़ा परिवहन सेवा संगठन है । इसी प्रकार इण्डियन एयर लाइन्स, एयर इण्डिया वायु-परिवहन क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण संगठन है । सड़क परिवहन मे सार्वजनिक, निजी तथा सहकारी क्षेत्र के अनेक संगठन कार्यरत है । ये यात्री परिवहन के लिए बसें, टैक्सियों आदि का संचालन करते हैं तथा माल परिवहन के लिए ट्रकों, ट्रोलियों की सेवायें उपलब्ध करवाते हैं ।

(4) **बीमा सेवा संगठन (Insurance Service Organisation)-**व्यवसाय में बीमा सेवा प्रदान करने वाले भी अनेक संगठन विद्यमान हैं । भारत में भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय सामान्य बीमा निगम तथा इसकी चार सहायक कम्पनियाँ, डाक विभाग का डाक बीमा विभाग तथा अनेक निजी बीमा कम्पनियाँ बीमा की सेवाएँ प्रदान करती हैं । ये व्यक्ति के साथ व्यावसायिक संगठनों को भी बीमा सुरक्षा प्रदान करते है। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का बीमा, सामूहिक तथा व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा, अग्नि बीमा, माल परिवहन का बीमा, तोड़ फोड़ का बीमा, उत्पाद दायित्व बीमा, उपद्रव बीमा, प्राकृतिक जोखिमों का बीमा आदि प्रमुख बीमों की सुविधा उपलब्ध हैं ।

(5) **संचार सेवा संगठन (Communication Service Organisation)-** संचार सेवा संगठन वे है जो संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने की सेवा करते हैं । कुछ संगठन मौखिक संदेशों के आदान-प्रदान में योगदान देते हैं तो कुछ अन्य संगठन लिखित सन्देशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते हैं । कुछ अन्य संगठन ऐसे भी है जो लिखित, मौखिक, दृश्य एवं श्रव्य सभी तकनीकों से संदेशों को पहुँचाने में योगदान करते हैं । भारत में डाक-तार विभाग, टेलिफोन तथा टेलेक्स सेवा विभाग सरकारी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं । निजी क्षेत्र में भी अब 'कूरियर सेवा' संगठनों का विकास हो रहा है । दूर संचार के क्षेत्र में टेलीविजन तथा रेडियो बहुत महत्त्वपूर्ण सेवा संगठन है । ये सार्वजनिक संदेशों के साथ-साथ निजी तथा व्यावसायिक सन्देशों

(विज्ञापनों) को भी जनता तक पहुँचाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । समाचार पत्र एक सशक्त संचार माध्यम हैं ।

(6) **भण्डारण सेवा संगठन (Warehousing Service Organisation)-**ये संगठन विद्यमान माँग से अधिक उपलब्ध माल को भावी मांग की पूर्ति के लिए सुरक्षित रखने के लिए सेवा प्रदान करते हैं । ये संगठन माल को समय उपयोगिता प्रदान करने का कार्य करते हैं । जिन उद्योगों में कुछ विशिष्ट वस्तुओं का उत्पादन विशिष्ट मौसम में ही सम्भव होता है उनके लिए इन भण्डारों की उपयोगिता अधिक होती है । गेहूँ चना, जी, आलू प्याज आदि ऐसी ही वस्तुएँ हैं ।

(7) **मनोरंजन सेवा संगठन (Entertainment Service Organisation)-** ये वे संगठन है जो समाज को मनोरंजन की सेवाएँ प्रदान करते हैं । इनमें सिनेमाघर, नाटक-मंच, वीडियो पार्लर, खेलकूद (घूड़दौड़) स्थल, सर्कस आदि प्रमुख हैं ।

(8) **आतिथ्य सत्कार सेवा संगठन (Hospitality Service Organisation)-** ये संगठन होटलों तथा मोटलों का संचालन करते हैं । ये संगठन विविध सुविधाओं से युक्त आवास सेवा प्रदान करते हैं । इस प्रकार के संगठन निजी तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में विद्यमान हैं ।ये संगठन भोजन, जलपान आदि की भी सेवा उपलब्ध कराते हैं। यद्यपि ये संगठन अपने माल का विक्रय करते हैं किन्तु इनके मूल्य में सेवा की लागत अधिक होती है । अत: ये सेवा संगठनों की श्रेणी में आते हैं । दुनियाभर में अनेक रेस्टोरेन्ट, कॉफी तथा टी स्टाल, भोजनालय, 'बार' आदि कार्य कर रहे हैं जो ऐसे ही संगठन हैं ।

(9) **निक्षेप सेवा संगठन (Bailment Service Organisation)-**निक्षेप सेवा संगठन वे संगठन है जो शुल्क देकर दूसरों को वस्तुएँ किराये पर देती हैं या दूसरों की वस्तुएँ सुरक्षा हेतु अपने पास रख लेते हैं । बर्तन-क्रॉकरी, सजावटी तथा विवाह की अन्य सामग्री, साइकिलें, मंच सामग्री आदि को किराये पर देने वाले अनेक संगठन है । इसी प्रकार कई संगठन ऐसे भी हैं जो लोगों की वस्तुओं को सुरक्षित रखने हेतु स्वीकार करते हैं । बैंक आभूषणों की सुरक्षा के लिए 'लीकर' तथा रेलवे व बस स्टेशन 'क्लाक रूम' की सुविधा देते हैं । इसी प्रकार स्कूटर, साइकिलों आदि के पार्किंग की सुविधा प्रत्येक सार्वजनिक स्थल पर उपलब्ध रहती है । ऐसी सेवायें देने वाले सभी संगठनों को हम निक्षेप सेवा संगठनों के नाम से पुकारेंगे ।

(10) **स्थायी सम्पत्ति सेवा संगठन (Real Estate Service Organisation)-** भूमि, भवन, कारखानों आदि स्थायी सम्पत्तियों के क्रय-विक्रय में सहयोग करने वाले संगठन इस श्रेणी के संगठन हैं ।

(11) **मरम्मत सेवा संगठन (Repair Service Organisation) -** यन्त्रों, उपकरणों आदि की मरम्मत करने वाले संगठन मरम्मत सेवा संगठन हैं । कार, स्कूटरों के सर्विस स्टेशन तथा गैरेज, रेडियो, टीवी. जैसे अनेक घरेलू उपकरणों की मरम्मत करने वाले संगठन इसी श्रेणी में आते हैं ।

(12) **पेशेवर सेवा संगठन (Professional Service Organisation)-**डॉक्टर, वकील, कर-सलाहकार आदि पेशेवर व्यक्तियों के संगठन पेशेवर सेवा संगठन कहलाते हैं । इन्हें शुद्ध व्यावसायिक सेवासंगठन नहीं कह सकते हैं क्योंकि इनका प्राथमिक उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता है । मानवता की सेवा करना इनका प्रमुख उद्देश्य होता है किन्तु आजकल ऐसे संगठनों का संचालन भी व्यावसायिक संगठनों की तरह ही किया जाने लगा हैं ।

(13) **व्यक्तिगत सेवा संगठन (Personal Service Organisation)-**व्यक्तिगत सेवा संगठन अपने ग्राहकों को अपनी व्यक्तिगत सेवा देते हैं । 'ब्यूटी पार्लर', 'हेयर कटिंग', 'सेलून', ड्राय-क्लीनिग फोटोग्राफी स्टूडियो' आदि सभी व्यक्तिगत सेवा वाले संगठन ही है ।

(14) **प्रबन्धकीय सेवा संगठन (Managerial Service Organisation)-**आधुनिक युग में व्यावसायिक प्रबन्ध में विशिष्ट सेवाओं का महत्त्व बढ़ गया है । परन्तु व्यवसाय के बढ़ते हुए कार्य क्षेत्र में सभी कार्यो के लिए विशेषज्ञ नियुक्त करना सम्भव नहीं हैं। फलत: व्यावसायिक संस्थाएँ अपने अनेक कार्यो को बाजार मे उपलब्ध विशेषज्ञ संस्थाओं से पूरा करवा लेती हैं । बाजार अनुसंधान, विज्ञापन कर्मचारियों तथा. प्रबन्धकों की भर्ती एवं चुनाव आदि कार्य करने वाली विशिष्ट सेवा संस्थाऐ हैं ।

13.5 सेवा संगठनों का महत्त्व / भूमिका

सेवा संगठनों का महत्त्व विश्व के सभी देशों तथा सभी अर्थव्यवस्थाओं में है । विकसित राष्ट्रों में सेवा संगठनों का महत्त्व और भी बढ़ रहा है । प्रो. ब्यूल (Buell) ने तो यहाँ तक कहा है कि "सेवा क्षेत्र अमरीकी अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक तीव्रगति से विकसित होने वाला क्षेत्र हैं और अब इनका मूल्य उत्पादित माल के मूल्य से अधिक हो गया है ।"

फैडेरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री (FICCI) ने एक अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत में सेवा उद्योग का विकास तीव्र गति से हो रहा है । फिक्की के सर्वेक्षण के अनुसार 1980 से 1987 के काल में भारत में सेवा उद्योग की विकास दर 6% रही है जबकि औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्र की विकास दर क्रमश 7.4% तथा 1.4% रही है । इसी अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में सेवा संगठनों का योगदान 46 प्रतिशत था जबकि औद्योगिक संगठनों का योगदान 43% रहा हैं । वर्ष2006-07 में सेवा क्षेत्र में विकास दर 28% रही है । इसी वर्ष भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान 55.1% रहा है जो सर्वाधिक है । इस वर्ष औद्योगिक क्षेत्र का योगदान 26.4% व कृषि क्षेत्र का योगदान 18.5% रहा ।

संक्षेप में, सेवा संगठनों का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है । प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में इनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है । इन संगठनों के महत्त्व के प्रमुख कारण निम्न हैं-

(1) **सकल घरेलू उत्पाद में योगदान-** प्रत्येक देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में सेवा संगठनों महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । अमरीका के सकल घरेलू उत्पाद मे सेवा

संगठनों का दो तिहाई से भी अधिक (लगभग 70%) योगदान है । भारत में 2006-07 में सकल घरेलू उत्पाद में 55-56% हिस्सा सेवा संगठनों से प्राप्त हुआ ।

(2) **रोजगार-**सेवा संगठन रोजगार के महत्त्वपूर्ण स्त्रोत होते हैं । विश्व बैंक के अनुसार 1980 में अमेरीका तथा कनाडा में 66% कर्मचारी सेवा संगठनों में ही कार्य करते थे । फ्रांस में 53%, जर्मनी में 50%, आस्ट्रेलिया में 61%, ब्रिटेन में 56% कर्मचारी सेवा संगठनों में ही रोजगार प्राप्त किये हुए हैं । 2004-05 में भारत में लगभग 28.47% कर्मचारी सेवा संगठन में कार्य करते थे जबकि 1981 में केवल 20% व्यक्ति ही सेवा संगठनों में कार्यरत थे ।

(3) **विदेशी मुद्रा के स्त्रोत-** सेवा संगठन विदेशी मुद्रा के भी बहुत बड़े स्त्रोत हैं । पर्यटन, नागरिक उड्डयन, नौ परिवहन, होटल आदि सेवा संगठनों से देश को प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है । 2006-07 मे अदृश्य निर्यात से देश को 2,40,933 करोड़ रु. की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है । 2006-07 में देश द्वारा 76.2 बिलियन डालर के बराबर वाणिज्यिक सेवाओं का निर्यात किया गया ।

(4) **उद्योगों के विकास में सहायक-**सेवा संगठन वे आधारभूत सेवाएँ प्रदान करते हैं जिनसे उद्योगों का विकास होता है । 'टर्न की सेवाएँ', प्रोजेक्ट इन्जीनियरिंग आदि के कारण उद्योगों की स्थापना में योगदान मिलता है ।

(5) **उद्योगों के संचालन में अनिवार्य-** सेवा संगठन वे अभाव में उद्योगों का संचालन करना हो कठिन होता है । उद्योग के रख-रखाव में सेवा संगठन का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । सेवा संगठन उद्योगों तथा मशीनों के रख रखाव में ठेके लेकर उन्हें रात-दिन के झंझटों से मुक्त कर देते हैं ।

(6) **पूँजी की आवश्यकता में राहत-** सेवा संगठनों ने अनेक औद्योगिक एवं व्यापारिक संगठनों को विशाल पूँजी आवश्यकताओं में राहत प्रदान की है । उदाहरण के लिए, लीजिंग (Leasing) संगठन पट्टे पर मशीनों उपलब्ध करा देते है । इससे उद्योगों का कम पूँजी से ही काम चल जाता है ।

(7) **आधारभूत सेवाओं की उपलब्धि-** परिवहन, संचार, बैंक, बीमा, भण्डारण आदि ऐसी आधारभूत सेवाएँ हैं जो सेवा संगठनों द्वारा प्रदान की जाती हैं । इन सेवाओं के बिना तो आज व्यवसाय का संचालन करना ही असम्भव-सा प्रतीत होता है ।

(8) **कार्यक्षमता में वृद्धि-** सेवा संगठन प्रत्येक संस्था तथा व्यक्ति की कार्यक्षमता की अभिवृद्धि में भी योगदान देते हैं । ये संगठन अपनी सेवाओं में औद्योगिक तथा व्यापार संगठनों को कार्य सुविधा प्रदान करके उनकी कार्य-क्षमताओं में वृद्धि करते हैं ।

(9) **अधिक सन्तुष्टि-** सेवा संगठन ग्राहकों की सन्तुष्टि में अभिवृद्धि करते है । ये ग्राहकों की अनेक व्यक्तिगत समस्याओं का निवारण तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । परिणामस्वरूप, ग्राहकों को अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होती हैं ।

(10) **जीवन स्तर तथा जीवन की किस्म में सुधार-** सेवा संगठन समाज के जीवन स्तर तथा जीवन की किस्म में सुधार करने में योगदान देते हैं । ये संगठन अपनी सेवाओं के माध्यम से लोगों को अधिक अच्छा जीवन बिताने में सहयोग करते हैं ।

(11) **जागरूकता एवं ज्ञान में वृद्धि-** सेवा संगठन समाज की जागरूकता को भी बढाते है । ये समाज मे नागरिकों को बहुत-सी ज्ञानवर्धक जानकारी प्रदान करते हैं । ये वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धि एवं उपयोग विधि की नागरिकों को जानकारी उपलब्धि कराते हैं ।

(12) **नागरिकों अधिकारों की सुरक्षा-** सेवा संगठन ऐसी अनेक सेवाएँ प्रदान करते हैं, जिनसे नागरिकों की सुरक्षा होती है । वैधानिक तथा सामाजिक सेवा संगठन ' ऐसे ही संगठन है जो नागरिकों के कानूनी एवं सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए कार्य करते हैं।

(13) **आनन्द एवं अवकाश की इच्छा की पूर्ति-** सेवा संगठन मानव जाति की आनन्द एवं अवकाश की इच्छा की पूर्ति करने में भी योगदान देते हैं । कुछ सेवाओं (परिवहन, संचार) ने मानव जाति के श्रम एवं समय को बचाया है और अवकाश के क्षण उपलब्ध किये है । मनोरंजन की कुछ सेवाएँ इन अवकाश के क्षणों में मानव जाति को आनन्द प्रदान करती हैं ।

(14) **व्यक्तित्व निर्माण एवं स्वास्थ्य रक्षा में योगदान-**सेवा संगठनों ने स्त्री-पुरुषों के व्यक्तित्व के निर्माण एवं स्वास्थ्य रक्षा में महत्त्वपूर्ण' भूमिका निभायी हैं । ब्यूटी पार्लर, हैल्थ क्लब, चिकित्सा क्लीनिक आदि ने व्यक्तित्व निर्माण एवं स्वास्थ्य रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

(15) **निश्चिन्ता-** सेवा संगठनों के कारण मानव जाति को निश्चिन्त जीवन जीने की सुविधा भी' उपलब्ध हो गई हैं । जैसे जीवन बीमा. अग्नि बीमा, बीमारी बीमा, दुर्घटना बीमा, यात्रा बीमा, घरेलू बीमा, एवं वृद्धावस्था पेंशन आदि सेवाओं के कारण मनुष्य अधिक निश्चिन्त जीवन जी सकता हैं ।

(16) **उपयोगिता का सृजन-** सेवा संगठन अनेक वस्तुओं की उपयोगिता का सृजन करते हैं । ये संगठन समय, स्थान, ज्ञान उपयोगिता का सृजन करते है । परिवहन सेवाएँ स्थान उपयोगिता का भण्डारण सेवाएँ समय उपयोगिता का, विज्ञापन, मनोरंजन, समाचार सेवाएँ ज्ञान उपयोगिता का सृजन करती है । 'ब्यूटी पार्लर' घरेलू या उत्सव सजावट सेवा संगठन या मनोरंजन संगठन मनोउपयोगिता का सृजन करते हैं । इनसे सुविधा एवं सन्तुष्टि दोनों ही प्राप्त होती है ।

13.6 सेवा क्षेत्र में विश्व व्यापार एवं भारत की स्थिति

सेवाओं में वित्त, बीमा, वस्तुओं का परिवहन आदि परम्परागत क्षेत्र रहे हैं । कम्प्यूटर तकनीक एवं दूर-संचार साधनों के विस्तार में साथ-साथ अब वाणिज्यिक सेवाओं का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर गया है । वैश्वीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति, उदारीकरण की नीति तथा नियमों में उदारीकरण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनियोग एवं सेवाओं में व्यापार का विस्तार हुआ है । विश्व के कुल 2.75 बिलियन डालर के सेवा व्यापार में विकासशील देशों का योगदान सर्वाधिक

रहा है । 2006 में विश्व वाणिज्यिक सेवाओं के 10 बड़े निर्यातकों में भारत व चीन भी शामिल हैं । 2006 में भारत की वाणिज्यिक सेवाओं के निर्यात की वृद्धि दर 24% थी जब कि इसी वर्ष चीन की वृद्धि दर 24% थी । वाणिज्यिक सेवाओं के आयात में भारत 2004 में 15 वें स्थान पर था जो 2005 व 2006 में 13 वें स्थान पर रहा । 2006 में विश्व के सेज व्यापार में भारत का अंश 2.4% रहा। यदि इसी गति से सेवा व्यापार का विकास हुआ तो 2012 में विश्व में भारत का अंश बढ़कर 6%' हो जायेगा । 2006 में भारत में सेवाओं के आयात की वृद्धि दर 29% थी जो प्रमुख 40 आयातकों में सर्वाधिक थी ।

विश्व वाणिज्यिक सेवाओं का निर्यात (In Us $ billion)

वर्ष	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007
निर्यात	16.8	19.1	23.1	38.5	68.0	73.0	76.2

भारत में सामान्य सेवाओं जैसे साफ्टवेयर सेवायें, व्यापारिक सेवायें, वित्तीय सेवायें तथा दूर संचार सेवाओं में वृद्धि दर सर्वाधिक रही है । 2004-05 में इन सेवाओं को वृद्धि दर 70.4%, 2005-06 में 37.5% तथा 2006-07 में 36.7% रही ।

भारत में सेवा क्षेत्र के निर्यात में विभिन्न सेवाओं के योगदान को निम्न तालिका से देखा जा सकता है-

भारत से सेवाओं के निर्यात में विभिन्न सेवाओं का योगदान (प्रतिशत मे)

सेवा	2000-01	2005-06	2006-07	2007-08 (अप्रेल -सितम्बर)
1. यात्रा (Travel)	21.5	13.6	12.0	12.1
2. परिवहन (Transportation)	12.6	11.0	10.6	11.9
3. बीमा (Insurance)	1.7	1.8	1.6	2.2
4. सकल राष्ट्रीय उद्देश्य निर्यात	4.0	0.5	0.3	0.5
5. अन्य (Miscellaneous)	60.3	73.0	75.6	73.3
जिनमें: (i) सोफ्टवेयर	39.0	40.9	41.1	45.5
(ii) गैर- सोफ्टवेयर	21.3	32.1	34.5	27.8
कुल सेवा निर्यात	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत - आर्थिक समीक्षा 2007-08 पेज 120

तालिका से स्पष्ट है कि 2006-07 में अन्य सेवाओं (सॉफ्टवेयर व गैर साफ्टवेयर) का योगदान 75.6% रहा हैं । गैर साफ्टवेयर सेवाओं में व्यापारिक सेवायें में वित्तीय सेवायें में तथा संचार सेवायें प्रमुख हैं ।2007-08 में व्यापारिक सेवाओं एवं संचार सेवाओं की वृद्धि दर ऋणात्मक रही है जब कि वित्तीय सेवाओं में 61.5% की वृद्धि दर्ज की गई है । भारत से सेवा आयातकों में अमेरिका व इंग्लैण्ड प्रमुख हैं । इनके बाद यूरोपियन यूनियन, दक्षिणी पूर्वी एशिया आदि का स्थान आता है । भारत ने यात्रा सेवा के क्षेत्र मे फ्रांस व इटली में भी अपनी उपस्थिति दर्ज

करायी है । दक्षिणी-पूर्वी एशिया में हांगकांग में भारत ने यात्रा सेवाओं में अपनी स्थिति सुदृढ़ की है ।

भारत द्वारा विश्व से सेवाओं का आयात भी किया जाता है । 2006-07 में भारत ने 44.4 बिलियन डालर सेवाओं का आयात किया । सेवाओं के आयात की वृद्धि दर 2000-01 से 2004-05 के मध्य 21.6% थी । 2005-06 मे यह दर बढ़कर 24%' व 2006-07 में 28.7%हो गयी ।

सेवाओं के आयात में व्यापारिक सेवाओं का भाग सर्वाधिक है । इसके बाद परिवहन एवं यात्रा सेवा का स्थान आता है । 2006-07 में व्यापारिक सेवाओं मे आयात की वृद्धि दर 120.6% रही । भारत में सेवाओं के आयात की स्थिति को निम्न तालिका में दर्शाया गया है ।

भारत में सेवाओं के आयात में विभिन्न सेवाओं का योगदान (प्रतिशत मे)

सेवा	2000-01	2005-06	2006-07	2007-08 (अप्रेल -सितम्बर)
1. यात्रा (Travel)	19.2	19.2	15.1	18.1
2. परिवहन (Transportation)	24.4	24.2	18.2	26.4
3. बीमा (Insurance)	1.5	3.2	1.4	2.2
4. GNIE	2.2	1.5	0.9	1.2
5. अन्य (Miscellaneous)	52.6	51.8	64.4	51.5
जिनमें- सोफ्टवेयर	4.1	3.9	5.1	5.8
गैर - सोफ्टवेयर	48.6	47.9	59.3	45.7
कुल सेवा निर्यात	100.0	100.0	100.0	100.0

स्रोत- आर्थिक समीक्षा 2007-08, पेज 121

भारत में गैर सोफ्टवेयर सेवाओं में वाणिज्यिक सेवायें, वित्तीय सेवायें तथा संचार सेवायें प्रमुख है । इनमें वाणिज्यिक सेवाओं का योगदान सर्वाधिक है । 2006-07 में अन्य सामान्य सेवाओं का योगदान 64.4% रहा है । इसमें व्यापारिक सेवाओं का भाग 38.5% रहा है । इसके बाद परिवहन सेवाओं का भाग18.2% तथा यात्रा सेवाओं का भाग 15.1% रहा है ।

योजना काल में भारत ने आत्मनिर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध मानव संसाधनों का उपयोग करते हुए देश में पेशेवर एवं कुशल कर्मियों का एक बड़ा संवर्ग तैयार किया गया । यह संवर्ग देश व विदेशों में अपनी सेवायें प्रदान कर रहा है। इन सेवाओं में स्वास्थ्य, पर्यटन, शिक्षा, इंजीनियरिंग, संचार, परिवहन व यात्रा, सूचना-प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, वित्त, बीमा, व्यापार, वास्तविक परिसम्पत्तियाँ, प्रबन्ध, स्टोरेज, व्यापारिक सेवायें, रक्षा, व्यक्तिगत सेवायें, प्रशासन, सलाहकार सेवायें आदि आती हैं । भारत इन क्षेत्रों में विकसित व विकासशील सभी देशों को सेवायें प्रदान कर रहा है । इन देशों में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, रूस तथा दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देश आते हैं । भारतीय पेशेवरों की कुशलता व क्षमता का विश्व स्तर पर लोहा माना जा रहा है । इससे देश को भारी मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त हो रहा है तथा यह राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत बन गया है ।

13.7 सेवा संगठनों की समस्याएँ / सीमाएँ

सेवा संगठनों की प्रमुख समस्याएँ व सीमाएँ निम्नानुसार है-

(1) **अमूर्त उत्पाद-** सेवा संगठनों के उत्पाद अमूर्त होते हैं । इन्हें खरीदने से पूर्व अनुभव भी नहीं किया जा सकता है । अत: इनके विक्रय में कठिनाई आती है ।

(2) **प्रमापीकरण का अभाव-** सामान्य सेवाओं का श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण नही किया जा सकता है । केवल कुछ सेवाओं में (जैसे होटल उद्योग में पाँच सितारा, तीन सितारा) श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण सम्भव होता है ।

(3) **किस्म नियन्त्रण में कठिनाई-**इनका श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण नही होने से सेवाओं की किस्म का नियन्त्रण भी कठिन होता है ।

(4) **अपृथकनीयता-**सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण को पृथक करना प्राय: सम्भव नहीं होता है । सेवाएँ सेवकों के साथ रहती हैं जिन्हें उपभोक्ताओं की इच्छानुसार प्रदान करना कठिन होता है ।

(5) **भौतिक हस्तान्तरण असम्भव-**सेवाओं को सेवकों से पृथक नही किया जा सकता है । इसी कारण सेवाओं का भौतिक हस्तान्तरण (Physical Transfer) सम्भव नहीं हैं । कभी-कभी इनका सांकेतिक हस्तान्तरण अवश्य किया जा सकता है । जैसे होटल के कमरे, या कार की चाबी सौंपकर सेवा का सांकेतिक हस्तान्तरण किया जा सकता है ।

(6) **स्वामित्व हस्तान्तरण असम्भव-**सेवाओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण (Transfer of Title or ownership) सम्भव नहीं होता है ।

(7) **परिवर्तनशील माँग-**सेवाओं की माँग सदैव समान नही रहती है । यह समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं । इस पर व्यक्ति की इच्छा, भावना तथा आर्थिक स्थिति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है ।

(8) **व्यक्तिगत दक्षता-**सेवा संगठनों की एक बडी सीमा यह भी है कि इनकी सफलता सेवा प्रदान करने वाले कर्मचारियों की दक्षता पर निर्भर करती है । अत: कर्मचारियों की छोटी-सी भूल भी सेवा संगठनों को बहुत भारी पड़ सकती है ।

(9) **संचालन में कठिनाई-**सेवा संगठनों में मानवीय साधनों का अधिक महत्त्व है । मानवीय साधनों का प्रबन्ध करना असाधारण दक्षता का कार्य है । अत: इनके संचालन में कठिनाइयाँ आती हैं ।

(10) **प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी-**सेवा संगठनों को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित कर्मचारी भी उपलब्ध नही होते हैं । इससे सेवा संगठनों के विकास में बाधा उपस्थित होती हैं ।

(11) **मूल्य निर्धारण की समस्या-**सेवा का प्रतिस्पर्धा मूल्य निर्धारित करना बहुत कठिन कार्य होता है । कम मूल्य रखने से हानि हो सकती है । कभी-कभी तो कम मूल्य के कारण ख्याति पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और बहुत अधिक मूल्य होने पर ग्राहकों को आकर्षित करना कठिन हो जाता है।

(12) **विक्रय में कठिनाई-**सेवा संगठनों द्वारा सेवा का विक्रय करना भी कठिन कार्य है । कई सेवाओं को तो ग्राहक तत्काल खरीद लेते हैं । किन्तु कुछ सेवाओं का विक्रय कठिन होता है । जैसे- एक बीमा पत्र बेचना ।

(13) **संकट में विक्रय-**कुछ सेवा संगठनों के पास ग्राहक संकट के समय ही जाते हैं । जैसे, चिकित्सा सेवाएँ । ये सेवा संगठन जनता को समय-समय पर स्वास्थ्य जाँच के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु जनता उन पर ध्यान नही देती है । जब बीमारी उत्पन्न हो जाती है तभी लोग चिकित्सक के पास जाते हैं । इससे इन सेवा संगठनों को कुशलतापूर्वक सेवा प्रदान करने में कठिनाई आती

(14) **सन्तुष्टि के मापन में कठिनाई-** सेवा प्रदाताओं द्वारा ग्राहकों की सन्तुष्टि या असन्तुष्टि को मापना कठिन होता है । कई सेवा संगठन अपने यहाँ ग्राहकों की टिप्पणियों के लिए पुस्तिकाएँ भी रखते हैं । किन्तु प्रत्येक ग्राहक अपनी बात सही ढंग से नहीं कह पाता है ।

13.8 सेवा संगठनो की सफलता के लिए सुझाव

सेवा संगठनों की सीमाओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनकी सफलता के लिए निम्नलिखित सुझावों पर अमल करना चाहिए-

(1) प्रत्येक सेवा के विकास के लिए कुछ केन्द्रीय संघ बनाने चाहिए ।

(2) इन संघों को अपने सदस्य संगठनों की सेवाओं के लिए कुछ आधारभूत मानदण्ड (Standards) निर्धारित करने चाहिए ।

(3) प्रत्येक सेवा से सम्बन्धित संघ को अपने सदस्यों के लिए आचार संहिता (Code of Conduct) तैयार करनी चाहिए ।

(4) प्रत्येक सेवा संगठन में नियुक्त किए जाने वाले कर्मचारी के लिए न्यूनतम योग्यता तथा प्रशिक्षण निर्धारित करना चाहिए ।

(5) सेवा संगठनों को अपने कर्मचारियों के लिए कार्यात्मक निर्देश प्रसारित करने चाहिए ।

(6) सेवा संगठनों को सेवा कार्यो में उपयोग किये जाने वाले साज सामान तथा सामग्री के प्रमाप निर्धारित करने चाहिए ।

(7) सेवा संगठनों के नियमन एवं नियन्त्रण के लिए सरकार को प्रभावकारी कानून बनाना तथा लागू करना चाहिये ।

(8) सेवा संगठन स्थापित करने वाले युवक एवं युवतियों को सरकार को आर्थिक सहायता उपलब्ध करनी चाहिये ।

13.9 सारांश

सेवा क्षेत्र देश का ' उभरता हुआ क्षेत्र है । पहले देश कृषि व उद्योग क्षेत्र से ही आय प्राप्त करता था । अब सेवा क्षेत्र से देश की GDP का आधे से अधिक भाग प्राप्त हो रहा है । यह क्षेत्र देश में उपलब्ध मानव संसाधनों के उपयोग का श्रेष्ठ साधन बन गया है । देश की श्रम शक्ति का 29% भाग सेवा क्षेत्र में लगा है । भारत में 2006 में सेवा क्षेत्र की वृद्धि दर 28%

थी । 2006-07 में वाणिज्यिक सेवाओं के निर्यात से देश को 76.2 बिलियन अमेरीकी डालर की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है । यह हमारी विशाल मानव शक्ति को उत्पादन कार्यो की ओर मोड़ने के साथ राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत बन गया है । हमारे पेशेवर एवं कुशल कर्मियों ने विश्व स्तर पर अपनी योग्यता के झंडे गाड़ दिये हैं । हमारे पेशेवर कमी विकसित व विकासशील देशों को निरन्तर सेवा प्रदान कर रहे हैं ।

13.10 शब्दावली

- सेवा- सेवायें वे अमूर्त क्रियाएँ हैं जो चुने हुए बाजार क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक विकसित व वितरित करने पर उपयोगकर्त्ताओं की आवश्यकता को सन्तुष्ट करती हैं ।
- अमूर्त- जिसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता है ।
- GNIE= Government not included elsewhere. (जिन सेवाओं को सरकार द्वारा किसी अन्य वर्ग में शामिल नहीं किया गया हो ।)
- अविभाजनीय- सेवा को सेवादाता से पृथक नहीं किया जा सकता है । इस कारण इसे अविभाजतीय (अपृथकनीय) कहा जाता है ।

13.11 स्वपरख प्रश्न

1. 'सेवा' का अर्थ एवं परिभाषा लिखिये ।
2. 'सेवा' की विशेषतायें बताइये ।
3. सेवा संगठनों के विभिन्न प्रकार बताइये ।
4. भारत के सन्दर्भ में सेवा क्षेत्र की भूमिका एवं महत्त्व का वर्णन कीजिये ।
5. सेवा क्षेत्र की सीमाएँ एवं समस्यायें बताइये तथा इन्हें दूर करने के लिए सुझाव दीजिये।

13.12 उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय अर्थव्यवस्था, नाथूराम का, सी. बी. एच., जयपुर ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था; दत्त एवं सुन्दरम्, एस. चान्द, नई दिल्ली ।
3. विपणन प्रबन्ध नौलखा, श्री महावीर बुक डिपो, दिल्ली ।
4. Marketing Management; Kothari, Metha & Sharma, RBD, Jaipur.
5. व्यावसायिक संगठन, नौलखा, रमेश, बुक डिपो, जयपुर ।
6. Economics Survey, 2007-08.
7. Banga Rashmi, “Role of Service in the growth process : A Survey”, Indian council for Trade and International Economic Relations (ICRIER), working paper 159 (2005)
8. D. Mazumdar and S. Sarkar, “Growth of Employment and Earnings in Tertiary Sector.” Eco. & Political weekly, March,2007

इकाई-14 :श्वेत क्रान्ति (White Revolution)

इकाई की रूपरेखा :

14.1 परिचय
14.2 श्वेत क्रान्ति
14.3 भारत में पशुपालन का उद्‌गम एवं विकास
14.4 दुग्ध उत्पादन एवं प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति उपभोग
14.5 दुग्ध उत्पादन वृद्धि के अनवरत प्रयास
14.6 श्वेत क्रान्ति के प्रभाव
14.7 गैर-ऑपरेशन फ्लड, पर्वतीय तथा पिछड़े क्षेत्रों में एकीकृत डेयरी विकास परियोजनाएँ
14.8 दुग्ध उत्पादन कार्यक्रम
14.9 दूध की प्रक्रिया
14.10 दुग्ध उत्पाद
14.11 दुग्ध उद्‌योग
14.12 श्वेत क्रान्ति-समस्यायें एवं समाधान
14.13 सारांश
14.14 शब्दावली
14.15 स्व-परख प्रश्न
14.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.1 परिचय (Introduction)

श्वेत क्रान्ति से आशय दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करने हेतु अपनायी गई व्यूहरचना से है । भारत में प्रति व्यक्ति दुग्ध का उपभोग विकासशील देशों की तुलना में कम है जबकि पशुधन की संख्या सर्वाधिक है । भारत की 70% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जिसकी आय का मुख्य स्रोत कृषि एवं इसकी सहायक क्रियायें हैं । कृषि की सहायक क्रियाओं में पशुपालन एक मुख्य क्रिया है । स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भी श्वेत क्रान्ति के लिए तात्कालीन ब्रिटिश शासकों द्‌वारा प्रयास किये गये थे । ब्रिटिश कम्पनी द्‌वारा प्रथम मिलिट्री डेयरी फार्म की स्थापना इलाहाबाद में 1889 में की गई ।

दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से 1964-65 में देश में सघन पशु विकास कार्यक्रम चलाया गया, जिसके अन्तर्गत धवल क्रान्ति लाने के लिए पशु मालिकों को पशुपालन के सुधरे तरीकों का पैकेज उपलब्ध कराया गया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात डॉ. वर्गीज कुरियन द्‌वारा 'आपरेशन फ्लड परियोजना 1970 से प्रारम्भ की गई जिसका मुख्य उद्देश्य दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में आशातीत वृद्धि करना था । श्वेत क्रान्ति के क्रियान्वयन एवं सफलता का शत-प्रतिशत श्रेय डॉ. कुरियन को जाता है।

14.2 श्वेत क्रान्ति (White Revolution)

देश में दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए 1970 से श्वेत क्रान्ति प्रारम्भ की गई, जिसे आपरेशन फ्लड प्रथम का नाम दिया गया । देश में 10 चयनित राज्यों में राजस्थान भी एक था । राज्य में 1970 में प्रथम चरण को क्रियान्वित किया गया । देश में 117 करोड़ रुपये डेयरी विकास पर खर्च किये गए । इसका उद्देश्य मुख्य रूप से दुग्ध व दुग्ध से बने पदार्थो का शहरी क्षेत्र में खपत बढ़ाना व उचित कीमत दिलाना था ।

1975 में राजस्थान राज्य डेयरी विकास निगम की स्थापना की गई । इसके साथ ही राजस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन की भी स्थापना की गई है । यह फेडरेशन ग्रामीण दुग्ध उत्पादकों से दुग्ध सहकारी समितियों के माध्यम से दुग्ध संग्रहण का कार्य करता है । संग्रहित दुग्ध को संकलित करने तथा भण्डारण करने के लिए डेयरी संयंत्रों तथा अवशीतन केन्द्रों की स्थापना का भी कार्य प्रारम्भ हुआ । डेयरी फेडरेशन उपभोक्ताओं को अच्छा दुग्ध व दुग्ध से निर्मित सामग्री उपलब्ध कराने, पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार लाने, पशु आहार की पूर्ति बढ़ाने व दुग्ध उत्पादकों को उचित मूल्य दिलाने का कार्य कर रहा है । श्वेत क्रान्ति का दूसरा चरण 1978 में लागू किया गया । राज्य में इस चरण का आरम्भ विश्व बैंक के सहयोग से 1980 के बाद गति पकड़ पाया । इसमें डेयरी क्षेत्र की उत्पादन क्षमता में सुधार के विभिन्न कार्यक्रम बना कर क्रियान्वित किये गये । राजस्थान में विश्व बैंक की सहायता से डेयरी विकास कार्यक्रम राज्य के 6 जिलों में राजस्थान डेयरी विकास निगम की देखरेख में चलाया जा रहा है । श्वेत क्रान्ति का तीसरा चरण सातवीं योजना में चलाया गया जो 1994 से समाप्त हो गया । इसका प्रमुख उद्देश्य ढांचे की स्थापना व उत्पादकता में स्थाई सुधार थे । गुजरात की आनन्द डेयरी के अनुभवों के आधार पर डेयरी विकास का कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है । राज्य में ऑपरेशन फ्लड को राजस्थान सहकारी डेयरी फेडरेशन द्वारा संचालित किया गया जिसका आधार प्राथमिक दुग्ध सहकारी समितियां हैं । जिला दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ इस संस्था के सदस्य होते हैं ।

14.2 श्वेत क्रान्ति के उद्देश्य (Objectives of White Revolution)

(i) दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना ।

(ii) पशु मालिकों को पशुधन में सुधार के उपाय बताना ।

(iii) पशुओं की नस्ल में सुधार करना ।

(iv) पशुओं में दुग्ध उत्पादकता बढ़ाना ।

(v) दुग्ध विपणन की समुचित व्यवस्था करना आदि ।

14.3 भारत में पशुपालन का उद्‌गम एवं विकास (Origin &Development of Animal Husbandary in India) :

दूध एक जीवनदायी पेय है । स्तनधारी जीवों की सभी प्रजातियां (मनुष्य से लेकर व्हेल तक) दूध उत्पन्न करती है । कई शताब्दी पूर्व संभवत: ईसा पूर्व 6000-8000 में मनुष्य ने दुधारू पशुओं को पालना शुरू किया ताकि नियमित रूप से दूध मिल सके । गाय, भैंस, बकरी, भेड़ और ऊंट प्रमुख दुधारू पशु है । भौगोलिक स्थिति के अनुरूप इन दुधारू पशुओं का पालन-पोषण किया जाता रहा है । धीरे-धीरे दूध आहार से आगे बढ़कर आय व रोजगार प्रदान करने का प्रमुख स्रोत बन गया ।

दुग्ध उत्पादन का कार्य अधिकांशत: लघु व सीमान्त किसान तथा भूमिहीन श्रमिक करते हैं । इससे समाज के कमजोर वर्गो को आर्थिक सुरक्षा मिलती है । इसे भारत के उदाहरण ' से समझा जा सकता है । देश के 72 प्रतिशत गाय-बैल, 65 प्रतिशत भैंस, 68 प्रतिशत सूअरों का मालिकाना हक लघु व सीमांत किसानों तथा भूमिहीन श्रमिकों के पास है । इन पशुधनों की उत्पादकता में बढ़ोतरी प्रत्यक्ष रूप से गरीबी उन्मूलन में सहायक होती है । दरअसल दुग्ध उत्पादन का बहुआयामी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है । इससे असमानता, गरीबी, कुपोषण पर सीधा प्रहार होता है । दुग्ध उत्पादन का सबसे सकारात्मक पहलू यह है कि इससे समाज के अकुशल लोगों, विशेषकर महिलाओं की स्थिति में सुधार होता है । जीवन स्तर में वृद्धि, बढ़ते शहरीकरण, प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी, बदलती अभिरूचि के कारण दूध की मांग में निरन्तर वृद्धि हो रही है । अब तो दूध का विविध रूपों में प्रयोग बढ़ रहा है । जैसे सुगन्धित दूध, आइसक्रीम, मिल्क केक, प्रोबायोटिक व मीठी लस्सी व दही आदि । यह प्रवृत्ति दुग्ध उत्पादकों के लिए शुभ. संकेत है ।

जब भी दुग्ध क्रान्ति की बात आती है एक ऐसे अतीत की छवि उभरकर आती है, जब भारत में दूध की नदियां बहा करती थी । हमारे पौराणिक साहित्य में भी 'क्षीर सागर का उल्लेख मिलता है । आधुनिक युग में भारत के विकास में औद्‌योगिक विकास के योगदान को नकारा नहीं जा सकता किंतु प्राचीनकाल में कृषि एवं पशुपालन ही भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार थे । आधुनिक समय में हालांकि व्यवसायिक एवं औद्‌योगिक क्षेत्र का स्थान सर्वोपरि है फिर भी कृषि और पशुपालन क्षेत्र गौण नहीं हो पाया और समानान्तर रूप से इसका महत्त्व और स्थान पूर्ववत् ही बना हुआ है । विश्व में भारत की ,स्थिति पशुओं की संख्या की दृष्टि से तो भारत का स्थान सर्वोपरि था ही, अब दूध उत्पादन में भी भारत प्रथम स्थान पर आ गया है । किंतु भारत में अभी भी अपनी क्षमता से बेहद कम दूध का उत्पादन हो रहा है । जिसके कारण हैं- भारतीय पशुओं में दूध देने की क्षमता कम है जिसके अनेक कारण हो सकते हैं जैसे उत्तम किस्म की नस्लों का अभाव आदि । दूसरी श्वेत क्रान्ति की सफलता सुनिश्चित करने के लिए भारत में प्रौद्‌योगिकी मिशन प्रारम्भ किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण रोजगार एवं आय बढ़ाने में डेयरी उद्‌योग की क्षमता का उपयोग करना है । इस मिशन के माध्यम से

गुजरात में अपनाई गई आनन्द पद्धति के आधार पर भारत में सहकारी समितियों का विस्तार करने में विशेष सहयोग मिला है । इसके लिए राज्य-स्तरीय समन्वय समितियां भी बनाई गई है । राष्ट्रीय डेयरी उद्योग के निरन्तर विकास हेतु अनुसंधान परिषद वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली डेयरी विकास बोर्ड, केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा), केन्द्रीय पशु आनुवंशकीय संस्थान, करनाल (हरियाणा), केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान, फरह (मथुरा), राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, इज्जत नगर (बरेली), भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, फांसी, पशु विज्ञान, महाविद्यालय मथुरा और विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों के संस्थान कार्यरत है ।

14.4 दुग्ध उत्पादन एवं प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति उपभोग (Milk Production & Per Capita Consumption Per Day) :

भारत में दूध के उत्पादन एवं प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उपभोग की दृष्टि से स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकता । वैसे स्थिति में निरन्तर सुधार के संकेत अवश्य मिल रहे हैं किंतु यदि हम दूसरे देशों के साथ भारत की तुलना करें तो हमें सरकारी एवं निजी स्तर पर काफी प्रयास करने होंगे तभी इस अंतर को मिटाया जा सकता हैं ।

दुग्ध उत्पादन और उपभोग में यह असन्तुलन देश के विभिन्न राज्यों में विद्यमान है । दूध की उपलब्धता की दृष्टि से प्रथम स्थान 800 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के साथ पंजाब का है जबकि 640 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के साथ दूसरा स्थान हरियाणा का है । यह उपलब्धता गुजरात में 230 ग्राम, बिहार में 111 - ग्राम,और पूर्वोतर भारत में 30 ग्राम है जबकि स्वास्थ्य विभाग के अनुसार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति उपलब्धता 220 ग्राम होनी चाहिए । भारत में औसत उपलब्धता 214 ग्राम यानी आवश्यकता से 06 ग्राम कम है।

जिस प्रकार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में असन्तुलन है उसी प्रकार का असंतुलन दुग्ध उत्पादन में भी देखने को मिलता है जिसके लिए जिन क्षेत्रों में हालत दयनीय है, वहां ज्यादा ध्यान देने और आधुनिक अनुसंधानों का लाभ उन प्रदेशों तक पहुंचाने की आवश्यकता है।

14.5 दुग्ध उत्पादन वृद्धि के अनवरत प्रयास

राष्ट्रीय विकास के अनुभवों से सीख लेकर सरकार ने डेयरी उद्योग के चरणबद्ध विकास हेतु चार परियोजनाएं अपनाई । इन परियोजनाओं को ही प्रथम श्वेत क्रान्ति की सफलता और दुग्ध उत्पादन की प्रगति का श्रेय दिया जा सकता है ।

1. प्रथम दुग्ध विकास परियोजना-

देश में दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रथम विकास परियोजना के अन्तर्गत भारत में सन् 1965 में राष्ट्रीय डेयरी निगम और वर्ष 1990 में भारतीय डेयरी निगम की स्थापना की गई । इसके कार्यकलापों से प्रोत्साहित होकर दुग्ध उत्पादकों में जागरूकता आई । दुग्ध उत्पादन क्षेत्र को गति प्रदान करने के लिए दोनों संस्थाओं के विश्व प्रसिद्ध अध्यक्ष डॉ. वर्गीज कुरियन के नेतृत्व में भारतीय डेयरी निगम के अन्तर्गत प्रथम श्वेत क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ ।

प्रतिदिन प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता (ग्राम मे)

वर्ष	भारत	अमेरिका
1950-51	132	512
1955-61	136	538
1960-61	128	617
1965-66	108	632
1970-71	113	550
1980-81	128	741
1983-84	135	748
1986-87	156	851
1989-90	166	860
2000-01	200	856
2006-07	214	900

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली ।

दुग्ध उत्पादन का क्षेत्रवार विवरण

राज्य	उत्पादन (हजार टन मे)	वार्षिक वृद्धि प्रतिशत मे
उत्तर प्रदेश	8267	4.02
पंजाब	49.50	4.02
राजस्थान	4932	3.00
गुजरात	3665	3.07
मध्य प्रदेश	3320	7.04
आन्ध्र प्रदेश	3056	6.04
हरियाणा	2960	4.02
पश्चिम बंगाल	3240	9.03
बिहार	2710	2.05
महाराष्ट्र	2900	5.02
कर्नाटक	2612	7.00
केरल	1625	8.05
असम	738	4.07
उड़ीसा	447	1.05

स्रोत - वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग , कृषि भवन ,नई दिल्ली

2. द्वितीय दुग्ध विकास परियोजना-

ऑपरेशन फ़्लड-I के नाम से प्रसिद्ध दूसरी दुग्ध विकास परियोजना की शुरूआत वर्ष 1970 में दस राज्यों को लेकर की । यह परियोजना 11 वर्ष तक चली । मदर डेयरी की स्थापना इसी परियोजना के दौरान की गई । चारों महानगरों मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता और दिल्ली में मदर

डेयरी की स्थापना करने के लिए 117 करोड़ रुपये का निवेश किया गया और दुग्ध उत्पादन में तेजी लाने के लिए तकनीकी निवेश कार्यक्रम चलाया गया ।

किसानों को आय अर्जक गतिविधियों में संलग्न करके विकास हेतु प्रेरित करने के लिए 1970 में ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम शुरू किया गया । आज दूध का राष्ट्रीय ग्रिड है जो 800 शहरों और कस्बों के उपभोक्ताओं को ताजे दूध की पूर्ति करता है । इस कार्यक्रम ने दूध व्यवसाय से मध्यस्थों का उन्मूलन किया और दूध की कीमतों में मौसमी उतार-चढ़ाव को रोकने में सफलता प्राप्त की । इसका परिणाम यह हुआ कि दूध, दुग्ध उत्पाद व वितरण किसानों के लिए लाभ का सौदा बन गया । इस प्रकार किसानों को अपने परिश्रम का लाभ मिला जो पहले मध्यस्थों की जेब में चला जाता था ।

यह कार्यक्रम गांवों में दूध उत्पादक सहकारिता की स्थापना और उन्हें आधुनिक तकनीक उपलब्ध कराने के लिए शुरू किया गया था । व्यापक रूप से इस कार्यक्रम का उद्देश्य दूध उत्पादन बढ़ाना, ग्रामीण आय में वृद्धि करने और दूध विपणन का लाभ दुग्ध उत्पादकों, तक न कि मध्यस्थों तक पहुंचना था ।

3. तृतीय दुग्ध विकास परियोजना-

इस परियोजना को वर्ष 1978 से 1985 तक सात वर्ष की अवधि के दौरान चलाया गया । इस परियोजना को 'ऑपरेशन फ़्लड-II नाम दिया गया जिसके अन्तर्गत ग्रामीण दुग्धशालाओं को उपभोक्ता केन्द्रों से जोड़ने के लिए एक राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड की स्थापना की गई जिसके परिणाम अत्यन्त सकारात्मक रहे ।

4. चतुर्थ दुग्ध विकास परियोजना-

आपरेशन फ्लड के प्रथम चरण का वित्त खाद्य कार्यक्रम के तहत यूरोपीय देशों द्वारा उपहार स्वरूप दिए गए दूध पाउडर और मक्खन के भारत में बिक्री से हुआ था । सहकारी डेयरी विकास केंद्र के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. वर्गीज कुरियन ने यूरोपीय आर्थिक समुदाय द्वारा प्राप्त सहायता की विस्तृत रूपरेखा तैयार की थी । उन्होंने इस योजना के प्रशासनिक पहलुओं की समीक्षा की । योजना के प्रथम चरण में देश के 18 सर्वोत्तम दूध उत्पादक क्षेत्रों को देश के चार महानगरों (दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता और चेन्नई) के दूध बाजार के रूप में विकसित करना था । इस परियोजना को **'ऑपरेशन फ्लड-III'** नाम दिया गया । परियोजना के दौरान इसके उद्देश्य को सार्थक करने अर्थात् भारत में दूध की नदियां बहाने के लक्ष्य को अपनाकर मार्च 1988 तक 50 लाख70 हजार परिवारों को इस कार्यक्रम से जोड़ा । चूंकि भारतीय डेयरी निगम इतने विशाल तंत्र पर नियन्त्रण करने में समर्थ नहीं था, इसलिए इसके अध्यक्ष ने अपनी सूझबूझ और दूरदृष्टि का परिचय देते हुए लगभग 50000 दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियों की स्थापना की । इस प्रकार भारतीय डेयरी निगम देश के 168 क्षेत्रों में स्थित इन सहकारी समितियों से प्रतिदिन औसतन 63 लाख लीटर दूध खरीदता है । इस परियोजना के दौरान पहले से ही स्थापित राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड क्षेत्रीय असमानताओं और असंतुलन को दूर करने के लिए दूध को एकत्रित एवं वितरित करने का कार्य करने लगा ।

आपरेशन फ्लड के द्वितीय चरण में 136 दूध उत्पादक क्षेत्रों को 290 शहरी क्षेत्रों से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । बाहरी सहायता से शुरू हुए इस आन्दोलन ने 1985 के अंत तक 43000 ग्राम सहकारिताओं का आत्मनिर्भर तंत्र स्थापित कर लिया था जिसमें 42.5 लाख दूध उत्पादक सम्मिलित थे । दूध पाउडर उत्पादन 1985 के 22000 टन से बढ़कर 1989 में 140000 टन तक पहुंच गया । दुग्ध उत्पादक सहकारिताओं द्वारा दूध की सीधी बिक्री ने दुग्ध उत्पादक को प्रतिदिन लाखों लीटर तक पहुंचाने में सहायता दी ।

आपरेशन फ्लड के तीसरे चरण ने डेयरी सहकारिताओं को इस योग्य बनाया कि वे दूध उत्पादन व विपणन से जुड़े आधारभूत ढांचे को सुदृढ़ बनाएं ताकि अधिक से अधिक दूध का उत्पादन व विपणन हो सके । पशुओं की चिकित्सा संबंधी सुविधाएं भी विकसित की गई ।

ऑपरेशन फ्लड-III को सफल बनाने के लिए राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, आनंद, मानसिंह प्रशिक्षण संस्थान, मेहसाणा, गलता भाई देसाई प्रशिक्षण संस्थान, पालपुर तथा तीन क्षेत्रीय प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण केन्द्रों में इससे संबंधित विभिन्न एजेंसियों के कर्मचारियों और किसानों को प्रशिक्षण सुविधायें उपलब्ध कराई गई ।

दुग्ध उस्थ्यदन बढाने हेतु सकारात्मक प्रयास पहली श्वेत क्रान्ति की सफलता सुनिश्चित करने के लिए कुछ कदम उठाये गए जिनके परिणामस्वरूप सफलता प्राप्त हुई ।

5. निरन्तर अनुसंधान-

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए लगातार अनुसंधान किये जा रहे हैं किस क्षेत्र में किस नस्ल के पशु सार्थक रहेंगे कैसा चारा उपयुक्त रहेगा, रोगों से बचाव कैसे किया जाए आदि विषयों पर निरन्तर अनुसंधान कार्य चलते रहते हैं और इन अनुसंधानों के प्राप्त निष्कर्षों की जानकारी पशु पालकों को दी जाती है ।

वर्ष	दुग्ध उत्पादन (मिलियन तन में)
1991-92	56.03
1992-93	58.06
1993-94	65.00
1994-95	65.00
1996-97	68.02
1997-98	71.74
2000-01	98.07
2005-06	107.00
2006-07	112.08
2020 (लक्ष्य)	235.00

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली

6. आधुनिक डेयरियों की स्थापना-

आजकल सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में आधुनिक संयंत्रों एवं सुविधाओं से युक्त डेयरी स्थापित करने का चलन बढ़ गया है । दिल्ली, पूना, करनाल, गुंटा एवं हरघटा (पश्चिमी बंगाल) में ऐसी

डेयरियां स्थापित की गई है । दुग्ध उत्पादों के परिरक्षण एवं प्रसंस्करण के लिए अमृतसर, आणंद, हसना एवं राजकोट में कारखाने स्थापित किये गए हैं ।

7. परिवहन व्यवस्था-

पूरे देश में विवरण तंत्र स्थापित करने के लिए आधुनिक परिवहन की शुरूआत की गई । चूंकि एवं दुग्ध उत्पादों को सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचाना होता है, इसलिए गीतगृहयुक्त परिवहन व्यवस्था की गई ताकि उत्पादों की बर्बादी न हो ।

8. दुग्ध संयंत्रों की स्थापना-

श्वेत क्रान्ति की सफलता और डेयरी उद्योग के विकास को सुनिश्चित करने के लिए देश भर में 197 दुग्ध संयंत्रों की स्थापना की गई । इनमें तरल दुग्ध संयंत्र, दूध उत्पादन करने वाले कारखाने प्रयोगशालायें तथा दुग्ध परियोजना एवं गांवों में स्थित डेयरियां शामिल है । दूसरी श्वेत क्रांति को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए इनमें विस्तार किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं ।

9. पशु-नस्ल सुधार योजना-

पशु नस्ल सुधार संबंधी योजना को पूरे देश में 631 ग्रामीण खण्डों में चलाया जा रहा है । इस योजना के माध्यम से अच्छी नस्ल के साण्ड तैयार किये जा रहे हैं । कृषि कार्यो हेतु भैंसों की आवश्यकता नाममात्र की रह गई है । इसलिए इन खण्डों के माध्यम से साण्डों और भैंसों के नस्ल सुधार कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं । इसके अलावा, देश भर में 1500 से अधिक कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किये गए है जिनके माध्यम से मिश्रित नस्ल के पशु तैयार किये जा रहे हैं ताकि उन पशुओं से अधिकतम दूध का उत्पादन किया जा सके ।

10. चारा बैंकों की स्थापना-

देश के विभिन्न नगरों और कस्बों में चारा बैंक विद्यमान हैं जहां से पौष्टिक एवं उत्तम क्वालिटी का चारा प्राप्त किया जा सकता है । विदेशी नस्ल की गायों और साण्डों के लिए विशेष किस्म का आहार ब्लॉक खण्डों में उपलब्ध होता है जिससे अधिकतम दूध प्राप्त किया जा सकता है । इनके अलावा, जगह-जगह कटा हूआ हरा चारा भी उपलब्ध हो जाता है ।

11. पशु डेयरी विकास परियोजना-

इस प्रकार की परियोजनाएं राजस्थान, गुजरात, पंजाब, मध्य प्रदेश और कर्नाटक में विश्व बैंक की सहायता से चलाई जा रही हैं जिनके अन्तर्गत पशुपालकों को विविध प्रकार की सहायता एवं प्रोत्साहन प्रदान करके दूध का उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया गया है । इन परियोजनाओं के परिणामस्वरूप वर्ष1991 -92 के 5.8 करोड़ टन दूध के उत्पादन से बढ़कर 2000-200 व में 8.3 करोड़ टन रु का उत्पादन क्या और 2010-11 तक 15 करोड़ टन दुग्ध उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

12. पशुधन बीमा योजना-

पूरे देश में नाममात्र के प्रीमियम पर पशुओं का बीमा किया जाता है ताकि पशु की मृत्यु होने की स्थिति में पशुपालक को घाटे से बचाय जा सके । इसके लिए पशु की मृत्यु होने पर बीमा एजेन्सी का पशु-चिकित्सक मृत्यु होने के कारण साथ बीमा दावे हेतु अपनी रिपोर्ट बीमा कंपनी को भेजता है।

13. पशु-चिकित्सा व्यवस्था-

पशुओं को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के लिए देश भर में 12,370 पशु-चिकित्सा केन्द्रों और लगभग 70 एबुलेंस दवा केन्द्रों की व्यवस्था सरकार ने की है । ये केन्द्र समय-समय पर पशुपालकों को पशु रोगों और उनके निदान की जानकारी प्रदान करते हैं ।

14. पशु-क्रय हेतु ऋण व्यवस्था-

देशभर में सभी राष्ट्रीय बैंकों की शाखाएं पशु खरीदने के लिए ऋण सुविधा प्रदान करती है । कुछ मामलों में पशु खरीदने हेतु ऋण सुविधा उपलब्ध कराई जाती है । ग्रामीण क्षेत्रों में किसान विकास एजेन्सियां भी पशु खरीदने हेतु ऋण सुविधा उपलब्ध करा रही है ।

15. दुग्ध संगठनों की स्थापना-

दूध के संग्रहण एवं वितरण के लिए केन्द्रीय, प्रादेशिक, जिला एवं ग्राम स्तरों पर अनेक संगठन एक सहकारी समितियां कार्यरत हैं । राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड और गुजरात में अमूल डेयरी इनमें प्रमुख हैं । निजी क्षेत्र में पारस, पराग, नेस्ले, मार्डन फूड आदि की कार्य प्रणाली ने दूध उद्योग और व्यवसाय को नए आयाम दिए हैं ।

ऊपर दिए गए विवरण, दुग्ध क्षेत्र द्वारा की जा रही अनवरत प्रगति, दुग्ध उत्पादन हेतु सरकार द्वारा दिए जा रहे विभिन्न प्रोत्साहनों और सुविधाओं, निरन्तर चलने वाले अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों, दुग्ध संगठनों के सकारात्मक प्रयासों और दुग्ध परियोजनाओं के सफल क्रियान्वयन के आधार पर कहा जा सकता है कि हमें द्वितीय क्रियान्वयन के आधार पर कहा जा सकता है कि हमें द्वितीय श्वेत क्रान्ति के उद्देश्य में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होगी और भारत में पुन: दूध की नदियां बहने लगेंगी और भारत पौराणिक साहित्य में किये उल्लेखों के अनुसार स्वयं में 'क्षीर सागर' बन जायेगा ।

14.6 श्वेत क्रान्ति के प्रभाव (Effects of White Revolution) :

दुग्ध सहकारी संघों ने किसानों के आय का एक स्थायी व नियमित माध्यम प्रदान किया । इससे उनकी आय बढ़ी और जीवन-स्तर में सुधार आया । ग्रामीण क्षेत्रों में आय का अनुकूल संभावना से ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन रुका ।

भारत में उत्पादन एवं व्यक्ति उपलब्धता

वर्ष	उत्पादन (दस लाख टन)	प्रति व्यक्ति उपलब्धता (ग्रा. प्रति)
1991-1992	55.7	178
1992-1993	58.0	182
1993-1994	60.6	187
1994-1995	63.8	194
1995-1996	66.2	197
1996-1997	69.1	202
1997-1998	72.1	207
1998-1999	75.4	213
1999-2000	78.3	217

2001-2002	80.6	220
2002-2003	84.4	225
2003-2004	86.2	230
2004-2005	88.1	231
2005-2006	92.5	233
2006-07	97.1	241
2007-08	100.1	246

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली।

सकाल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में डेयरी क्षेत्र का योगदान

वर्ष	**जीडीपी में योगदान (प्रतिशत में)**
1980-81	4.8
2002-03	6.5
2006-07	5.3

दूध के उपयोग का अनुपात (प्रतिशत में)	
तरल रूप में	46
घी ,पनीर ,दही	50
पाउडर ,चीज ,आदि	4

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली।

बेरोजगारी दूर करने में दुग्ध सहकारी संघों ने सशक्त हथियार का कार्य किया । डेयरी आन्दोलन ने ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया । समाज के कमजोर वर्गो को भी आर्थिक रूप से समर्थ बनाने में दुग्ध सहकारिताओं ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई । इस प्रकार देश में दुग्ध सहाकरी संघ मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रभावी साधन के रूप में उभरे हैं।

14.7 गैर-ऑपरेशन फ्लड, पर्वतीय तथा पिछड़े क्षेत्रों में एकीकृत डेयरी विकास परियोजनाएँ :

यह योजना गैर आपरेशन फ्लड पर्वतीय एवं पिछड़े क्षेत्रों में 100 प्रतिशत अनुदान सहायता के आधार पर 1993-94 में आरम्भ की गई । इसका उद्देश्य तकनीकी सेवा प्रदान करके दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करना, दुग्ध उत्पादकों को लाभकारी मूल्य दिलाना, अतिरिक्त रोजगार के अवसर जुटाना तथा पिछड़े क्षेत्र के लोगों को सामाजिक आर्थिक सुधार करना है । मार्च, 2005 में योजना में संशोधन किया गया और इसे गहन डेयरी विकास कार्यक्रम (आई.डी.डी.पी.) नाम दिया गया । यह योजना उन जिलों में क्रियान्वित की जा रही है जिन्हें ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम के दौरान डेयरी विकास कार्यकलाप के लिए50 लाख रुपये से कम धनराशि मिली थी ।

दूरगामी परिणाम

1996 में आपरेशन फ्लड का तीसरा चरण पूरा हुआ । इस समय देश के 170 प्रमुख दूध उत्पादक क्षेत्रों में 74,744 जिला सहकारी समितियों की स्थापना की गई । इसमें 93.14 लाख

सदस्य थे । इस चरण में जो लक्ष्य निर्धारित किए गए थे, वे समय पूर्व प्राप्त कर लिए गए । उदारीकरण के बाद निजी एजेंसियों द्वारा सहकारी गाँवों में दूध की खरीद के कारण दूध खरीद का लक्ष्य प्रभावित हुआ । सुनिश्चित बाजार कच्चे दूध का लाभकारी मूल्य, संतुलित पशुचारा और पशु चिकित्सा सुविधाएं दूध उत्पादन में सतत वृद्धि में सहायक होती है ।

दूध के चर्चित ब्रांड

अमूल-गुजरात, विजया-आन्ध्र प्रदेश, वर्का-पंजाब, सरस-राजस्थान, नंदिनी-कर्नाटक, मिल्मा-केरल गोकुल-महाराष्ट्र, स्नेह-मध्य प्रदेश, आँचल-उत्तरांचल, वीटा-हरियाणा ।

डेयरी परिदृश्य 2010

ऑपरेशन फ्लड भारतीय डेयरी उद्योग के स्थिर एवं जर्जर स्थिति से निकालने का सुनियोजित प्रयास था । इस कार्यक्रम ने भारत में डेयरी विकास की गति को न केवल तीव्र किया अपितु भारत को विश्व के प्रथम दूध उत्पादक राष्ट्र के रूप में भी प्रतिष्ठित किया । इस उपलब्धि के बावजूद डेयरी उद्योग के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं । इनमें प्रमुख हैं ऑपरेशन फ्लड के अंतर्गत सृजित ताने-बाने का प्रयोग करते हुए और अधिक सुदृढ बनाने के लिए नए रास्तों की खोज । इसी को ध्यान में रखकर परिदृश्य2010 तैयार किया गया है ।

परिदृश्य 2010 में चार क्षेत्रों पर बल दिया गया है । ये क्षेत्र हैं-सहकारी व्यवसाय का सुदृढ़ीकरण, उत्पादक वृद्धि, गुणवत्ता आश्वासन और राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क का विकास । राज्य दुग्ध विपणन महा संघों एवं दुग्ध उत्पादक सहकारी संघों के शिल्पियों तथा महत्त्वपूर्ण लाभार्थियों ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की है । योजना का निर्माण करते समय किसानों के लाभों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । एनडीडीबी ने योजना प्रक्रिया को गति दी है और परिदृश्य 2010 के क्रियान्वयन के लिए तकनीकी समर्थन व वित्तीय सहायता देगी ।

परिदृश्य 2010 के लक्ष्य

- सहकारी संस्थाओं द्वारा ऑपरेशन फ्लड क्षेत्रों में तरल दूध संकलन में विपणन योग्य अधिशेष की33 प्रतिशत (488 लाख किलोग्राम प्रतिदिन) वृद्धि । यह वृद्धि राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादित दूध का80 प्रतिशत है । इसका अर्थ है कि वर्ष 2010 तक तरल दूध संकल्प में चार गुनी वृद्धि ।
- सहकारी संस्थाओं द्वारा तरल दूध बिक्री को 365 लाख किलोग्राम प्रतिदिन तक बढाना। यह मेट्रो नगरों के बाजार अंश के 60 प्रतिशत के करीब होता है । इसका अर्थ है कि वर्ष 2010 तक तरल दूध विपणन में तीन गुना वृद्धि होगी ।

राष्ट्रीय मवेशी पालन और भैंस प्रजनन परियोजना

आनुवांशिक सुधार हेतु एक प्रमुख कार्यक्रम राष्ट्रीय मवेशी पालन और भैंस प्रजनन परियोजना अक्ट्रबर2000 में आरंभ किया गया । इसका क्रियान्वयन 10 वर्ष की अवधि में पांच-पांच वर्ष के दो चरणों में होगा । पहले चरण के लिए 402 करोड़ और दूसरे चरण के लिए 775.9 करोड रूपये आवंटित किए गए हैं । वर्तमान में 28 राज्य और एक केन्द्रशासित क्षेत्र इस परियोजना में भाग ले रहे हैं ।

चारा विकास (Fodder developement)

पशुओं की उत्पादकता आहार और चारे की पौष्टिकता पर निर्भर करती है । कृषि भूमि पर खाद्यान्न, दलहन, तिलहन उगाने पर अधिक बल देने के कारण चारा फसल उगाने पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है । कृषि अवशेषों के विविधोन्मुखी उपयोग के कारण पशुचारे की मांग व पूर्ति का अंतराल निरंतर बढ़ता जा रहा है । पशुपालन और डेयरी के लिए अध्ययन समूह के अनुसार देश में उपलब्ध पशुचारा केवल 46.7 प्रतिशत पशुओं की आवश्यकता पूर्ति कर सकता है । पौष्टिक पशुचारे के काम आने वाले मोटे अनाज दूध के भाव मिल रहे हैं । जलवायु-जनित परिस्थितियों के हिसाब से देश के जिन राज्यों में दुग्ध विकास की परियोजनाएं संचालित की जा सकती हैं, वहाँ चारागाह नहीं है । हिमाचल प्रदेश, जम्मु-कश्मीर, मेघालय, नागालैंड और अरूणाचल प्रदेश में पर्याप्त चारागाह तो हैं, लेकिन वहाँ दुधारू पशुओं के बजाय अन्य उत्पादों के लिए पशुपालन होता हैं । राजस्थान में 40 प्रतिशत और गुजरात में 30 प्रतिशत चारागाह हैं, जहाँ दुग्ध उद्योग अच्छी स्थिति में हैं । जलवायु परिवर्तन, सूखा व बाढ़ के बढ़ते प्रकोप के कारण पशुचारा पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है । इसीलिए पशुचारा बैंक बनाने पर विचार किया जा रहा है ताकि आवश्यकता पड़ने पर देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक पशुचारे की पूर्ति सुनिश्चित की जा सके । इसके लिए सरकार दो योजनाओं पर कार्य कर रही है-केंद्रीय पशुचारा विकास संगठन की स्थापना और राज्यों को पशु आहार व चारा विकास के लिए सहायता देना ।

14.8 दुग्ध उत्पादन कार्यक्रम (Dairying Production Programme):

भारत में दुग्ध उत्पादन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित कदम उठाये गये हैं:-

1. **प्रति पशु उत्पादन वृद्धि-**प्रति पशु उत्पादन वृद्धि के लिए उसका संकरण आवश्यक है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चार योजनाएं चलायी जा रही हैं-

(i) सघन पशु विकास योजना

(ii) विदेशी सांड़ों से संकरण का कार्यक्रम

(iii) भ्रूण स्थानान्तरण तकनीकी द्वारा शीघ्र उन्नत करना

(iv) ऑपरेशन फ्लड योजना की शुरुआत ।

2. देश के अधि उत्पादन वाले क्षेत्र से एकत्र करके कमी वाले क्षेत्र में भेजना ।

राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (National Dairy Development Board)-

इसकी स्थापना 1965 में की गयी थी । इसका प्रमुख कार्य दुग्ध उद्योग से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करना, इनके लिए परियोजना तैयार करना, दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में सहायता प्रदान करना, परियोजनाओं के लिए उचित मूल्यों पर उपकरण उपलब्ध कराना, शोध और विपणन जैसी समस्याओं का समाधान करना है । अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों से तकनीकी आदान-प्रदान का दायित्व भी इसी बोर्ड का है । राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की सहयोगी संस्था पशु प्रजनन शोध संस्थान द्वारा विकसित की गयी उत्तम नस्ल की गायों ने रिकार्ड मात्रा में दूध का उत्पादन किया है । इनमें सलोवी एस-692 नामक नस्ल ने 4 वर्ष (चार ब्यान) में कुल

35,062 किग्रा. दूध का रिकार्ड उत्पादन किया है, जबकि लक्ष्मी एस-597 ने 4 वर्ष में 32,188 किग्रा. और कृष्णा एस-व 14 ने दो वर्ष में 9,066 किग्रा. दूध का उत्पादन किया है।

भारतीय डेयरी निगम (Indian Dairy Farm)

यह निगम भारत सरकार द्वारा 1970 में स्थापित किया गया था । इसका मुख्य उद्देश्य ऑपरेशन फ्लड योजना को सफल बनाना था । इसका कार्य देश की दुग्ध उत्पादन क्षमता को बढ़ाना भी है जिसमें नस्ल सुधार, पौष्टिक आहार का प्रबन्ध आदि सम्मलित हैं ।

मिलिट्री डेयरी फार्म (Military Dairy Farm)

अंग्रेजों द्वारा प्रथम मिलिट्री डेयरी फार्म की स्थापना इलाहाबाद में 1889 में की गयी । देश में वर्तमान में28 मिलिट्री डेरी फार्म कार्यरत हैं ।

ऑपरेशन फ़्लड परियोजना (Operation Flood Scheme)-

देश में दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए चलाई गयी योजना है । यह योजना श्वेत क्रांति के नाम से भी जानी जाती है । यह योजना तीन चरणों-1970 से 1978,1978 से 1985 तथा 1985 से 1994 में चलाई गयी । इस योजना के फलस्वरूप भारत में दुग्ध उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई ।

ऑपरेशन फ़्लड-I- यह परियोजना 1970 में 10 राज्यों में शुरू किया गया और 1981 तक चला । इस परियोजना का महत्त्वपूर्ण कार्य बम्बई (मुम्बई), दिल्ली, मद्रास (चेन्नई) एवं कलकत्ता महानगरों के 4 मातृ दुग्धशालाओं की स्थापना एवं दुग्ध की व्यापक आपूर्ति करना था।

ऑपरेशन फ़्लड-II- यह 1978 में शुरू की गयी थी । इसका लक्ष्य 1988-89 तक प्रति व्यक्ति 185 ग्राम दुग्ध प्रतिदिन उपलब्ध कराना था । इसका विस्तार एक लाख जनसंख्या वाले 148 शहरों में किया जाना है । नेशनल मिल्क ग्रिड बनाने की योजना है जो गांवों के उत्पादकों की प्रमुख मांग केन्द्रों से जोड़ेगा । इस परियोजना पर कुल 485.5 करोड़ रु. का व्यय हुआ ।

ऑपरेशन फ़्लड-III- 1985 से शुरू की गयी यह योजना 1994 तक चली । यूरोपीय आर्थिक समुदाय एवं विश्व बैंक इस परियोजना के लिए धन उपलब्ध करा रहे हैं । इसका प्रमुख उद्देश्य प्रथम एवं द्वितीय चरण में प्राप्त लाभों का स्थिर करना है । सहकारी समितियों की संख्या बढ़ाना तथा अधिक दुग्ध उत्पादकों को सहकारी समितियों से जोड़ना है । देश के सभी दुग्ध उत्पादन क्षेत्रों को राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड से जोड़ना भी इसका उद्देश्य है, ताकि पूरे वर्ष दूध पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहें। इस योजना पर कुल915.00 करोड़ रु. व्यय करने का प्रावधान था । प्रथम एवं द्वितीय चरण में दुग्ध वृद्धि निम्न प्रकार है-

वर्ष	दुग्ध उत्पादन (लाख टन में)	वृद्धि प्रतिशत में
1950-1951	170	--
1960-1961	200	17.65
1970-1971	212	06.00
1980-1981	316	32.91
1990-1991	539	70.56

1991-1992	557	03.33
1992-1993	580	04.12
1993-1994	638	04.48
1994-1995	606	05.28
1995-1996	662	03.60
1996-1997	691	04.38
1997-1998	721	04.34
1998-1999	754	04.57
1999-2000	783	03.84
2000-2001	808	03.19
2001-2002	844	04.45
2002-2003	867	02.75
2003-2004	881	01.61
2004-2005	910	03.30

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली।

इस प्रकार सरकार के विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप ऑपरेशन फ्लड के सफल कार्यान्वयन के फलस्वरूप आशातीत सफलता मिली है तथा दुग्ध उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रति दिन 1951 के 132.8 ग्राम से बढ़कर 1990-91 में 178 ग्राम और 2004-05 में अनुमानत: 232 ग्राम प्रति दिन हो गया है, जो न्यूनतम आवश्यकता 210 ग्राम से थोड़ा अधिक है ।

भारत में विभिन्न डेयरी योजनाओं को कार्यान्वित करने में अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । उदाहरण के लिए यूनीसेफ, यू.एस.एड कोलम्बो प्लान, एफ.ए.ओ. आदि के तहत भारत को दुग्ध उत्पादन में काफी सहायता मिली है । भारत को सं.रा. अमेरिका से आर्थिक एवं तकनीकी सहायता मुख्य रूप से रॉकफेलर, पोर्ड एवं हीफर योजनाओं के तहत मिली है ।

डेयरी विकास हेतु नई योजनाएँ-

डेयरी विकास ने दूध का उत्पादन बढ़ाने, जनता के पौष्टिक आहार में सुधार लाने, रोजगार के अवसर पैदा करने, ग्रामीण क्षेत्रों में आय बढ़ाने, विशेष रूप से और बहुत छोटे किसानों की आमदनी बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाई है । 1994 तक कार्यान्वित ऑपरेशन फ्लड योजना ने डेयरी क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास किया है । फलस्वरूप भारत का डेयरी उद्योग का स्थान विश्व में पहला हो गया है । ऑपरेशन फ्लड योजना से मिली इस अभूतपूर्व सफलता को देखते हुए भारत सरकार ने 2000-2001 के दौरान डेयरी क्षेत्र में नई योजनायें कार्यान्वित की हैं । ये योजनाएँ हैं-

1. **गैर-ऑपरेशन फ्लड-**

   आठवीं योजना के दौरान डेयरी क्षेत्र में विकास हेतु संचालित योजना नौवीं योजना काल में भी जारी रखा गया । शत-प्रतिशत अनुदान पर आधारित इस योजना को 2000-

2001 से केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम गैर ऑपरेशन फ्लड में बदल दिया गया है । अब तक 22 राज्यों और एक केन्द्रशासित क्षेत्र के लिए 227.49 करोड़ रुपये के खर्च के साथ गैर-ऑपरेशन फ्लड के तहत 44 परियोजनायें स्वीकृत की गई ।

2. सहकारी स्थिति सहायता राशि-

इस योजना का उद्देश्य जिला स्तर पर रूग्ण डेयरी सहकारी यूनियनों और राज्य स्तरपर सहकारी संघों को फिर से जीवन प्रदान करना है । इस योजना को जनवरी, 2000 में नौवीं योजना में 150 करोड़ रुपये के साथ स्वीकृत किया गया था । अब तक मध्य प्रदेश में 4, कर्नाटक में 2 तथा उत्तर प्रदेश और केरल में 1-1 दुग्ध यूनियन के पुनर्वास प्रस्तावों को कुल 69-83 को परिव्यय के साथ स्वीकृत किया गया है । इसके अन्तर्गत 31 मार्च, 2001 को 20.80 करोड़ रुपये की राशि जारी की गई ।

3. दूध और दूध उत्पाद आदेश, 1992-

डेयरी क्षेत्र के विकास के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा दूध और दूध उत्पाद आदेश को 9, जून 1992 को अधिसूचित किया गया । इस आदेश की व्यवस्था के अन्तर्गत, कोई भी व्यक्ति अथवा डेयरी संयंत्र जो प्रतिदिन 10000 लीटर से अधिक या प्रतिवर्ष 500 टन से अधिक ठोस दूध का कारोबार करता है, उसे केन्द्र सरकार द्वारा 27 अगस्त, 1993 को नियुक्त पंजीकरण अधिकारी के सामने अपना नाम पंजीकृत कराना होगा । इस आदेश को राज्य सरकारों ने संशोधित करके पंजीकरण के लिए 75,000 लीटर दूध प्रतिदिन या 3750 टन ठोस दूध प्रतिवर्ष की मात्रा निर्धारित कर दिया गया है । इस प्रकार वर्तमान में केन्द्रीय पंजीकरण अधिकारी 75000 लीटर दूध प्रतिदिन या 3750 टन ठोस दूध का कारोबार करने वालों का पंजीकरण करते है ।

खीस (Colostrum)

खीस एक प्रकार का क्षरण (Secretion) है जो बच्चा पैदा होने के तुरन्त बाद प्राप्त होता है । यह क्षरण नवजाज शिशु के लिए अति आवश्यक होता है क्योंकि यह शिशु की बहुत सी बीमारियों से रक्षा करता है । इसका संगठन सामान्य दूध से अलग तरह का होता है । जो कुछ में अंदर सामान्य दूध में परिवर्तित हो जाता है । खीस का दूध की तुलना में अधिक पीला होने के कारण उसमें कैरोटीन की अधिकता तथा गुलाबी रंग का कारण उसमें रक्त का मिला होना है । खीस में प्रोटीन की मात्रा 17.5%, केसीन की मात्रा 5.08% एल्युमिन ग्लोयूलिन की मात्रा 11.34% दूध की मात्रा 2.19% राख की मात्रा 1% तथा जल की मात्रा 74.19% होती है । खीस रेचक (Laxative) तथा रोग प्रतिकारक (Disease Immune) के रूप में महत्त्वपूर्ण है । इसके अतिरिक्त खीस में विटामिन ए, विटामिन बी, ट्रिप्टोफेन तथा लोहा एवं ग्लोवब्यलीन (प्रोलीन) की मात्रा अधिक होती है । जो बच्चों को संक्रामक रोगों से बचाता है ।

दूध (Milk)

दूध एक विजातीय पदार्थ (Heterogeneous Product) है जिसमें वरना, प्रोटीन, दुग्धम (Lactose), खनिज पदार्थ तथा अन्य अवयव या तो घोल (Solution) या निलम्बन (Suspension) या पायस (Colloisd)ए के रूप में सदैव द्रव अवस्था में पाये जाते हैं । दूध

मे न्यूनतम वसा 35 प्रतिशत और वसा रहित ठोस 8.5 प्रतिशत होनी चाहिए । दूध का pH मान 6.6 तथा क्वथनांक 100 से 115 से.ग्रे. होता है । गाय के दूध में कार्बोहाइड्रेट लेक्टेज कीम की मात्रा 4% तथा भैंस की दूध में 4.9% होती है । गाय के दूध में वसा की मात्रा 4.5%' तथा भैंस की दूध में 7.% होती है । गाय के दूध में कुल ठोस पदार्थो की मात्रा 12.75% तथा भैंस में 46.5% होती है ।

दूध के विभिन्न विश्लेषणों से पता चलता है कि इसमें वरना, प्रोटीन, खनिज, लवण, दुग्धम आदि मुख्य अवयवों है । इन अवयवों की मात्रा विभिन्न पशुओं तथा एक ही पशु में विभिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न होता है । विभिन्न पशुओं के दूध का संघटन निम्नवत है-

- घी अथवा दूध का पीला रंग कैरोटीना के कारण होता है ।
- शुद्ध देशी घी में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध डाइएसीटिल के कारण होती है ।
- दूध में केसीन, एलब्यूमिन तथा ग्लोबिन तीन प्रमुख प्रकार के प्रोटीन पाये जाते हैं । इसमें केसीन की मात्रा सबसे अधिक होती है ।
- केसीन प्रोटीन से 'लेनीटाल' या लेक्टोफिल तथा एरालोक नाम के धागे बनाये जाते हैं ।
- दुग्धम दूध में पाया जाने वाला मुख्य कार्बोहाइड्रेट है ।

दूध के संघटन में परिर्वतन गाय या भैंस के ब्याने के बाद समय के साथ शुरू हो जाता है । दूध से प्राप्त होने वाले विभिन्न अव्यय इनका उपभोक्ता के शरीर में कार्य एवं अन्य स्रोत निम्न सारणी में दर्शाया गया है-

दुग्ध संघटन पर व्यांत की अवस्था का प्रभाव

व्यांत की अवस्था (माह मे)	वसा रहित ठोस पदार्थ (प्रतिशत)	वसा (प्रतिशत)
1	8.74	4.0
3	8.50	3.75
5	8.53	3.82
7	9.81	3.83
9	8.78	3.85
11	9.24	4.2
12	9.50	4.54

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली।

विशिष्ट दूध (Special Milk)

1. टोन्ड दूध (Toned Milk)

भैंस के दूध में पानी मिलाकर वसा रहित ठोस पदार्थो की मात्रा कम कर दी जाती है तथा इसमें सप्रेटा दूध (Skimed Milk) मिलाकर वसा रहित ठोस पदार्थ को शुद्ध के बराबर कर दिया जाता है । इस प्रकार बने दूध को टोंड मिल्क कहते हैं ।

2. डबल टोन्ड दूध (Double Toned Milk)

यह भी एक प्रकार टोन्ड मिल्क ही है लेकिन इसमें वसा की मात्रा 1.5% तथा वसा रहित पदार्थ की मात्रा 10% होती है । इसमें सप्रेटा दूध की जगह सप्रेटा दूध (Skimed Milk Power) का प्रयोग किया जाता है ।

3. फ्लेवर्ड दूध (Flavoured Milk)

इसमें पाश्चुरीकृत दूध में थोड़ा मीटा एवं सुगन्ध पलेवड दूध का निर्माण किया जाता है । तत्पश्चात इसे बोतलों में भरकर बाजार में बेचा जाता है । इसका पोषक मान पाश्चुरीकृत (Pasturized)ए दूध से ज्यादा होता है । क्योंकि इसमें चीनी एवं सुगन्ध दोनों अलग से मिलाया जाता है ।

विभिन्न पशुओं का दुग्ध संघटन

अवयव	गाय	भैंस	बकरी	भेड़
वसा	4.92	7.16	4.04	8.63
प्रोटीन	3.21	3.77	3.76	4.00
दुग्धम	4.58	4.81	4.64	4.82
राख	0.75	0.76	0.85	0.67
वसा रहित ठोस	--	--	--	--
पदार्थ	8.54	9.34	9.51	11.39
कुल पानी	13.48	16.50	14.29	19.29
पानी	86.36	82.25	86.96	81.85

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली

4. प्रबली या विटामिन युक्त दूध (Enriched or Fortfied Vitaminised Milk)

दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थो में विटामिन-डी की मात्रा पाकर इसकी पोषण महत्ता अधिक की जाती है। कुछ देशों में शुद्ध दूध की जगह सप्रेटा दूध ही बच्चों को पीने को मिलता है । ऐसी दशा में बच्चों के शरीर में विटामिन ए की भारी कमी हो जाती है । सप्रेटा दूध में विटामिन ए एवं डी मिलाकर इसकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है । इस प्रकार विटामिनयुक्त दूध को प्रबलीकृत दूध कहते हैं ।

5. सोयाबीन दूध

सोयाबीन से बने दूध को सोयाबीन दूध कहते हैं । सोयाबीन प्रोटीन का अच्छा एवं -सस्ता स्रोत है । फलत: सोयाबीन के दूध में भी प्रोटीन की मात्रा काफी होती है । यह दूध पौष्टिकता से परिपूर्ण होता है ।

6. संघनित दूध (Condensed Milk)

संघनित दूध अथवा वाष्पित वह दूध है जिससे जल का कुछ भाग वाष्पीकरण के द्वारा अलग कर दिया जाता है । जब इसमें चीनी मिला दी जाती है तब इसे संघनित दूध कहते हैं । यदि चीनी न मिलाई जाये तो उसे वाष्पित दूध या सादा संघनित दूध कहते हैं ।

14.9 दूध की प्रक्रिया (Processing of Milk) :

1. पास्तुरीकरण (Pasteurization)

यह वह प्रक्रिया है जिसमें दूध को निश्चित तापक्रम पर एक निश्चित समय तक रखकर इसमें उपस्थित प्राय: सभी जीवाणुओं को नष्ट कर दिया जाता है । इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि दूध की पोषण महत्ता तथा क्रीम लेयर पर कोई प्रभाव न पड़े । इस प्रक्रिया मे सामान्य तौर पर दूध को 60^0C पर 20 मिनट तक रखा जाये तो उसके सभी व्यधिजन जीवाणु नष्ट हो जाते हैं । यह विधि इसके खोजकर्त्ता लुई पाश्चर के नाम से जानी जाती है ।

2. निर्जीवीकरण (Sterilization)

निर्जीवीकरण का तात्पर्य दूध को गर्म करके जीवाणु रहित करना है । इसके लिए दूध को 30 मिनट तक93.3-94.4^0C तापक्रम पर रखते हैं । यद्यपि इससे दूध पूर्णतया निर्जीवीकृत तो नहीं हो पाता फिर भी जीवाणुओं की मात्रा कम हो जाती है । इससे दूध को लम्बे समय तक संग्रहित रखा जा सकता है ।

3. समांगीकरण (Homogenization)

इस विधि में दूध की वसा गोलिकाओं को छोटे-छोटे कणों में खण्डित कर दिया जाता है ताकि दूध को संग्रह करते समय उसके ऊपर क्रीम लेयर के रूप में एकत्रित न हों सके और सारे दूध में समान रूप से बिखरे रह सके । इसके लिए पहले दूध को 37.7^0C से 48^0C ताप पर गर्म करने के बाद इसका तापक्रम 60^0C से 65^0C कर दिया जाता है और इस ताप पर इसको समांगीकरण यंत्र द्वारा 2000 से2500 पोण्ड प्रति वर्ग इंच का दबाव डालते हैं । इस दूध को पुन: 1 / 10000 इंच के छिद्र से बाहर निकालते हैं फलत: वरना गोलिकाएं छोटे-छोटे कणों में विभक्त हो जाती है ।

14.10 दुग्ध उत्पाद (Milk Products) :

1. क्रीम (Cream)

यह एक प्रकार का दूध होता है । जिसमें वसा की मात्रा बढ़ जाती है तथा पानी की मात्रा कम हो जाती है । क्रीम में वसा का कोई निर्धारित स्तर नहीं होता है फिर भी बाजार में बेचे जाने वाली क्रीम में वसा की मात्रा 45% से अधिक होती है । क्रीम का रंग अधिक पीला होता है । इसका कारण क्रीम में वसा की अधिकता होना है । वसा में विटामिन ए, जो कैरोटिन से प्राप्त होता है पूर्णत: घुलनशील होता है इसलिए कैरोटिन एवं जैन्थोफिल के कारण क्रीम का रँग पीला होता है ।क्रीम को सामान्य तौर पर गुरुत्वाकर्षण विधि अथवा अपकेन्द्री विधि से दूध से निकाला जाता है ।

2. मक्खन (Butter)

मक्खन भी एक प्रकार का दुग्ध उत्पाद है जो गाय-भैंस तथा अन्य स्तनधारी पशुओं के दूध या क्रीम को मथने से प्राप्त होता है । इसमें वसा 80% से कम और 20% से

अधिक अन्य पदार्थ जैसे पानी, नमक तथा अन्नानाटोरंजक नहीं होनी चाहिए । साथ ही पानी की मात्रा 16% से अधिक नहीं होनी चाहिए ।

विभिन्न दुग्धोत्पादों का रासायनिक संगठन

उत्पाद	प्रोटीन	वसा	कार्बोहाइड्रेट	नमी	राख
मक्खन	-	81.0	-	16.0	2.5
दही	3.1	4.0	3.0	89.1	0.8
घी	-	99.5	-	0.5	-
छैना	18.3	20.8	1.2	57.5	2.6
खोया	14.6	31.2	20.5	30.6	3.1
पनीर	24.1	25.1	6.3	40.3	4.2
सम्पूर्ण दुग्ध चूर्ण	25.8	26.7	38.0	3.5	6.0
स्किम्ड दुग्ध चूर्ण	38.0	0.1	51.0	4.1	6.8

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली ।

दूध के विभिन्न अवयव,उनके स्रोत एवं कार्य

अवयव	कार्य	स्रोत
प्रोटीन	शरीर में मांसपेशियों के निर्माण एवं प्रति पूर्ति के लिए आवश्यक होता हैं शरीर को ऊर्जा प्रदान करता हैं	मांस, मछली, दूध, दाल,चीज आदि
शर्करा	शरीर को ऊर्जा और गर्मी प्रदान करती हैं तथा शरीर को चिकनाई प्रदान करती हैं	घी ,मक्खन ,तेल,आदि ।
खनिज	हड्डियों केनिर्माण में	डेरी पदार्थ, फल, सब्जी, आदि
विटामिन 'ए'	आंख को स्वस्थ रखती हैं	मक्खन, क्रीम अन्य वसायुक्त डेयरी पदार्थ, गाजर, टमाटर, अण्डा, मछली का तेल आदि।
विटामिन 'बी' (थियोचिन)	भूख बेरी-बेरी को रोकने तथा भूख एवं शारीरिक विकास में वृद्धि	दोनों, अण्डा, हरी सब्जी, यीस्ट आदि
विटामिन 'बी'2 (ऐइबोफ्लोविन)	त्वचा और मुख को स्वस्थ रखने और आंख को स्वच्छ रखना	दूध, गोभी, गाजर, अण्डा,यीस्ट आदि
विटामिन 'सी'	हड्डी एवं आंत के स्वस्थ विकास	मुख्यत: खट्टे फल
विटामिन 'डी'	कैल्सियम के अवशोषण में	सूखा रोग को रोकने में अण्डा, दूध तथा मछली के जिगर का तेल

3. दही (Curd)

दही भी एक प्रकार का दुग्ध उत्पाद है जो दूध के सामान्य किण्वन (Eermentation) से प्राप्त होता है । सामान्य किण्वन में दूध को उबालकर 21^0C ताप तक ठण्डा करके उसमें उचित

मात्रा में जामन (Starter) मिलाकर प्राप्त किया जाता है । जामन का तात्पर्य दूध मे दही जमाने के लिए जामन मिलाने से है । जामन एक प्रकार की दूध से बनी हुई वस्तु है जिसमें केवल वही जीवाणु होते हैं जिनको हम दही में पैदा करना चाहते है । दही में वही जीवाणु होने चाहिए जो दूध में दुग्धाम्ल उत्पन्न करते हैं । ये जीवाणु प्राय: स्ट्रेप्टोकोकस अथवा अम्लरागी होते हैं ।

दही में प्राय: वह सभी तत्व मिलते हैं जो कि साधारण दूध में होते हैं । केवल अंतर यह होता है कि दही में पानी एवं दुग्धम की मात्रा साधारण दूध की अपेक्षा कम होती है और साथ-साथ में दुग्धामल की मात्रा काफी बढ़ जाती है ।

4. छेना (Chhana)

छैना एक प्रकार का दुग्ध उत्पाद है जो उबलते दूध को अम्ल द्वारा फाड़कर तैयार किया जाता है । दूध को फाड़ने के लिए दुग्धाम्ल या साइट्रिक अम्ल अथवा साइट्रिक फलों का रस प्रयोग में लाया जाता है । छैना तैयार होने के बाद इसे जल से अलग कर लिया जाता है ।

5. पनीर (Cheese)

पनीर भी छैना की ही तरह दुग्ध उत्पादन है तथा इसे बनाने की विधि भी लगभग छैना की तरह है । इसे भी अस्त द्वारा फाड़कर बनाया जाता है परन्तु पनीर जल से अलग करने के बाद लकड़ी के सांचे में भरकर 2 किग्रा. प्रति वर्ग सेमी. का दबाव डालकर शेष जल को पनीर से अलग किया जाता है । फिर इसे आवश्यकता अनुसार टुकड़ों में काटकर 2-3 घन्टे तक ठण्डे जल में डुबो कर रखा जाता है ।

6. घी (Ghee)

घी भी एक प्रकार का दुग्ध उत्पाद ही है । यह मक्खन तथा क्रीम को एक निश्चित ताप पर गर्म करके प्राप्त किया जाता है । इसमें दुग्ध वसा की मात्रा 99% से अधिक होती है । शेष जल और छाछ का होता है । शुद्ध घी में डाइएसीटिल की उपस्थिति के कारण एक विशेष प्रकार की सुवास होती है । उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा पंजाब घी उत्पादन के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं ।

7. खोवा (Khoa)

दूध को गर्म करके उसके पानी को आशिक रूप से सुखाकर तैयार किया गया उत्पाद खोवा कहलाता है । यह विशुद्ध रूप से भारतीय दुग्ध उत्पाद है । यह मूल रूप से मिठाई आदि बनाने के काम आता है । इस प्रकार खोवा या मावा एक आशिक शोषित दुग्ध पदार्थ है जो दूध को एक खुले बर्तन में गर्म करके तैयार किया जाता है ।

खोवा का संघटन

खोवा	नमी	वसा	प्रोटीन	दुग्धम	राख	लोह
गाय	25.5	26.0	19.0	26.0	35	139
भैंस	19.5	37.0	17.7	22.0	3.8	128

8. आइसक्रीम (Ice Cream)

यह एक प्रकार का कशवत एवं हिमीकृत खाद्य उत्पाद है जिसको दुग्ध उत्पाद के मिश्रण से बनाया जाता है । इसमें दुग्ध, वसा, रहित ठोस पदार्थ एवं चीनी की एक इच्छित प्रतिशत मात्रा होती है । इसके अतिरिक्त इसमें रंजक पदार्थ भी मिलाया जाता है ।

9. दुग्ध चूर्ण (Milk Powder)

दूध को पूर्ण वाष्पित करके बनाया गया वह दुग्ध पदार्थ जिसमें नमी अंश अधिकतम 3% हो, दुग्ध चूर्ण कहलाता है । जब यह सम्पूर्ण दूध' और सप्रेटा दूध' से बनाया जाता है तो इसे क्रमश: संपूर्ण दुग्ध चूर्ण (Whole Milk Powder) और स्किम्ड दुग्ध चूर्ण (Skimmed Milk Powder) कहते हैं ।

14.11 दुग्ध उद्योग(Milk Industry)

दूध फॉर्मिंग या दुग्ध उद्योग के लिए पाला जाने वाला मुख्य पशु गाय है । विश्व में अधिकांश गायें पश्चिमी यूरोप में विशेष रूप से ब्रिटेन, नीदरलैण्ड और स्वीटजरलैण्ड में पाई जाती है । आयर शायर गाय की किस्म सफेद, लाल या मिश्रित रंगों में पाई जाती है । गर्नसी और अलडर्नो गायों में गर्नसी छोटे द्वीप और अलडर्नो इंग्लिश चैनल में स्थित द्वीप समूहों में व उत्तरी-पूर्वी फ्रांस के नदी तट पर पाई जाती है । जर्सी दुग्ध उत्पादन प्रजाति की सबसे छोटी गाय होती है । इसके दूध में अत्यधिक उच्च स्तर पर मक्खन पाया जाता है । ' फ्रांसियन प्रजाति की गाय दुग्ध उत्पादन की सबसे बड़ी गाय है । दुग्धोत्पादक पशुओं में यह सर्वाधिक दुग्ध देने वाली नस्ल है । इसे हॉल्सटीन भी कहा जाता है । गाय की एक अन्य प्रजाति स्विस ब्राउन है । इसके दूध का उपयोग स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध चॉकलेटों में किया जाता है । पश्चिमी यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिणी महादेश के शीतोष्ण भाग अत्यधिक दुग्ध उत्पादक क्षेत्र है । इसके अतिरिक्त वाल्टिक राज्य बेलारूस, रूस और कजाकिस्तान अन्य प्रमुख दुग्ध उत्पादन क्षेत्र है । सरा अमेरिका दूध, मक्खन और पनीर उत्पादन का प्रमुख उत्पादक देश है । वर्तमान में भारत सबसे बड़ा उत्पादक देश बन गया है । नीदरलैण्ड कंडेस्ड़ और पाउडर दूध का सबसे बड़ा निर्यातक देश है । न्यूज़ीलैण्ड मक्खन का सबसे बड़ा उत्पादक देश है ।

14.12 श्वेत क्रान्ति-समस्यायें एवं समाधान (Problem of White Revolution & Solution)

श्वेत क्रान्ति के माध्यम से देश ने दुग्ध उत्पादन में उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है लेकिन श्वेत क्रान्ति की कई सीमाएं भी सामने आई है । इनमें प्रमुख कमियां निम्न है-

- ऐसे अनेक गांव है जिनमें दूध उत्पादन की क्षमता है लेकिन उन्हें ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है । कई दुग्ध संघ घाटे में चल रहे हैं । इसके अनेक कारण हैं जैसे दुग्ध संग्रहण का एकल स्थान जिससे यात्रा व प्रतीक्षा समय बढ़ जाता है, गांव की राजनीति, बेईमानी, नकदी फसलों पर बल देने के कारण पशुचारे की कमी, कई राज्यों का किसान नियंत्रण संबंध आनन्द पद्धति को अस्वीकार करना, प्रसंस्करण क्षमता का काम उपयोग आदि ।

- दूध उत्पादकों को दूध लाभकारी कीमत नहीं मिल पाती है । सहकारी कंपनियां जिस दूध को शहरों में25 से 26 रुपये प्रति लीटर बेचती है वही दूध वे किसानों से मात्र 13 से व 4 रुपये लीटर की दर से खरीदती है ।
- पशुचारे की कमी, बेहतर देखभाल, संकर किस्मों की कमी जैसे कारणों से भारत में दुधारू पशुओं की औसत क्षमता 1200 लीटर वार्षिक है जबकि विश्व औसत 2200 लीटर है ।
- देश में पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं की भारी कमी है । फलत: बड़ी संख्या में पशु संक्रामक रोगों के कारण मरते हैं ।
- दुग्ध उत्पादन में व्यापक क्षेत्रीय विषमताएं विद्यमान है । पश्चिमी बंगाल, जम्मु-कश्मीर, उत्तर-पूर्वी भारत श्वेत क्रान्ति से लगभग अछूते है ।

देशभर में किसानों व पशुपालकों द्वारा उत्पादित कुल दूध के मात्र 15 प्रतिशत का ही प्रसंस्करण संगठित क्षेत्र की कंपनियों द्वारा किया जा रहा है ।

यद्यपि देश में दूध का उत्पादन बढ़ा है लेकिन जनसंख्या के हिसाब से पशु में कमी आई है । 1951 मे जहां 40 करोड़ जनसंख्या पर 15.53 करोड़ पशु थे, वहीं 1992 में 93 करोड़ जनसंख्या पर 20.45 करोड़ । 2005 में 110 करोड़ जनसंख्या पर मात्र 16 करोड़ पशु रह गए।

14.13 सारांश (Summery)

समग्रत: श्वेत क्रान्ति के माध्यम से देश दूध उत्पादन के शिखर पर पहुंच गया, लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है । देश भर में सहकारिता का सर्वांगीण विकास नहीं हुआ है विशेषकर पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भारत में । कई सहकारी संघ घाटे में हैं । इस कमी को तभी दूर किया जा सकता है जब सरकार सहकारी संघों को फलने-फूलने का अवसर प्रदान करे । सरकार को सहकारी संघों में राजनीतिक हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए । सहकारी संघों के नियमित रूप से चुनाव हों, उनमें लेख बही का हिसाब-किताब रखा जाए और सहकारी संघों का प्रबंध पेशेवरों को सौंपा जाए । दूध उत्पादक किसानों के लिए यह संभव नहीं है कि वे शहर की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए वितरण का भी प्रबंधन कर सकें । इसलिए माँग और पूर्ति के बीच की कड़ी के लिए सहकारी दुग्ध संघों की भूमिका निर्विसाद है । श्वेत क्रांति की रोशनी देश के गाँव-गाँव व जन-जन तक तभी पहुंचेगी जब उत्पादक एवं उपभोक्ता के बीच सहकारी दूध समितियाँ अपना व्यापक जाल फैलाएंगी । इसका सफल उदाहरण है आनंद पद्धति ।

यद्यपि दूध की माँग में निरंतर वृद्धि हो रही है लेकिन देश में पशुओं की संख्या न्यूनाधिक रूप से स्थिर है । यदि दूध का उत्पादन बढ़ाना है तो दुधारू पशुओं की गुणवत्ता सुधारनी होगी । दुधारु पशुओं की देशी नस्लों को अधिक दूध देने वाली विदेशी नस्लों के साथ संकरित किया जाए । इसके साथ ही पशुपालन क्षेत्र में अनुसंधान व विकास को बढ़ावा दिया जाए । इसी से भारत में श्वेत क्रांति सदाबहार क्रांति बनी रहेगी अन्यथा वह भी हरित क्रांति की भाँति असमय दम तोड़ देगी ।

14.14 शब्दावली (Terminology):

- ऑपरेशन फ़्लड
- कृषि की सहायक क्रियाएं
- डेयरी फार्म
- भंडारण
- अवशीतन
- उपभोग
- उत्पादन
- असंतुलन
- परियोजनाएं
- निगम
- अनुसंधान
- गर्भाधान केंद्र
- जीडीपी
- पलायन
- सहकारी संघ
- आई.सी.डी.पी
- गुणवत्ता
- चारागाह
- आई.सी.डी.पी
- एन.डी.डी.बी.
- खीस
- प्रोटीन
- हॉल्सटीन
- नस्ल सुधार

14.15 स्व- परख प्रश्न

1. ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम के सूत्रधार कौन है?
2. राजस्थान में ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम किस वर्ष से प्रारम्भ किया गया?
3. श्वेत क्रांति का दूसरा चरण किस वर्ष से प्रारम्भ हुआ?
4. श्वेत क्रांति के चार उद्देश्य लिखो ।
5. दुग्ध उत्पादन में भारत का विश्व में कौन सा स्थान है?
6. केन्द्रीय भैंस अनुसंधान केन्द्र कहीं स्थित है?
7. भारत में दूध की उपलब्धता की दृष्टि से प्रथम स्थान किस राज्य को प्राप्त है?
8. चारा बैंक क्या है?
9. पशुधन बीमा योजना क्या है?

10. दूध के चर्चित ब्रांडों के नाम लिखो ।
11. भारतीय डेयरी निगम की स्थापना किस वर्ष की गई?
12. फ़्लेवर्ड दुग्ध क्या है?
13. दुग्ध उद्योग से आप क्या समझते है?
14. मक्खन का सबसे बड़ा उत्पादक देश कौन सा है?

व्यावहारिक प्रश्न

1. ऑपरेशन फ्लड पर एक विस्तृत लेख लिखिए ।
2. श्वेत क्रांति से आप क्या समझते है? इसकी विशेषताएँ बताते हुए श्वेत क्रांति से पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना कीजिए ।
3. डेयरी परिदृश्य 2010 पर टिप्पणी लिखिए ।
4. श्वेत क्रांति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ।

14.16 संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

1. यूनिक सामान्य अध्ययन, यूनिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006
2. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, 2008
3. भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तायें आगरा, 2008
4. वार्षिक प्रतिवेदन, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि भवन, नई दिल्ली, 2007-08
5. भारत, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, 2007
6. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्र-पुरी, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2007
7. भारतीय कृषि का अर्थतंत्र, लक्ष्मीनारायण नाथूरामका, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2007
8. नियमित मंडी, कृषि विपणन बोर्ड, जयपुर 2004
9. योजना, योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, 2006
10. आर्थिक समीक्षा, राजू सिंह, सुमन एस. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007-08

इकाई- 15:ग्रामीण अवधारणा (Rural Concept।)

इकाई की रूपरेखा :

15.1 उद्देश्य
15.2 परिचय
15.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा
15.4 ग्रामीण विकास की अवधारणा का सूत्रपात एवं विकास
15.5 ग्रामीण आधार-संरचना का विकास
15.6 भारत में ग्रामीण आधार-संरचना
15.7 गैर-वाणिज्यिक प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत
15.8 वाणिज्य प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत
15.9 भारत में सिंचाई के साधन
15.10 सारांश
15.11 शब्दावली
15.12 स्व-परख प्रश्न
15.13 उपयोगी पुस्तकें

15.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- ग्रामीण विकास की अवधारणा का अर्थ एवं परिभाषा
- ग्रामीण विकास की अवधारणा का सूत्रपात एवं विकास
- ग्रामीण आधारभूत संरचना के विभिन्न घटक

15.2 परिचय

भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार ग्रामीण अर्थव्यवस्था है । यदि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था लड़खड़ा जाती है या विकास नहीं कर पाती तो इसका सारे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । उदाहरणार्थ, भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है तथा कृषि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्राण हैं । वर्तमान में **भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 18.5 प्रतिशत भाग कृषि तथा उसकी सहायक क्रियाओं से प्राप्त होता है** । गैर कृषि क्षेत्र के लिए आवश्यक अधिकांश माल तथा उद्योगों के बड़े भाग को कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है । देश के निर्यातों में भी कृषि क्षेत्र का बहुत बड़ा योगदान है । उदाहरण के लिए वर्ष 1998-99 में देश के निर्यातों में कृषि एवं सम्बद्ध निर्यातों का योग 18.1 प्रतिशत था जो वर्ष 1999-2000 एवं 2000-2001 में घटकर 15.2 प्रतिशत एवं 13.5 प्रतिशत क्रमश: रह गया । वर्ष 2005-06 में देश के निर्यातों में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र का योगदान 10.2 प्रतिशत था । कृषि उत्पादन का परिवहन, विपणन, उससे माल तैयार करने तथा इसके अन्य पहलुओं और उपयोग का देश की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है । जब कभी प्राकृतिक प्रकोप अथवा अन्य

कारणों से देश की कृषि को आघात पहुंचता है तो उससे न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था ही चरमरा जाती है बल्कि देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था डांवांडोल हो जाती है ।

15.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा

ग्रामीण विकास से तात्पर्य गांवों के समग्र विकास से है । ग्रामीण विकास का विस्तृत अर्थ जानने के लिए '**गाँव**' तथा '**विकास**' का अर्थ ज्ञात होना आवश्यक है । एक सामुदायिक इकाई जहां एक निश्चित संख्या में लोग निवास करते हों, गांव कहलाता है । 1981 की जनगणना में **शहरी क्षेत्र** को इस प्रकार परिभाषित किया गया था-

(अ) समस्त स्थान जहां पर नगर निगम, अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति, कैन्टोनमेंट बोर्ड आदि है ।

(आ) अन्य समस्त स्थान जो निम्नलिखित मापदण्डों की पूर्ति करते हैं -

(i) न्यूनतम 5000 की जनसंख्या,

(ii) कम से कम 75 प्रतिशत पुरूष जनसंख्या ऐसी हो जो गैर कृषि कार्यो में लगी हो, और,

(iii) कम से कम 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. का जनसंख्या घनत्व ।

यद्यपि भारत के जनगणना विभाग ने गांव को परिभाषित नहीं किया है । लेकिन उपर्युक्त वर्णित शहरी क्षेत्र की परिभाषा के आधार पर गांव को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- '' पांच हजार से कम जनंसख्या जहां लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि हो तथा जनंसख्या घनतत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से कम हो उसे ग्रामीण क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है । यदि जनसंख्या 5 हजार से अधिक हो तथा उस क्षेत्र के अधिकांश लोगों का व्यवसाय खेती हो तो उसे भी गांव कहेंगे । ''

विकास - विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र विशेष में मात्रात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तनों के द्वारा लोगों के जीवन स्तर की वर्तमान परिस्थितियों में सुधार किया जाता है तथा भविष्य में और अधिक सुधार का प्रयास किया गया है । विकास ने मानव जीवन के' सभी पहलुओं-आर्थिक, सामाजिक. राजनीतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण, तकनीकी इत्यादि पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है । अत: विकास का सम्बन्ध मानव जीवन के सर्वांगीण विकास से हे ।

'गांव तथा 'विकास' के अर्थ के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ग्रामीण विकास का सम्बन्ध गांवों के सर्वांगीण विकास से है ।

ग्रामीण विकास की परिभाषाएँ - ग्रामीण विकास की प्रमुख ।'परिभाषाएं निम्नांकित है ।

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक - के अनुसार, ' ग्रामीण विकास लोगों के एक विशिष्ट समूह (ग्रामीण निर्धनों) के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में सुधार लाने के लिए अपनाई गई व्यूह-रचना है । इस व्यूह-रचना में लघु कृषकों, काश्तकारों तथा भूमिहीन कृषकों के समूह को शामिल किया जाता उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर ग्रामीण विकास की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है-

"ग्रामीण विकास का तात्पर्य एक ऐसी व्यूह-रचना से है जिसके द्वारा ग्रामीण लोगों के जीवन-स्तर में सुधार तथा उनकी आय व रोजगार के स्तर में वृद्धि का प्रयास किया जाता है ।"

15.4 ग्रामीण विकास की अवधारणा का सूत्रपात एवं विकास

ग्रामीण विकास की अवधारणा का सूत्रपात महात्मा गांधी के इस कथन से हुआ "भारत की आत्मा गांवों में बसती है । जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा तथा गांव पुन: आत्म-निर्भर नहीं होंगे, तब तक देश का विकास नहीं हो सकता । ' ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में गांधीजी की उपर्युक्त अवधारणा को स्वीकार करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास को उच्च प्राथमिकता दी गयी । लेकिन इसके बाद पं नेहरू ने औद्योगिक विकास पर अधिक बल दिया । श्री लाल बहादुर शास्त्री ने 'जय जवान-जय किसान का नारा देकर कृषि के महत्त्व को पुन: प्रतिष्ठित किया तथा श्रीमती इंदिरा गांधी ने ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त किया । महान सर्वोदयी श्री जयप्रकाश नारायण के समग्र क्रान्ति' के आह्वान ने अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीण विकास की अवधारणा को बल प्रदान किया । भारत के महान् ग्रामीण अर्थशास्त्री एवं पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री चरणसिंह के ग्रामीण विकास सम्बन्धी दृढ़ विचारों ने सत्तर के दशक में भारत के राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों को ग्रामीण विकास के लिए सोचने तथा योजना बनाने के लिए विवश किया । स्व. श्री राजीव गांधी ने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज व्यवस्था पर विशेष बल दिया । वर्तमान सरकार भी ग्रामीण विकास के बारे में अपने पूर्ववर्ती शासकों का अनुसरण कर रही है।

15.5 ग्रामीण आधार-संरचना का विकास

आधारभूत संरचना से आशय उस आधारभूत ढांचे एवं सुविधाओं से है जो किसी देश अथवा संगठन के लिए कुशलतापूर्वक कार्य करने हेतु आवश्यक है । उदाहरण के लिए भवन, परिवहन, जल एवं ऊर्जा के स्त्रोत एवं प्रशासनिक प्रणाली । आधारभूत ढांचे का विकास किसी देश या क्षेत्र के विकास हेतु नितान्त आवश्यक है । आधार-संरचना का विकास किए बिना कोई भी देश प्रदेश अपनी अर्थव्यवस्था का विकास नहीं कर सकता । अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों-प्राथमिक, द्वितीयक, एवं तृतीयक क्षेत्र के तीव्र विकास हेतु आधारभूत ढांचा विकसित करना अनिवार्य है । किसी देश अथवा क्षेत्र के विकास में आधार संरचना का उतना ही महत्त्व है । जितना मानव शरीर में मेरूदण्ड का । जिस प्रकार मनुष्य रीढ़ अथवा मेरूदण्ड के बिना चल-फिर नहीं सकता, ठीक उसी तरह आधार-संरचना के अभाव में अर्थव्यवस्था का कुशलतापूर्वक संचालन संभव नहीं है । यही कारण है कि जिन देशों ने तीव्र गति से विकास किया है उन्होंने सर्वप्रथम अपने देश में आधारभूत ढांचे का विकास किया । आधारभूत ढांचे के विकास से न केवल अर्थव्यवस्था का कुशल संचालन संभव है अपितु इससे आर्थिक विकास की दर में तीव्र गति से वृद्धि की जा सकती है । यदि क्षेत्र में आर्थिक ढांचे का पर्याप्त विकास हो चुका है तो उसका आर्थिक विकास होना निश्चित है । इसके विपरीत जिन क्षेत्रों में आर्थिक ढांचा पिछड़ा हुआ है वहां विकास भी आधा-अधूरा ही होगा ।'

सतत आर्थिक विकास के लिए आधारभूत ढांचे की महत्ता सुविदित है । अपर्याप्त और अक्षम आधारभूत ढांचे से उत्पन्न होने वाली उच्च लेन देन लागतों के कारण अर्थव्यवस्था का विकास

पूरी क्षमता से नहीं हो सकता है, भले ही दूसरे मोर्चो पर कितनी ही प्रगति क्यों न हुई हो । भौतिक आधारभूत ढांचा जिसमें परिवहन, विद्युत और इसके पृष्ठमुखी और अग्रमुखी संयोजन सुविधाओं की वृद्धि के माध्यम से संचार, सामाजिक आधारभूत ढांचा जिसमें जल आपूर्ति, स्वच्छता, मलव्ययन, शिक्षा और स्वास्थ्य जो प्राथमिक सेवाओं के स्वरूप में है, शामिल है, का जीवन-स्तर पर सीधा प्रभाव पड़ता है ।

15.6 भारत में ग्रामीण आधार-संरचना

विकसित देशों की तुलना में भारत में आधार संरचना का विकास बहुत कम हुआ है, परिणामस्वरूप देश आर्थिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है । वर्ष 2003-2004 में देश में प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग(उपयोगिता एवं अनुपयोगिता) मात्र 390 कि.वा. था । भारत में प्रति सौ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़कों की लम्बाई मात्र 77 किलोमीटर है, जबकि प्रति लाख जनसंख्या पर मोटर गाडियों की संख्या 5617 (31 मार्च, 2002) है । करोड़ों लोग अभी शुद्ध पेयजल की सुविधा से वंचित है । शिक्षा एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी देश की स्थिति अधिक अच्छी नहीं है । देश में शिशु मृत्यु दर **(IMR)** 60 प्रतिशत हजार है । यह आकड़े यह दर्शाते है कि भारत में आधार-संरचना का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है ।

भारत में ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत ढांचे की स्थिति तो और अधिक दयनीय है । स्वतंत्रता प्राप्ति के छः दशक बाद भी कुल ग्रामों से विद्युतीकृत गांवों का प्रतिशत (31.3.04) मात्र 84.3 प्रतिशत है । 2001 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता की दर मात्र 65.38 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण भारत में यह इससे काफी नीची है । 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में जन्म दर 25 व्यक्ति प्रति हजार तथा मृत्यु दर 85 प्रति हजार थी । भारत में जन्म दर विश्व के विकसित देशों की तुलना में बहुत ऊंची है । अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में यह क्रमशः 14 एवं 11 है जबकि फ्रांस में 12 तथा जापान में मात्र 8 व्यक्ति प्रति एक हजार है । इसी प्रकार भारत में मृत्यु दर भी अन्य देशों की तुलना में ऊंची है । भारत के शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में जन्म एवं मृत्यु दर दोनों अधिक है । देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत ढांचे का विकास करके तथा शिक्षा एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार व गुणात्मक सुधार करके जन्म एवं मृत्यु दर दोनों को घटाया जा सकता है ।

भारत में ग्रामीण आधार-संरचना के विकास हेतु कुछ विशिष्ट कार्यक्रम शुरू किये गये है जिनका यहां संक्षिप्त विवेचन किया गया है :

(A) ग्रामीण आधार-संरचना एवं सड़कें

भारत में लगभग सवा छः लाख गांवों में देश की लगभग तीन-चौथाई (72 प्रतिशत) जनसंख्या निवास करती है जिनकी आजीविका का प्रमुख साधन कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाएं है । कृषि पदार्थो को विपणन हेतु मंडियों तक लाने के लिए गांवों में सड़कों का विकास जरूरी है । इसके अलावा प्रतिदिन करोड़ों लोग रोजगार एवं अपनी आवश्यकता की वस्तुएं खरीदने के लिए गांवों से शहरों एवं मंडियों में आते है । अतः ग्रामीण सड़कों का विशेष महत्त्व है । इसी परिप्रेक्ष्य में पूर्व

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने**25 दिसम्बर. 2000 को ग्रामीण संयोजनता के उद्देश्य से "प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना' का शुभारम्भ किया ।**

पी.एम.जी.एस.वाई. का उद्देश्य सभी पात्र, सम्पर्क रहित, ग्रामीण बस्तियों को हर मौसम में सम्पर्क सुविधा उपलब्ध कराना है । भारत-निर्माण के अन्तर्गत, 2009 तक मैदानी इलाकों में 1000 या अधिक जनसंख्या वाली और पहाड़ी/रेगिस्तानी या जनजातीय इलाकों में 500 या अधिक जनसंख्या वाली सभी बस्तियों के लिए सम्पर्क सुविधा मुहैया कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम 1000 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को तीन वर्ष की अवधि के अन्दर अच्छी सडकों से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया ।

पी.एम.जी.एस.वाई. का क्रियान्वयन सभी राज्यों 7 केन्द्रशासित प्रदेशों में किया जा रहा है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी पंचायत मुख्यालयों एवं पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों को सड़क से जोड़ा जा रहा है ।

(B) ग्रामीण आधार-संरचना एवं ग्रामीण बाजार

भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं का हिस्सा लगभग एक-चौथाई है, लेकिन कृषि-अतिरेक को बेचने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार नहीं है । कृषक को अपना उत्पाद दूर-दराज के शहरों या कस्बों में स्थित कृषि उपज मंडियों में लाना पड़ता है । एक ओर, जहां गांवों से मंडियों तक उपज को लाने के लिए आवश्यक आधार-संरचना जैसे परिवहन के साधन, (सड़क, रेल परिवहन इत्यादि) का अभाव है तो दूसरी ओर, इससे किसान को बहुत अधिक खर्चा वहन करना पड़ता है । इसके अलावा किसान का समय भी बर्बाद होता है । छोटे किसान जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है या जिनकी उपज बहुत कम है वह मंडियों तक अपनी उपज को लाने में असमर्थ होते है । ऐसी स्थिति में गांव का पटेल, साहूकार, महाजन या मध्यस्थ किसान की उपज को मनमाने दामों पर खलिहान पर ही खरीद लेता है तथा भारी मुनाफा कमाता है । दूसरी ओर किसान को अपनी उपज की सही कीमत नहीं मिलती, परिणामस्वरूप उसकी आर्थिक स्थिति हमेशा खराब रहती है तथा वह ऋणग्रस्तता के जाल में फंसा रहता है ।

किसान को उसकी उपज का सही मूल्य दिलाने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण बाजारों को विकसित किया जाए । राज्य सरकारें तथा सहकारी संस्थाएं इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

(C) ग्रामीण विद्युतीकरण

ग्रामीण विद्युतीकरण ग्रामीण विकास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है । ग्रामीण विद्युतीकरण के अन्तर्गत के तरह के कार्यक्रमों हेतु ऊर्जा की पूर्ति को सम्मिलित किया जाता है (अ) उत्पादन-अभिमुख गतिविधियां जैसे लघु सिंचाई, ग्रामीण उद्योग, इत्यादि एवं (ब) ग्रामीण विद्युतीकरण। ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रमों का निर्माण एवं क्रियान्वयन राज्य विद्युत मण्डलों राज्य विद्युत विभागों द्वारा किया जाता है । विगत तीन दशकों में ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए गहन

कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये हैं, परिणामस्वरूप 84.3 प्रतिशत विद्युतीकरण किये जा चुके है। देश के 10 राज्यों में शत-प्रतिशत गांवों को विद्युतीकृत किया जा चुका है ।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि देश के समस्त गांवों को शीघ्र विद्युतीकृत किया जाए, मार्च 2002 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि ग्रामीण विद्युतीकरण के कार्य को 2007 तक तथा सभी घरों के विद्युतीकरण के लक्ष्य को 2012 तक प्राप्त कर लिया जाए । इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, ग्रामीण विद्युतीकरण को वर्ष 2001-02 से प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के अन्तर्गत आधारभूत न्यूनतम सेवा में शामिल कर लिया गया । ग्रामीण विद्युतीकरण हेतु प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के अन्तर्गत कोष उपलब्ध कराने के अलावा राज्यों को इस कार्य हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के तहत केन्द्रीय योजना सहायता भी उपलब्ध करायी जाती है

देश में ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के मुख्य उद्देश्य से वर्ष 1969 में ग्रामीण विद्युतीकरण निगम लिमिटेड की स्थापना की गयी।

राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना - चार वर्ष की अवधि में सभी ग्रामीण घरों तक बिजली पहुंचाने के राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण विद्युत आधारभूत ढांचा ओर घर विद्युतीकरण की यह योजना अप्रेल, 2005 में आरम्भ की गई थी । इस समय (2006) केवल44 प्रतिशत ग्रामीण घरों, में बिजली पहुंची हुई है । ग्रामीण विद्युतीकरण निगम इस कार्यक्रम के लिए केन्द्रक एजेन्सी है ।

(D) ग्रामीण आधार-संरचना एवं जल-आपूर्ति

ग्रामीण विकास के उद्देश्य से सरकार गत 2-3 दशकों से ग्रामीण जल आपूर्ति एवं सफाई, पर विशेष ध्यान देने लगी । जलापूर्ति एक महत्त्वपूर्ण बुनियादी आवश्यकता है जो लोगों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करती है । साफ पेयजल आपूर्ति का लोगों के कल्याण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । शिशु मृत्यु दर मृत्यु दर, दीर्घ आयु एवं उत्पादकता पर शुद्ध पेयजल आपूर्ति का व्यापक प्रभाव पड़ता है । पेयजल की अनुपलब्धता एवं खराब गुणवत्ता का तुलनात्मक रूप से अधिक भार निर्धन व्यक्ति (चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी) पर पड़ता है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की आपूर्ति से सम्बद्ध योजनाएं राज्य क्षेत्र की न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यों द्वारा तैयार और कार्यान्वित की जाती है । तथापि, केन्द्रीय सहायता त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत की जा रही 100 प्रतिशत सहायता अनुदान व्यवस्था को सन्तुलित करने के लिए उपलब्ध कराई जा रही है । त्वरित ग्रामीण जलापूर्ति कार्य क्रम को वर्तमान में राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन जे माध्यम ले कार्यान्वित किया जा रहा है ।

'स्वजल धारा' योजना - पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने दिसम्बर 2002 में ग्रामीणों को पेयजल उपलब्ध कराने के लिए स्वजल धारा योजना' का शुभारम्भ किया । इस योजना (कार्यक्रम) के तहत वर्ष 2004 तक सभी गांवों को पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया । श्री वाजपेयी ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य

प्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर प्रदेश में 882 परियोजनाएं प्रारम्भ करने की घोषणा की । इस योजना में 90 प्रातिशत केन्द्र तथा 10 प्रतिशत राज्य सरकार की साझेदारी होगी ।

(E) ग्रामीण आधार-संरचना का विकास एवं शिक्षा

शिक्षा मानव पूंजी निवेश का महत्त्वपूर्ण घटक है । भारत में वर्तमान में सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग4 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जा रहा है जबकि जी.डी.पी. का 8 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने का लक्ष्य रखा गया है । यद्यपि विगत दो दशक में साक्षरता की दर में काफी सुधार हुआ है तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता की स्थिति अच्छी नहीं है । अनुसूचित जाति / जनजाति, पिछड़ा वर्ग एवं स्त्री शिक्षा की दृष्टि से ग्रामीण भारत बहुत पिछड़ा हुआ है । इसका प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा सम्बन्धी आधार-संरचना का अभाव रहा है । देश के लाखों गांव अभी भी विद्यालयों. विद्यालय भवनों एवं शिक्षकों से वंचित है । जिन गांवों में विद्यालय स्थापित किये गये हैं वहां पेयजल, आवास, सड़क, बिजली आदि की कमी के कारण शिक्षक प्राय: अनुपस्थित पाये जाते है । यदि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का विकास करना है तो शिक्षा सम्बन्धी आधार- संरचना के साथ-साथ मूलभूत सुविधाओं का विकास करना नितान्त आवश्यक है ।

शिक्षा सम्बन्धी ढांचे का विस्तार करने की दृष्टि से सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है । केन्द्र सरकार ने इस सम्बन्ध में अनेक कार्यक्रम शुरू किये हैं, उदाहरणार्थ ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, शिक्षा गारंटी स्कीम एवं वैकल्पिक तथा अभिनव शिक्षा, महिला सामख्या शिक्षक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा के लिए पोषाहार सहायता हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम, शिक्षा कर्मी परियोजना, जनशाला कार्यक्रम एवं प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (प्राथमिक शिक्षा घटक), सर्व शिक्षा अभियान इत्यादि ।

देश में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने की दृष्टि से नवादेय विद्यालय स्थापित किये गये हैं । इन विद्यालयों की प्रबंध समिति अपने विद्यालय में आधारभूत सुविधाओं के विस्तार एवं रोजगार से जुड़े हुए कार्यक्रमों का संचालन करती है । 1992 में यथासंशोधित, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में तीन मुख्य बातों पर बल दिया गया है :

(i) सार्वभौमिक पहुंच और नामांकन
(ii) 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को स्कूली पढ़ाई न छोड़ने देना, और
(iii) सभी बच्चे शिक्षा के आवश्यक स्तरों को प्राप्त कर सके इसके लिए शिक्षा की गुणवत्ता में ठोस सुधार।

(F) सार्वजनिक वितरण प्रणाली

यह प्रणाली राशन की दुकानों तथा उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से संचालित होती है । इन दुकानों द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को उचित मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध कराई जाती हे । 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की गई । इसके अन्तर्गत निर्धनता की रेखा के. नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों को विशेष कार्ड जारी किये जायेंगे और विशेष वस्तुयें

अनुदानित दर पर उपलब्ध कराई जायेगी । दिल्ली और लक्ष्यदीप को छोडकर यह योजना सभी राज्यों तथा संघीय प्रदेशों में लागू कर दी गई है ।

इसके अतिरिक्त सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं जिससे कि कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सके तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुयें सुलभ हो सके । इसके लिए बफर स्टॉक का निर्माण, राज्य व्यापार, गेहूं एवं चावल के थोक व्यापार का विवेकीकरण तथा खाद्यान्नों का आयात आदि का समावेश किया गया है ।

(G) ग्रामीण ऊर्जा

ऊर्जा आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है तथा विश्व के समस्त राष्ट्रों के विकास का इतिहास ऊर्जा आवश्यकता की बढ़ती हुई मांग से निकटतम सम्बन्धित रहा है । भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् 50 वर्षों की अवधि के दौरान सम्पूर्ण ऊर्जा के विस्तार का परिदृश्य दृष्टिगत हुआ है । राष्ट्र के भावी आर्थिक विकास हेतु वाणिज्यक ऊर्जा का स्वदेशी उत्पादन महत्त्वपूर्ण आगत स्वीकार किया गया है । अपने प्रत्येक संभावित प्रयासों के बावजूद भारत एक ऊर्जा अभाव वाला राष्ट्र है तथा इस अभाव की पूर्ति कच्चा तेल तथा पेट्रोलियम उत्पाद एवं कोयला आयात करके किया जा रहा है । ऊर्जा की बढ़ती हुई शहरी ग्रामीण जनसंख्या की आवश्यकता को देखते हुए देश में ऊर्जा उपलब्धि विवेकपूर्ण ऊर्जा मूल्य नीति को अपनाकर संभव है ।

15.7 गैर वाणिज्यिक प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत

जलाने योग्य लकड़ी ग्रामीण क्षेत्रों में, तथा कुछ सीमा तक शहरी क्षेत्रों में भी, खाना पकाने एवं गर्मी उत्पन्न करने का प्रमुख ऊर्जा स्त्रोत है । ऐसा अनुमानित है कि भारत में लगभग 75 मिलियन हैक्टेयर जंगलात क्षेत्र है । वार्षिक रूप से स्थानीय संसाधनों तथा सामाजिक वानिकी योजना से जो लकड़ी की प्राप्ति होती है उसकी तुलना में उद्योग, निर्माण कार्य तथा खाना पकाने इत्यादि हेतु लकड़ी की मांग कहीं अधिक है । इसका प्रत्यक्ष प्रभाव शने: शने: जंगलों के विनाश के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव के रूप में परिलक्षित हुआ है ।

15.8 वाणिज्यिक प्राथमिक ऊर्जा स्त्रोत

भारत में जो वाणिज्यिक प्राथमिक ऊर्जा के स्त्रोत उपलब्ध है उनमें प्रमुखत: कोयला, लिगनाईट तेल तथा प्राकृतिक गैस, हाइड्रो शक्ति, अणु शक्ति आदि है ।

भारत में गैर वाणिज्यिक ऊर्जा स्त्रोतों का भण्डार विद्यमान है । इनमें प्रमुख गोबर गैस संयंत्र, बायो मास्क आधारित शक्ति, कार्यकुशल लकड़ी स्टोव, सौर ऊर्जा, लघु हाइड्रो, वायु शक्ति, समुद्री थर्मल, सागर तरंग शक्ति, ज्वारीय शक्ति है ।

(H) सिंचाई

ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनसंख्या के साथ-साथ जल की आपूर्ति कृषि को भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है । कृषि की सफलता के लिंए उपजाऊ मिट्टी, जलवायु तथा पर्याप्त मात्रा में जल की आवश्यकता होती है । कृषि को जल साधन दो प्रकार से प्राप्त होते है: (1) वर्षा द्वारा, (ब) कृत्रिम साधनों (कुओं, तालाबों व नहरों) द्वारा । खेतों में कृत्रिम साधनों द्वारा जल

पहुंचाना सिंचाई कहलाता है और जल पहुंचाने वाले इन कृत्रिम साधनों को सिंचाई के साधन कहा जाता हैं ।

15.9 भारत में सिंचाई के साधन

योजना आयोग ने सिंचाई के साधनों को तीन वर्गो में विभाजित किया है.

1. **वृहद् सिंचाई योजनायें -** इस योजना में 5 करोड़ रूपये से अधिक व्यय वाली योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है, जैसे बड़ी बड़ी नहरें तथा बहुउद्देशीय सिंचाई योजनायें ।
2. **मध्यम सिंचाई योजनायें -** 25 लाख रूपये से 5 करोड़ रूपये तक व्यय होने वाली योजनायें इसमें सम्मिलित की जाती है, जैसे मध्यम श्रेणी की नहरें ।
3. **लघु सिंचाई योजनायें -** 25 लाख रूपये से कम व्यय वाली योजनायें इसमें सम्मिलित की जाती है, जैसे छोटी नहरें, नलकूप. कुएं तथा तालाब आदि ।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सिंचाई के साधनों को तीन वर्गो में बांटा जा सकता है: (अ) कुऐं (ब) तालाब, तथा (स) नहरें ।

(अ) **कुएं:-** भारत में सिंचाई के साधनों में कुओं का पर्याप्त महत्त्व है । धरती के अन्दर छिपे जल का प्रयोग कुओं के माध्यम से ही किया जाता है । आजकल भारत में सींची जाने वाली भूमि का लगभग 55 प्रतिशत भाग कुँओं द्वारा ही सींचा जाता है । कुएं सिंचाई के सबसे सस्ते साधन हैं और अधिकांश किसान अपने ही साधनों से कुएं खुदवा सकते हैं । कुएं दो प्रकार के होते हैं: (1) कच्चे व पक्के साधारण कुएं, (2) नलकूप

(1) **कच्चे व पक्के कुएं:-** अपने देश में कच्चे कुँओं की संख्या अधिक है । इनके खुदवाने में 700-800 रू. की लागत आती है और इससे लगभग 1 हैक्टर भूमि पर सिंचाई की जा सकती है । इसी प्रकार पक्के कुएं के निर्माण में 7000-8000 रू. व्यय होता है और उससे 6 या 7 हैक्टर भूमि पर हरट, चरस तथा ढेंकली द्वारा सिंचाई होती है । उत्तरी भारत में कुओं की संख्या बहुत अधिक है जबकि दक्षिणी भारत में इन कुओं की संख्या अधिक है ।

(2) **नलकूप:-** यह नवीनतम एवं महत्त्वपूर्ण सिंचाई के साधन है । नलकूपों से विद्युत शक्ति द्वारा सिंचाई के लिये पानी निकाला जाता है । जहां पर विद्युत शक्ति प्राप्त नहीं होती वहां पर डीजल इंजन द्वारा पानी निकाला जाने लगा है । नलकूपों द्वारा सिंचाई में उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा का मुख्य स्थान है । नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्र का 88.3 प्रतिशत भाग इन तीनों राज्यों में ही है ।

(I) ग्रामीण स्वास्थ्य आधार-संरचना

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण स्वास्थ्य आधार-संरचना के विकास पर सरकार विशेष ध्यान दे रही है ताकि ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य के देखभाल सम्बन्धी सेवाएं प्रदान की जा सकें । राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में लोगों को निरोधक, प्रवर्तक, आरोग्य कर एवं स्वास्थ्य लाभ स्वास्थ्य सेवाओं के प्रावधान पर जो दिया गया है ।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में एकीकृत स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण डिलीवरी प्रणाली के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जा रही है । नीचे के स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएं

प्रदान करने के लिए देश में एक विशाल नेटवर्क काम कर रहा है । प्रत्येक स्वास्थ्य उप-केन्द्र में एक महिला एवं एक पुरूष ' बहुउद्देशीय कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाती है जो मैदानी क्षेत्रों में 5000 जनसंख्या एवं पहाड़ी, जनजातीय तथा पिछड़े हुए दुर्गम मैदानी क्षेत्रों में 3000 जनसंख्या को अपनी सेवाएं प्रदान करते है । मैदानी क्षेत्रों में 30,000 जनसंख्या एवं जनजातीय तथा दुर्गम मैदानी क्षेत्रों में 20,000 जनसंख्या के लिए एक प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र स्थापित किया जाता है । प्रत्येक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र 80,000 से1,20,000 जनसंख्या तक अपनी सेवाएं प्रदान करता है । इसमें 30 अन्तरंग शैय्याएं, पूर्ण-सज्जित प्रयोगशाला एवं एक्स-रे सुविधा उपलब्ध होती है ।

15.10 सारांश

आधारभूत ढांचा ग्रामीण विकास का चौथा एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है आधारभूत ढांचे के अन्तर्गत परिवहन संचार बैकिंग बीमा, सहकारी संस्थाऐं तथा पंचायती राज संस्थाऐं सम्मिलित की जाती है । हमारे देश में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत संरचना का अभाव है । आधार भूत संरचना के अभाव के कारण गांवों का तीव्र गति से विकास नहीं हो पाया है आज भी लाखों गांव अच्छी सडकों से नहीं जुड़े हुए है । गत कुछ वर्षों में गांवों में संचार का तीव्र विकास किया गया लेकिन संचार साधनों की गुणवत्ता की दृष्टि से ग्रामीण इलाके अभी भी अत्यन्त पिछड़े हुए है ग्रामीण क्षेत्र अन्य सामाजिक सेवाओं आवास, विद्युत पूर्ति इत्यादि की दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ है अत: ग्रामीण विकास की गति में तीव्रता लाने के लिए सामाजिक सेवाओं में द्रुतगति से वृद्धि की जानी चाहिये ।

15.11 शब्दावली

- **ग्रामीण विकास -** ग्रामीण विकास का तात्पर्य एक ऐसी व्यूहरचना से है जिसके द्वारा ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार तथा उनकी आय वरोजगार के स्तर में वृद्धि का प्रयास किया जाता है ।
- **आधारभूत संरचना -** उस आधार भूत ढांचे एवं सुविधाओं से है जो किसी देश या संगठन के लिए कुशलतापूर्वक कार्य करने हेतु आवश्यक है ।
- **सार्वजनिक वितरण प्रणाली -** ऐसी व्यवस्था जिसमें राशन की दुकानों द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को उचित मूल्य पर वस्तुऐं उपलब्ध कराई जाती है ।

15.12 स्वपरख प्रश्न

1. ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं महत्त्व की व्याख्या कीजिए ।
2. आधार संरचना का अर्थ एवं महत्त्व लिखिए । भारत में ग्रामीण आधार संरचना में विकास का वर्णन कीजिए ।
3. भारत में ग्रामीण आधार संरचना के विकास हेतु शुरू किये गये विशिष्ट कार्यक्रमों का वर्णन कीजिए ।

15.13 उपयोगी पुस्तकें

1. चौधरी, जैन, जाट - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता: शिवम् बुक हाउस लिमिटेड, जयपुर।
2. माथुर, यादव, कटेवा - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, वाइड विजन, जयपुर ।
3. सी.एम. चौधरी - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता: शिवम् बुक हाउस लिमिटेड, जयपुर ।
4. स्वामी, गुप्ता - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

इकाई-16 :राजस्थान की अर्थव्यवस्था
(Economy of Rajasthan)

इकाई की रूपरेखा :

16.1 उद्देश्य
16.2 परिचय
16.3 राजस्थान की अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताएँ
16.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान का स्थान
16.5 कृषि उद्योगों एवं आधारभूत संरचना में राजस्थान पिछड़ा क्यों? कारण
16.6 राजस्थान के भावी आर्थिक विकास के लिये सुझाव
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 स्व--परख प्रश्न
16.10 उपयोगी पुस्तकें

16.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के पश्चात आप समझ पायेंगे -

- राजस्थान की अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताऐं
- भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति
- कृषि एवं आधारभूत संरचना में राजस्थान के पिछड़ेपन के कारण एवं समस्याऐं
- राजस्थान के भावी आर्थिक विकास के लिए सुझाव

16.2 परिचय

वर्तमान राजस्थान, स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व 19 देशी रियासतों, 3 ठिकानों एवं अजमेर-मारवाड़ में विभाजित था । राजस्थान को वर्तमान स्वरूप देने की प्रक्रिया 18 मार्च, 1948 को प्रारम्भ होकर 1 नवम्बर, 1956 को समाप्त हुई । जहां सर्वप्रथम 18 मार्च, 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली रियासतों को मिलाकर मत्स्य संघ बनाया गया, वहां 25 मार्च, 1948 को कोटा, बूंदी, झालावाड़, टोंक, किशनगढ़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा शाहपुरा रियासतों को मिलाकर 18 अप्रैल, 1948 को उदयपुर रियासत को मिलाकर ' संयुक्त राजस्थान' ' बनाया गया और उदयपुर को राजधानी बनाया । 30 मार्च 1949 को जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर रियासतों का विलय संयुक्त राजस्थान में करने से ' 'विशाल राजस्थान' ' का निर्माण हुआ । 15 मई, 1949 को "मत्स्य संघ ' को भी विशाल राजस्थान में मिला देने से ' संयुक्त विशाल राजस्थान' ' बना और फिर बाद में 26 जनवरी 1950 को आबू को छोड़कर सिरोही रियासत को और 1 नवम्बर 1956 को अजमेर-मारवाड, आबू रोड तथा मंदसौर जिले के

सूनेल टप्पा गांव को भी मिला देने से वर्तमान राजस्थान राज्य की निर्माण प्रक्रिया पूरी हुई और जयपुर को इसकी राजधानी का गौरव प्राप्त हुआ है ।

16.3 राजस्थान की अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताएँ

भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की महत्त्वपूर्ण स्थिति है । यद्यपि राजस्थान की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान, पिछड़ी और गरीबी से त्रस्त है, फिर भी राजस्थान भारत में शौर्य, वीरता, त्याग एवं भक्ति का प्रतीक रहा है । यह भारत के प्रमुख उद्योगपतियों की जन्मस्थली और खनिज सम्पदा की दृष्टि से समृद्ध राज्य रहा है । राजस्थान की प्रमुख विशेषताएं संक्षेप में अग्र प्रकार हैं -

(1) **भौगोलिक स्थिति एवं विस्तार -** राजस्थान भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है । यह भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग में 23^0-3' से 30^0-12' उत्तरी अक्षांशों तथा 69^0-3' तथा 78^0-17' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है । पूर्व से पश्चिम तक इसकी लम्बाई 869 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक चौड़ाई 826 किलोमीटर है । राजस्थान के उत्तर से पंजाब, हरियाणा, दक्षिण में गुजरात पूर्व में उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश और पश्चिम में पाकिस्तान है । राजस्थान की कुल स्थल सीमा 5930 किलोमीटर है जिसमें से 1070 किलोमीटर लम्बी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पाकिस्तान से लगी हुई है ।

(2) **राजस्थान का क्षेत्रफल -** राजस्थान का कुल क्षेत्रफल 342 लाख वर्ग किलोमीटर है जो भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.43% भाग है । क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का दूसरा स्थान है । पहला स्थान मध्यप्रदेश का है । जिसके अन्तर्गत भारत का 13.5 प्रतिशत क्षेत्रफल है । राजस्थान के क्षेत्रफल में 61.11 प्रतिशत भाग रेगिस्तानी है जो राज्य के 12 जिलों में फैला हुआ है और "थार का रेगिस्तान" नाम से जाना जाता है।

(3) **प्राकृतिक बनावट -** राजस्थान के प्राकृतिक बनावट की दृष्टि से मुख्य चार भौतिक विभागों (Physical Divisions) में बांट सकते हैं -

(i) **पश्चिमी रेगिस्तान -**इसको थार का रेगिस्तान भी कहते हैं जो राज्य के 12 जिलों के लगभग 61.11 प्रतिशत भाग में फैला है और इसमें राज्य की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है ।

(ii) **मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्र -** यह राजस्थान के बीचों बीच अरावली की पहाड़ियों की 692 किलोमीटर लम्बी शृंखला उत्तर-पूर्व में सिरोही से खेडी तथा दिल्ली तक फैली है ।

(iii) **पूर्वी मैदान -** इसके अन्तर्गत बनास घाटी के मैदान तथा माही नदी के मैदान आते हैं ।

(iv) **दक्षिणी-पूर्वी पठार -** यह हाड़ौती एवं मालवा के पठार के रूप में प्रसिद्ध है । इसके अन्तर्गत कोटा, बून्दी, झालावाड़, बारां जिलों के अतिरिक्त चित्तौड जिले के उत्तरी-पूर्वी भाग आते हैं इसके अन्तर्गत राज्य का लगभग 9% भाग आता है ।

(4) **प्रशासनिक व्यवस्था -** प्रशासनिक दृष्टि से राजस्थान राज्य 6 संभागों , 32 जिलों, 188 उपखंडों, तथा 241 तहसीलों मे विभाजित है। राज्य में 32 जिला परिषदें, 237 पंचायत समितियां तथा 9189 ग्राम पंचायतें हैं ।

(5) **जनसंख्या का कम भाग पर जनसंख्या वृद्धि दर अधिक -** राजस्थान की जनसंख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 5.65 करोड़ है जो भारत की कुल जनसंख्या का केवल 5.5% भाग है । यहां जनसंख्या का घनत्व 165 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जो भारत के औसत 324 प्रतिवर्ग किलोमीटर से लगभग 51% है । राज्य के सभी क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व में काफी अन्तर है । जहां जैसलमेर जिले में घनत्व 13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है वहां जयपुर जिले में घनत्व 471 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है । साक्षरता की दृष्टि से भी राज्य काफी पिछड़ा हुआ है । जहां भारत में साक्षरता का औसत 65.4% हैं वहां राजस्थान में औसत केवल 61% ही है और इस दृष्टि से राज्य का नीचा 23वां स्थान है । महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत 44.34 है जो पुरूषों के औसत साक्षरता 76.46% के आधे से कुछ अधिक है ।

राज्य में जन्म दर तथा मृत्यु दर दोनों ऊँची हैं । जहां भारत में 2002 में जन्म दर 25 प्रति हजार तथा मृत्युदर 8.1 प्रति हजार थी वहां राजस्थान में जन्म दर 30.6 प्रति हजार तथा मृत्यु दर 7.7 प्रति हजार थी । परिणामस्वरूप जहां 2001 में भारत में जनसंख्या की औसत वृद्धि दर केवल 1.93% है वहां राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि दर कई राज्यों के मुकाबले काफी ऊँची 2.5% होने का अनुमान

(6) **कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था अब प्रगति की ओर -** राजस्थान की अर्थव्यवस्था भी मुख्यत: कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है और राज्य की लगभग 75% जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन से जीविकोपार्जन करती है । राज्य की विशुद्ध आय का लगभग 40% भाग कृषि एवं उससे सम्बद्ध कार्यकलापों से उपलब्ध होता है ।

राज्य में सिंचाई सुविधाओं का नितान्त अभाव है । जहां राज्य का कुल भू-भाग देश के भू-भाग का 1.43% है वहां राज्य में जल संसाधनों का भाग केवल 1.04% ही है । परिणामस्वरूप राज्य में सिंचित क्षेत्र लगभग 72 लाख हैक्टेयर ही है जो कुल कृषित क्षेत्र का लगभग 30% भाग तथा कुल क्षेत्र का 5.9% भाग है ।

कृषि से वैज्ञानिक उपकरणों एवं रासायनिक उर्वरकों के साथ पौध संरक्षण कार्यक्रमों, उन्नत फसलों एवं उन्नत बीजों का उपयोग बढ़ रहा है ।

(7) **औद्योगिक पिछड़ापन से औद्योगीकरण की ओर अग्रसर -**राजस्थान देश के प्रमुख उद्योगपतियों की जन्मस्थली होते हुए भी आधारभूत संरचना के विकास के अभाव में अभी भी दूसरे राज्यों के मुकाबले काफी पिछड़ा हुआ है ।

योजनाबद्ध विकास के पिछले 54 वर्षों में राजस्थान में औद्योगीकरण का तीव्र गति से मार्ग प्रशस्त हुआ है । अब राज्य में खनिज आधारित उद्योगों, कपड़ा उद्योग तथा कई आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ है । राज्य में तीव्र औद्योगिक विकास हेतु सरकार ने नई औद्योगिक नीति क्रियान्वित की है । उद्योगों की वित्त व्यवस्था हेतु

रीकों और राजस्थान वित्त निगम की स्थापना की गई है । सार्वजनिक क्षेत्र में हिन्दुस्तान जिंक स्मेल्टर, अजमेर में **HMT** का घड़ी कारखाना, टोंक में चमड़े का कारखाना, खेतड़ी में तांबा शोधक कारखाना, गंगानगर में चीनी मिल तथा डिस्टीलरी, निजी क्षेत्र में 14 सीमेन्ट कारखाने तथा लगभग 25 मिलें कार्यरत हैं । कोटा, भीलवाड़ा, जयपुर, अलवर, चित्तोड़ प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बनते जा रहे हैं ।

(8) **लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा हस्त-** शिल्प कलाओं का विकास - राज्य में लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा हस्तशिल्प कलाओं का भी काफी महत्त्व है और वे अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं । उदारीकरण के दौर में लघु उद्योगों में मशीनरी एवं संयंत्र में पूंजी निवेश सीमा बढ़ाकर 3 करोड़ रू. तथा अति लघु उद्योगों में पूंजी निवेश सीमा 25 लाख रू. कर दिया था । परिणामस्वरूप लघु उद्योगों को विकास के पर्याप्त अवसर मिले हैं । जहां 1950-51 में राज्य में लघु उद्योगों की संख्या 16 हजार थी, अब राज्य में लघु उद्योग और दस्तकार इकाइयों की पंजीकृत संख्या 2.18 लाख हो चुकी है । जिनमें लगभग 3048.84 करोड़ रू. के पूंजी निवेश से राज्य के लगभग 8.46 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है । राज्य में 277 औद्योगिक क्षेत्र विकसित किये गये है । जयपुर, उदयपुर, कोटा, बून्दी, अलवर आदि कई स्थानों पर हस्तकलाओं एवं दस्तकारों के केन्द्र बन गये हैं ।

(9) **खनिजों की सम्पन्नता से समृद्धि की ओर -** राजस्थान खनिज सम्पदा की दृष्टि से काफी सम्पन्न है । यहां लगभग 67 प्रकार के खनिजों के भण्डार हैं । भारत के कुल जिप्सम उत्पादन का92%, सोपस्टोन उत्पादन का 90% चांदी उत्पादन का 90%, रॉक फॉस्फेट का 95% और चूने के पत्थर का 93% राजस्थान में उत्पादित होता है । जस्ता एवं सीसा उत्पादन में भी राज्य का महत्त्वपूर्ण भाग है।

(10) **राजस्थान में अकाल एवं सूखा की समस्या विकट है -** राजस्थान में अकाल एवं सूखा की समस्या निरन्तर बनी रहती है । 1951 से 2004-05 के पिछले 54 वर्षों में लगभग 46 वर्षों में अकाल एवं सूखा की न्यूनाधिक समस्या रही है । मानसूनी वर्षा की अपर्याप्तता, सिंचाई सुविधाओं के अभाव, मानसून की अनिश्चितता आदि के कारण अकाल एवं सूखा राजस्थान की नियति सी बन गये है, उससे जन और पशुधन की भारी हानि होती है । फसलें चौपट होने से अनाज का अभाव, सूखे के कारण पीने का पानी का अभाव और घास का अकाल -ये तीन अकाल राजस्थान की अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी समस्या है ।

(11) **पशुधन से समृद्धि -** पशु सम्पदा की दृष्टि से राजस्थान भारत का प्रमुख एवं सम्पन्न राज्य है । यहां भारत के कुल पशुधन का लगभग 11.2% भाग है । यह पशुधन राज्य की कृषि का आधार है । ये शक्ति के साधन के रूप में कृषि कार्य में मदद करते है । राज्य में पशुओं से लगभग 75 लाख टन दूध का उत्पादन राज्य में डेयरी उद्योग के विकास में सहायक हुआ है । भारत के कुल दूध उत्पादन का 9.5% भाग राजस्थान से प्राप्त होता है । बड़ी मात्रा में भेड़, बकरे-बकरियों, सुअरों आदि का राज्य

में प्रति वर्ष 46.5 हजार टन मांस उत्पादन होता है । अकाल एवं सूखे के समय पशुधन किसानों के लिये बीमे की सुरक्षा प्रदान करता है । भेड़ों एवं बकरियों के बालों से ऊन एवं बाल का लगभग 40-42% भाग राजस्थान से प्राप्त होता है । राज्य में ऊन का वार्षिक उत्पादन लगभग 19,500 टन है । पशुओं का गोबर एवं मलमूत्र उपयोगी खाद है जो कृषि विकास में सहायक है । चमड़ा एवं हड्डियां भी उत्पादन में सहायक रही है । पौष्टिक आहार की पूर्ति एवं रोजगार का आधार पशुधन राज्य की अर्थव्यवस्था की समृद्धि में सहायक है ।

(12) **कमजोर आधार संरचना -** राजस्थान के विकास की धीमी गति का कारण राज्य में आधार संरचना (Infrastructure) का कमजोर रहना है । यहां ऊर्जा के स्त्रोतों परिवहन एवं संचार साधनों तथा आधारभूत उद्योगों का नितान्त अभाव रहा है । आधार संरचना सूचकांक केवल 80 ही है । जल संसाधनों की सीमितता तथा वर्षा की कमी भी विकास में बाधक रही है ।

(13) **शक्ति के साधनों की कमी -** राजस्थान में ऊर्जा के पर्याप्त संसाधनों की निरन्तर कमी रही है । 1951 में राजस्थान में विद्युत उत्पादन केवल 8 मेगावाट था जबकि विकास कार्यो से अब विद्युत उत्पादन बढ़कर 4100 मेगावाट हो गया है । फिर भी अन्य राज्यों की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है । कोयला उत्पादन भी नगण्य है । खनिज तेलों और गैसों का उत्पादन नगण्य है जो अभी हाल ही में खोजे गये है ।

(14) **परिवहन एवं संचार साधनों का अभाव -** राजस्थान की अर्थव्यवस्था के व्यापक क्षेत्रफल एवं विस्तार को देखते हुए परिवहन एवं संचार साधनों की कमी महसूस होती है । 1951 में राज्य में सड़कों की कुल लम्बाई 18300 किलोमीटर थी और प्रति 100 वर्ग किलोमीटर में सड़कों का लम्बाई 5.35 किलोमीटर थी । रेलों की दृष्टि से भी राज्य काफी पिछड़ा था और वायु-परिवहन का नितान्त अभाव था । संचार साधनों में भी काफी पिछड़ा था, किन्तु योजनाबद्ध विकास के पिछले 54 वर्षों में परिवहन एवं संचार साधनों में काफी विकास हुआ है, फिर भी भारत के अन्य विकसित राज्य के मुकाबले काफी पिछड़ा है ।

16.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान का स्थान

भारत के इतिहास में राजस्थान का गौरवपूर्ण स्थान रहा है । जहां एक ओर राजस्थान भक्ति, शक्ति एवं बलिदानों का प्रतीक है वहां दूसरी ओर यह भारत को औद्योगिक दृष्टि से सुदृढ करने वाले उद्योगपतियों-बिरला, बांगड़, सिंघानिया, तापडिया, झुझुनूंवाला, बजाज तथा सोमानी की जन्म स्थली रहा है । राजस्थान की भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का सबसे बड़ा राज्य है । राजस्थान का कुछ खनिजों पर तो एकाधिकार सा है । जबकी कुछ खनिजों के उत्पादन में उसका भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है । खाद्यान्न पूर्ति की दृष्टि से भी राजस्थान अतिरेक वाला (Surplus) राज्य बन गया है ।

वहां दूसरा पक्ष भी देखें तो राजस्थान भारत के पिछडे राज्यों में से एक है । लगभग दो-तिहाई हिस्से में रेगिस्तान है । पेयजल का अभाव, सूखा, अकाल, आर्थिक दरिद्रता आदि प्रतिकूल परिस्थितियां होने से औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा है । परिवहन की दृष्टि से भारत में राजस्थान का सोलहवां है, विद्युत का अभाव, सिंचाई सुविधाओं की कमी और योजनाबद्ध विकास के लिये आर्थिक एवं वित्तीय साधनों का अभाव राजस्थान की अर्थव्यवस्था को वांछित गति से विकसित होने में बाधक रहे है । इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

(A) राजस्थान की कृषि

भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की कृषि भी पिछड़ी अवस्था में है । योजनाबद्ध विकास के पूर्व राजस्थान खाद्यान्नों के लिये दूसरे राज्यों पर निर्भर था, पर अब वह खाद्यानों मे आत्मनिर्भर ही नहीं, अतिरेक वाला राज्य बन गया है ।

(I) **कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था -** राजस्थान की अर्थव्यवस्था भी मुख्यत: कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। कुल जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत कृषि एवं पशुपालन से ही जीविकोपार्जन करता है । कृषि एवं पशुपालन से 1993-94 की कीमतों पर राज्य की कुल विशुद्ध आय 2004-5 में लगभग 15743 करोड़ रूपये थी जो राज्य की सम्पूर्ण शुद्ध आय 58390 करोड़ रूपये का लगभग 27 प्रतिशत थी ।

(II) **खाद्यान्नों का उत्पादन** - राजस्थान में कृषि उत्पादन में खाद्यान्नों के उत्पादन की प्रधानता है । 1997-98 में खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत 137.4 लाख हैक्टेयर क्षेत्र था और खाद्यान्न का कुल उत्पादन तब तक के सर्वोच्च स्तर 140.3 लाख टन पर पहुंच गया था । राज्य ने वर्ष 2003-04 के भारत के कुल खाद्यान्न 21.2 करोड़ टन में से 1.80 करोड़ टन का रिकार्ड उत्पादन कर लगभग 8.5 प्रतिशत का योगदान दिया है । जहां भारत में प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों का त्रिवार्षिक औसत उत्पादन (1991-94) 202.6 किलोग्राम था, राजस्थान में यह केवल 194 किलोग्राम ही था। राज्य का खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से भारत में पांचवां स्थान है ।

(III) **सिंचाई सुविधायें -** राजस्थान में सिंचाई सुविधाओं का नितान्त अभाव है । राजस्थान के कुल बोये गये क्षेत्र के केवल 24 प्रतिशत क्षेत्र को ही सिंचाई सुविधा प्राप्त है जो देश के औसत सिंचित क्षेत्र 32 प्रतिशत के मुकाबले काफी कम है । राज्य के पश्चिमी सूखे मरूस्थलीय क्षेत्र में केवल 6 प्रतिशत भाग को ही सिंचाई सुविधा मिल पाई है जिसका राज्य की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । अकाल एवं सूखा यहां सामान्य है । 2004-05 में भारत में कुल सिंचित क्षेत्र 9.3 करोड़ हैक्टेयर होने का अनुमान है, उसमें से राजस्थान में सिंचित क्षेत्र 70 लाख हैक्टेयर ही था, जो कुल क्षेत्र का 7.5 प्रतिशत भाग ही है । विश्व की सबसे बड़ी नहर योजनाओं में इन्दिरा गांधी नहर राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र को धन-धान्य से पूर्ण एवं समृद्ध बनाने में सहायक होगी ।

(IV) **राजस्थान में कृषि योग्य भूमि एवं उसका उपयोग -** राजस्थान में कुल कृषि योग्य भूमि लगभग 170.75 लाख हैक्टेयर है जो भारत के कुल कृषित क्षेत्र का लगभग 10.4 प्रतिशत भाग है। इसमें बोया जाने वाला क्षेत्र 223.25 लाख हैक्टेयर है जो कि राज्य की कृषि योग्य भूमि का लगभग 65 प्रतिशत और उसमें से भी 130 लाख हैक्टेयर में खाद्यान्न फसलें बोई जाती है ।

अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान में कृषि क्षेत्रफल भारत के कुल कृषित क्षेत्रफल का लगभग 10.5 प्रतिशत होना सन्तोषजनक लगता है जबकि मध्यप्रदेश में कृषित क्षेत्रफल भारत के कृषित क्षेत्र का 12.9 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 13.9 प्रतिशत तथा बिहार में केवल 5.7 प्रतिशत ही है । इस प्रकार राजस्थान का कृषित क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत में तीसरा स्थान है ।

(V) **औसत कृषि जोत -** कृषि संगणना (1990-91) के अनुसार राजस्थान में औसत कृषि जोत का आकार लगभग 4.11 हैक्टेयर है जो भारत के औसत कृषि जोत 1.57 हैक्टेयर के मुकाबले लगभग ढाई गुना है । अन्य राज्यों में तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार है

पंजाब	3.61 हैक्टेयर	मध्यप्रदेश	2.63 हैक्टेयर
राजस्थान	4.11 हैक्टेयर	उत्तरप्रदेश	0.92 हैक्टेयर
गुजरात	2.93 हैक्टेयर	बिहार	0.87 हैक्टेयर

स्पष्ट है कि औसत कृषि जोत की दृष्टि से राजस्थान का भारत में दूसरा स्थान है । पहला स्थान नागालैण्ड का है, जिसकी कृषि जोत का औसत आकार 7.4 हैक्टेयर है ।

(VI) **प्रति हैक्टेयर उर्वरकों का उपभोग -** भारत में बोये गये क्षेत्र में प्रति हैक्टेयर उर्वरकों का औसत उपभोग 2000-01 में लगभग 87.56 किलोग्राम है उसके मुकाबले राजस्थान में यह लगभग 29.78 किलोग्राम है । अत: उर्वरकों के उपभोग की दृष्टि से राजस्थान का भारत में सतरहवां स्थान है । अन्य राज्यों से तुलना करने पर हम देखते हैं कि पंजाब में प्रति हैक्टेयर उर्वरकों का उपभोग 163.35 किलोग्राम है वहां उत्तरप्रदेश में 115.7 किलोग्राम, गुजरात में 70.8 किलोग्राम और मध्यप्रदेश में 36.5 किलोग्राम ही है । राजस्थान में अखिल भारतीय औसत का लगभग 34 प्रतिशत ही है । अत: उपभोग की संभावनाएं काफी है ।

(VII) **प्रति हैक्टेयर कृषि उत्पादकता -** राजस्थान में प्रति हैक्टेयर भूमि उत्पादकता कई प्रगतिशील राज्यों के मुकाबले काफी कम है । जहां पंजाब में प्रति हैक्टेयर कृषि उत्पादन का औसत लगभग748 किलोग्राम, हरियाणा में 494 किलोग्राम है, वहां राजस्थान में 200 किलोग्राम ही है । कृषि उत्पादकता की दृष्टि से राजस्थान का भारत में नवां स्थान है ।

(VIII) **प्रमुख फसलों के उत्पादन में राजस्थान की स्थिति -** राजस्थान के कृषि उत्पादनों में खाद्यान्नों की प्रधानता है । 2003-04 में राजस्थान में खाद्यान्नों का रिकार्ड उत्पादन 179.85 लाख टन हुआ है जो भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन 21.2

करोड़ टन का लगभग 8.5 प्रतिशत भाग था । दालों के उत्पादन में भी राजस्थान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । भारत में दालों का उत्पादन 2004-05 में 150 लाख टन था, उसमें राजस्थान में 19 लाख टन तथा मध्यप्रदेश में 35.7 लाख टन था । उत्तरप्रदेश में 24.2 लाख टन था । चावल के उत्पादन में राजस्थान का नगण्य भाग है । भारत कुल गेहूं उत्पादन 730 लाख टन में से राजस्थान केवल 55 लाख टन गेहूं उत्पादन करता है जो भारत के गेहूं उत्पादन का लगभग 7.6 प्रतिशत है । भारत के तिलहन उत्पादन में राजस्थान की भूमिका पिछले कुछ वर्षों से महत्त्वपूर्ण बन गई है । 2004-05 में भारत में तिलहन का कुल उत्पादन 248 लाख टन था उसमें राजस्थान का उत्पादन 51 लाख टन अर्थात् भारत के कुल तिलहन उत्पादन का लगभग 20.6 प्रतिशत था । सरसों के उत्पादन में तो राजस्थान का लगभग 37 प्रतिशत भाग रहता है ।

(B) पशुधन की दृष्टि से भारत में राजस्थान की स्थिति

राजस्थान पशुधन की दृष्टि से भारत का सम्पन्न राज्य है, क्योंकि यहां भारत के कुल पशुधन का लगभग 22 प्रतिशत भाग है । राजस्थान में 1997 की पशु गणना के अनुसार कुल पशु संख्या 543.5 लाख के लगभग थी; उसमें 219.14 लाख गायें, बैल एवं भैंसे तथा लगभग 143.12 लाख भेड़ तथा 169.4 लाख बकरे-बकरियां थी । भारत के ऊन उत्पादन में राजस्थान का 40 प्रतिशत से 45 प्रतिशत भाग होने से राज्य का प्रमुख स्थान है । भारत के कुल दूध उत्पादन में राजस्थान का हिस्सा 11 प्रतिशत है । यहां प्रतिवर्ष औसतन 82 लाख टन दूध उत्पादन होता है जो पड़ोसी राज्यों के अभाव की पूर्ति करता है ।

(C) औद्योगिक दृष्टि से राजस्थान की भारतीय अर्थव्यवस्था में स्थिति

राजस्थान औद्योगिक दृष्टि से भारत के पिछड़े राज्यों में से एक है । राजस्थान में 1995-96 में भारत की पंजीकृत रिर्पोटिंग फैक्ट्रियों की संख्या का केवल 3.7 प्रतिशत तथा औद्योगिक स्थिर पूंजी का केवल 3.5 प्रतिशत भाग था । भारत के कुल औद्योगिक श्रमिकों में से केवल 3 प्रतिशत ही राजस्थान में रोजगार में हैं और औद्योगिक उत्पादन का केवल 3 प्रतिशत भाग ही राजस्थान का हिस्सा है । इस प्रकार राजस्थान प्रमुख उद्योगपतियों की जन्म स्थली और प्राकृतिक साधनों का भण्डार होने पर भी कई आधारभूत सुविधाओं के अभाव में औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ गया है।

उद्योगों से प्रति व्यक्ति आय वृद्धि - भारत में 2001-02 के आंकड़ों के आधार पर भारत के उद्योगों में प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन 1379 रूपये था वहां राजस्थान में यह केवल 842 रूपये ही था । इस प्रकार राजस्थान में उत्पादन स्तर नीचा होने के कारण उसका 11वां स्थान था ।

प्रति एक लाख जनसंख्या पर उद्योगों में रोजगार - की स्थिति से भी राजस्थान के औद्योगिक पिछड़ेपन का पता लगता है । 1998 में जहां प्रति एक लाख जनसंख्या पर भारत में औद्योगिक श्रमिकों की दैनिक संख्या 1121 थी वहां राजस्थान में यह संख्या मात्र 838 ही थी और इस दृष्टि से राजस्थान का भारतीय अर्थव्यवस्था में 10वां स्थान था ।

(D) राजस्थान में खनिज सम्पदा

(1) **कुल उत्पादन -** राजस्थान को खनिजों की दृष्टि से खनिजों का अजायबघर कहा जाए तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । यहां लगभग 67 प्रकार के खनिज मिलते हैं जिनमें 42-45 प्रकार के खनिजों का विदोहन किया जा रहा है और प्रतिवर्ष लगभग 1200 करोड़ रूपये मूल्य के खनिजों का उत्पादन होता है । खनिजों के उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का भारत मे दूसरा स्थान है । राजस्थान में कुल खनिज उत्पादन का लगभग 4 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है ।

(2) **कुछ खनिजों में राजस्थान का एकाधिकार एवं प्रथम स्थान -** राजस्थान का कुल जिप्सम उत्पादन में 92 प्रतिशत, चांदी उत्पादन में 90 प्रतिशत भाग, घीया पत्थर उत्पादन में 91 प्रतिशत भाग, तामड़ा का 95 प्रतिशत, जस्ता एवं सीसा उत्पादन में एकाधिकार है । रॉक फास्फेट का 96 प्रतिशत भाग राजस्थान से ही प्राप्त होता है ।

(3) **कुछ खनिजों के उत्पादन में राजस्थान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है -** इसमें तांबा, टंगस्टन, एस्बेस्टास, सिलिका व इमारती पत्थरों एवं संगमरमर का समावेश होता है । राजस्थान के जालौर जिले से ग्रेनाइट पत्थर भी निकाला जाता है ।

(E) विद्युत शक्ति साधन

(1) **उत्पादन -** राजस्थान विद्युत शक्ति साधनों की दृष्टि से भारत के पिछड़े राज्यों में गिना जाता है । यद्यपि पिछले 52 वर्षों में योजनाबद्ध विकास से विद्युत उत्पादन 1950-51 के 8 मेगावाट से बढ़कर 2004-05 में 5278 मेगावाट से अधिक हो गया है फिर भी राजस्थान भारत के कुल विद्युत उत्पादन का केवल 3.7 प्रतिशत भाग उत्पादित करता है । राज्य विद्युत उत्पादन में आश्रित राज्य है, उसे अपनी मांग का लगभग 50 प्रतिशत पड़ोसी राज्यों से लेना पड़ता है ।

(2) **प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग -** जहां भारत में 2000-01 में औसत प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग लगभग 373 KWH है वहां राजस्थान में यह केवल 29। KWH ही है तथा राजस्थान का प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग में भारत में 11वां स्थान है ।

(3) **ग्रामीण विद्युतीकरण -** जहां भारत में पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, केरल, कर्नाटक एवं गुजरात में शत प्रतिशत गांवों का विद्युतीकरण संभव हो पाया है। मध्य प्रदेश में 97.3 प्रतिशत गांवों का विद्युतीकरण हो चुका है । इस दृष्टि से राजस्थान भारत में दसवें स्थान पर है ।

(F) परिवहन एवं संचार -

परिवहन एवं संचार साधनों की दृष्टि से राजस्थान भारत के पिछड़े राज्यों की श्रेणी में आता है और उसका स्थान 16वां है ।

(1) **रेल परिवहन -** राजस्थान में रेल मार्गों की कुल लम्बाई 6300 किलोमीटर है जो भारत के कुल रेल मार्ग लम्बाई 63 हजार किलोमीटर का लगभग 10 प्रतिशत ही हैं। यहां केवल 16 प्रमुख रेल मार्ग हैं जिनमें मीटर गेज एवं धीमी गति की रेलों का प्रधानता

है। 1991-92 के आंकडों के आधार पर प्रति हजार वर्ग किलोमीटर पर विभिन्न राज्यों में रेल मार्ग लम्बाई इस प्रकार है -

पंजाब	43.9 किलोमीटर	उत्तरप्रदेश	30.3 किलोमीटर
पश्चिमी बंगाल	43.0 किलोमीटर	गुजरात	27.0 किलोमीटर
हरियाणा	34.0 किलोमीटर	मध्यप्रदेश	13.3 किलोमीटर
बिहार	30.6 किलोमीटर	राजस्थान	17.0 किलोमीटर

स्पष्ट है कि राजस्थान कई राज्यों से पिछड़ा है । पंजाब का प्रथम स्थान, बंगाल का दूसरा और हरियाणा का तीसरा स्थान है, वहां राजस्थान का इस दृष्टि से बारहवां स्थान है ।

(2) **सड़क, यातायात -** भारत में सड़कों की कुल लम्बाई 1995-96 के अन्त में लगभग 21 लाख किलोमीटर थी, उसमें से राजस्थान में सड़कों की कुल लम्बाई लगभग 1.2 लाख किलोमीटर थी जो भारत की कुल सड़क लम्बाई का केवल 5.7 प्रतिशत ही है । जहां क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान में भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत भाग है वहां सड़कों की लम्बाई केवल 5.7 प्रतिशत ही होना राजस्थान में सड़कों के पिछड़ेपन का ही द्योतक है । अब राजस्थान में सड़कों की कुल लम्बाई 1.64 लाख किलोमीटर है । जहां समूचे भारत में सड़कों से जुड़े ग्रामों का अनुपात 41 प्रतिशत है वहां राजस्थान में केवल 21 प्रतिशत ही है । जबकि हरियाणा में 99 प्रतिशत तथा उत्तरप्रदेश में 43 प्रतिशत गांव सड़कों से जुड़े है ।

भारत में 2004-05 के अन्त तक प्रति सौ किलोमीटर पर सड़कों की औसत लम्बाई 76 किलोमीटर जहां राजस्थान में यह औसत केवल 44.9 किलोमीटर ही था । अत: राजस्थान का इस दृष्टि से 15वां स्थान है जो काफी नीचे है । सड़क वाहनों की दृष्टि से भी राजस्थान भारत के पिछड़े राज्यों में है । जहां 1996-97 में सभी प्रकार के सड़क वाहनों की संख्या 335.6 लाख थी वहां राजस्थान में इनकी संख्या लगभग 20 लाख थी जो कुल का केवल 6 प्रतिशत ही दर्शाता था जबकि अन्य राज्यों में यह संख्या कहीं अधिक थी । अब राज्य में वाहनों की कुल संख्या 41.6 लाख के करीब है ।

(G) शिक्षा -

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान भारत के पिछड़े राज्यों की श्रेणी में आता है । 2001 की जनगणना के अनुसार जहां भारत में साक्षरता का प्रतिशत 64.8 प्रतिशत है वहां राजस्थान में यह 60.4 प्रतिशत ही है । महिला शिक्षा में तो सर्वाधिक पिछड़ा है । जहां अखिल भारतीय महिला साक्षरता का औसत 54.16 प्रतिशत है वहां राजस्थान में केवल 43.9 प्रतिशत होने से राजस्थान का 23वां स्थान आता है । पुरूषों में साक्षरता का प्रतिशत भी भारत के 75.85 प्रतिशत के मुकाबले 75.7 प्रतिशत ही रहा ।

(H) बैंकिंग -

राजस्थान की स्थिति बैंकिंग की दृष्टि से भी काफी पिछड़ी है । सितम्बर, 2004 में यहां प्रति एक लाख जनसंख्या पर 5.5 बैंक शाखाएं हैं जबकि पंजाब में 104 तथा हिमाचल प्रदेश में

12.4, केरल में 10.4 तथा गुजरात में 6.8 है । इस प्रकार राजस्थान का 12वां स्थान है । प्रति व्यक्ति बैंक निक्षेपों और बैंक साख में राजस्थान का क्रमश: 14वां तथा 13वां स्थान है । जहां अखिल भारतीय स्तर पर प्रति बैंक शाखा पर 11000 जनसंख्या है वहां राजस्थान में 1800 जनसंख्या का औसत है ।

(I) चिकित्सा एवं स्वास्थ्य -

राजस्थान में चिकित्सा एवं सेवाओं की स्थिति भी निराशाजनक है । प्रति एक लाख जनसंख्या पर रोगी शय्याओं की संख्या भारत में 100 के मुकाबले राजस्थान में 74 ही है जबकि गुजरात में 132 है । इसी प्रकार जहां गुजरात में प्रति 5000 जनसंख्या पर एक हॉस्पीटल है वहां राजस्थान में 25000 की जनसंख्या पर एक होस्पीटल है । अखिल भारतीय औसत प्रति होस्पीटल 19 हजार जनसंख्या है । स्पष्ट है कि राजस्थान इस दृष्टि से भी काफी पिछड़ा है । चिकित्सा की दृष्टि से राजस्थान का 13वां स्थान है ।

(J) शुद्ध घरेलू उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से राजस्थान की स्थिति -

भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की स्थिति जानने का एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड प्रति व्यक्ति आय है । जहां चालू मूल्यों पर अखिल भारतीय स्तर पर 2004-05 में प्रति व्यक्ति आय 23308 रू. बैठती है वहां 2002-03 के औसत पर राजस्थान की प्रति व्यक्ति औसत आय 15637 रूपये थी और प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से राजस्थान का भारत में ग्यारहवां स्थान था । हरियाणा का पहला, महाराष्ट्र का दूसरा पंजाब का तीसरा, हिमाचल प्रदेश का चौथा एवं गुजरात का पांचवां स्थान था जैसा निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है -

2002-03 के औसत के आधार पर

राज्यों में प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से तुलनात्मक स्थिति

राज्य	प्रति व्यक्ति आय (रु.)	स्थान	राज्य	प्रति व्यक्ति आय(रु.)	स्थान
हरियाणा	26632	पहला	केरल	21853	छठा
महाराष्ट्र	26386	दूसरा	तमिलनाडू	21738	सातवां
पंजाब	25855	तीसरा	आन्ध्रप्रदेश	18820	आठवां
हिमाचल प्रदेश	22576	चौथा	पं. बंगाल	18756	नौवां
गुजरात	22047	पांचवां	राजस्थान	12745	ग्यारहवां

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की दृष्टि से तुलना कर हम देखते है कि चालू मूल्यों पर 2002-03 के अन्त में भारत का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद 200879 करोड़ रू. था, उसके मुकाबले राजस्थान का शुद्ध घरेलू उत्पाद **(SNDP)** केवल 74467 करोड़ रू. था जो भारत के शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद का केवल 3.71 प्रतिशत के लगभग था । इसी प्रकार राजस्थान में प्राथमिक क्षेत्र से शुद्ध राज्य उत्पाद का 33.5 प्रतिशत, गौण क्षेत्र से 22.18 प्रतिशत और तृतीय क्षेत्र से 44.3 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है जबकि भारत में राष्ट्रीय का 27.5 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र से, 24.6 प्रतिशत

गौण क्षेत्र से तथा 47.9 तृतीयक क्षेत्र से प्राप्त होता है । अत: स्पष्ट है कि राजस्थान की अर्थव्यवस्था में भी तृतीयक क्षेत्र की प्रधानता है जबकि गौण क्षेत्र पिछड़ा हुआ है ।

16.5 कृषि उद्योगों एवं आधारभूत संरचना में राजस्थान पिछड़ा क्यों? कारण

राजस्थान की अर्थव्यवस्था को अखिल भारतीय अर्थव्यवस्था की तुलना में देखने पर उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान कृषि, उद्योग परिवहन, एवं संचार, शिक्षा, बैंकिंग और राष्ट्रीय आय की दृष्टि से भारत के पिछड़े राज्यों की श्रेणी में है । इसके आर्थिक पिछड़ेपन के प्रमुख कारण इस प्रकार है -

(1) **राज्य की प्रतिकूल भौगोलिक एवं प्राकृतिक दशाएं -** राजस्थान की अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण उसकी प्रतिकूल भौगोलिक एवं प्राकृतिक दशाएं है । राज्य का लगभग 60 प्रतिशत भू-भाग रेगिस्तान है जहां निरन्तर अकाल एवं सूखे की स्थिति बनी रहती है । जल स्त्रोतों का नितान्त अभाव है । पिछले 54 वर्षों में से 46 वर्षों में न्यूनाधिक अकाल एवं सूखे ने अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया है । राजस्थान में भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 10.43 प्रतिशत भाग है, पर जल साधनों का केवल 1 प्रतिशत भाग ही है । मानसून की अपर्याप्तता एवं अनिश्चितता सदैव बनी रहती है । रेगिस्तान के अलावा कृषि योग्य भूमि भी बहुत कम है ।

(2) **जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि -** राजस्थान में जनसंख्या वृद्धि ने भी राजस्थान के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न की है । जहां 1971-81 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर 33 प्रतिशत रही वहां 1991-2001 में भी जनसंख्या वृद्धि दर 28.33 प्रतिशत रही जो भारत की औसत वृद्धि दर21.34 प्रतिशत के मुकाबले काफी ऊंची है ।

(3) **विद्युत शक्ति का अभाव -** राजस्थान में सदैव विद्युत शक्ति का अभाव रहने से न तो औद्योगिक विकास के लिये पर्याप्त एवं सस्ती बिजली मिल पाती है और न कृषि कार्यो के लिये पर्याप्त विद्युत आपूर्ति संभव हो पाती है, परिणामस्वरूप उद्योगों एवं कृषि विकास में राजस्थान पंजाब, हरियाणा एवं गुजरात के मुकाबले काफी पिछड़ गया है ।

(4) **परिवहन एवं संचार साधनों की धीमी प्रगति -** राजस्थान में परिवहन एवं संचार सेवाओं का नितान्त अभाव है । राज्य के विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र को देखते हुए प्रति हजार वर्ग किलोमीटर पर रेल मार्गों की लम्बाई केवल 17 किलोमीटर है । सड़कों की लम्बाई भी प्रति 100 वर्ग किलोमीटर पर केवल 47.9 किलोमीटर है जो अन्य विकसित राज्यों के मुकाबले बहुत कम है । राजस्थान में केवल 163.9 हजार किलोमीटर सड़कें हैं जो भारत की कुल सड़कों का केवल 5.5 प्रतिशत है जबकि राजस्थान का क्षेत्रफल भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत है ।

(5) **सिंचाई साधनों की कमी -** राजस्थान में जल संसाधनों की बहुत कमी है । वर्षा अनिश्चित एवं अनियमित होने से राज्य निरन्तर सूखे और अकाल में जूझता रहता है

। कृषि प्रधान राज्य होने से राजस्थान में सिंचाई साधनों की जरूरत सबसे ज्यादा है । पर दुर्भाग्य से राज्य की कृषि योग्य भूमि का केवल 30 प्रतिशत क्षेत्र ही सिंचित है और 70 प्रतिशत क्षेत्र अभी भी वर्षा पर निर्भर करता है । अत: सिंचाई साधनों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है और 2004-05 राज्य का सकल सिंचित क्षेत्र 70 लाख हैक्टेयर रहने का अनुमान है ।

(6) **आर्थिक गरीबी एवं सामाजिक पिछड़ापन -** राजस्थान अन्य विकसित राज्यों के मुकाबले पिछड़ा होने के कारण यहां पिछड़ी जाति के लोगों का राज्य की कुल जनसंख्या में लगभग 29.8 प्रतिशत भाग है । वे गरीब ही नहीं, अशिक्षित और बेकार भी रहते है । 1993-94 मे राज्य की लगभग 27.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही थी । अब यह घटकर15.28 प्रतिशत रह गई है । अत: विकास के लिये जनता के अधिकांश भाग में विकास के प्रति जागरूकता में कमी रही है ।

(7) **विकास के लिये वित्तीय साधनों में कमी -** राजस्थान की जनता को आर्थिक दरिद्रता एवं सामाजिक पिछड़ापन से राज्य में आय, उपभोग एवं उत्पादन का स्तर नीचा है । बचतों एवं पूंजी निर्माण की अपर्याप्तता है । सरकार के वित्तीय साधन बहुत ही सीमित होने से विकास कार्यक्रमों के लिये वित्तीय साधनों की कमी राज्य के तीव्र गति से विकसित होने में बाधक है । ओवर ड्राफ्ट का भारी ब्याज और उस पर अकालों एवं सूखे की मार से राज्य में विषम संकट रहता है । यद्यपि केन्द्र सरकार अनुदान एवं वित्तीय साधनों की पूर्ति से राज्य को सहायता प्रदान करती है, परवह राज्य की कुल वित्तीय आवश्यकता -को देखते हुए नगण्य एवं अपर्याप्त है ।

(8) **प्रशासनिक भ्रष्टाचार एवं अकुशलता -** भारत के अन्य राज्यों की भांति राजस्थान भी प्रशासनिक अकुशलता, भ्रष्टाचार एवं लाल फीताशाही से त्रस्त है । राज्य की पिछड़ी और अशिक्षित जनता और भ्रष्टाचार की अधिकता ने राज्य को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ने में मदद की है । विकास कार्यो में गति भी धीमी रही है ।

(9) **नियोजन प्रक्रिया में अकुशलता -** राजस्थान में आर्थिक विकास की नियोजन प्रक्रिया भी काफी अकुशल रही है । विकेन्द्रित नियोजन की धीमी गति से जनता में विकास के प्रति उत्साह कम तथा स्थानीय साधनों, श्रम शक्ति और विकास कार्यो को हाथ में लेने में काफी विलम्ब से विकास की गति तेज नहीं हो पाई । अब इस ओर विशेष ध्यान देना उचित है ।

(10) **राजनैतिक अस्थिरता -** राजनैतिक स्थिरता आर्थिक विकास में तेजी का आधार है, पर दुर्भाग्य से राजस्थान में सदैव ही न्यूनाधिक राजनैतिक अस्थिरता रही है । स्वर्गीय मोहनलाल सुखाड़िया के बाद मुख्यमंत्रियों का बार-बार बदलना तथा राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न होना, नयी राजनैतिक पार्टियाँ सत्ता में आना और पुरानी योजनाओं को बदल कर नई अपनी योजनाएं लागू करना आदि कई दिक्कतें विकास में बाधा डालती रही है ।

(11) **जन सहयोग का अभाव -** जन सहयोग विकास को गति प्रदान करता है, पर राजस्थान की पिछड़ी एवं गरीब जनता का विकास में वांछित सहयोग नहीं मिल पाया और वे विकास कार्यों से जुड़ने के स्थान पर अलग-अलग रहे । उससे प्रशासनिक भ्रष्टाचार और अकुशलता बढ़ी और राज्य विकास की दृष्टि से पिछड़ गया ।

इन सब कारणों का सामूहिक परिणाम राज्य का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा रहना है । अब प्रशासनिक कुशलता और विकास की योजनाओं के सफल क्रियान्वयन से राजस्थान को विकास पथ पर अग्रसर होना है ।

16.6 राजस्थान के भावी आर्थिक विकास के लिये सुझाव

राजस्थान के सर्वांगीण विकास के लिये बाधाओं को दूर करना होगा और जनता में योजनाओं के प्रति विश्वास उत्पन्न कर एक ऐसी अर्न्तसंरचना का निर्माण करना होगा जिसमें प्रशासनिक कुशलता बढ़े, जनसहयोग मिले और आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ आर्थिक समाजवाद का स्वप्न साकार हो । इसके लिये निम्नलिखित सुझावों को क्रियान्वित करना चाहिये-

(1) **आर्थिक साधनों का सर्वेक्षण -** राज्य में आर्थिक साधनों के विश्वसनीय आकड़े एकत्रित करने के लिये अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों का व्यापक सर्वेक्षण जरूरी है । राज्य में ये आकड़े भावी योजनाओं के लिए उपयोगी होंगे ।

(2) **राज्य योजना बोर्ड की कुशलता में वृद्धि -** आर्थिक नियोजन में राजनैतिक स्वार्थों से परे एक दक्ष एवं व्यावहारिक मस्तिष्क की आवश्यकता होती है । यद्यपि अब राजस्थान में भी योजना बोर्ड बनाया जा चुका है, पर उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि तभी संभव है, जबकि उसका गठन आर्थिक तकनीकी विशेषज्ञों की प्रधानता से हो और इन्हें स्वतंत्र वातावरण में कार्य करने का मौका मिले ।?

(3) **सिंचाई के साधनों में वृद्धि -** की जानी आवश्यक है । इसके लिए भूमिगत जल के प्रयोगों के लिये ट्यूबवेल, कुँओं, बांधों आदि को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिये ।

(4) **प्राकृतिक बाधाओं से छुटकारे के लिये दीर्घकालीन नीति -** का अनुसरण कर राज्य में सिंचाई की भूमिगत जल का पर्याप्त उपयोग, राजस्थान नहर के निर्माण में तेजी, वृक्षारोपण, भूमि कटाव और हवा से रेत को उपजाऊ भूमि पर फैलने में रोक आवश्यक है ।

(5) **मरूक्षेत्र में पशुपालन को बढ़ावा -** राजस्थान के मरूस्थली विशाल क्षेत्र में जहां कृषि विकास की संभावनाएं सिंचाई सुविधाओं की नितान्त कमी से संभव नहीं हैं, वहां पशुपालन का विकास तीव्र गति से किया जाना चाहिये ।

(6) **इन्दिरा गांधी नहर क्षेत्र का तेजी से विकास करना चाहिए -** इसके लिए आवश्यक योजनाओं को जल्दी ही मूर्त रूप देकर, कार्यान्वित करने से राज्य में बहुत बड़े क्षेत्र में अकाल के प्रकोप को रोका जाना संभव है । इसके कारण राज्य में रोजगार भी बढ़ेगा । कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी ।

(7) **उद्योगपतियों को आकर्षित करने के लिए प्रलोभन** दिया जाना चाहिए और प्रारम्भिक अवस्था में प्रलोभनों से जब सुदृढ़ औद्योगिक आधार तैयार हो जायेगा, तो स्वत: ही उद्योगपति आकर्षित होगे ।

(8) **आधुनिक लघु उद्योगों का विकास** करने में औद्योगिकीकरण की गति तेज हो सकती है, रोजगार बढ़ सकता है तथा क्षेत्रीय विषमता उत्पन्न होने की संभावनायें भी नहीं रहती है ।

(9) **परिवहन एवं संचार साधनों का विकास** भी आवश्यक है, इससे राजस्थान के वनों, खनिजों व अन्य उद्योगों को सस्ती एवं सुलभ यातायात सुविधायें उपलब्ध होगी और क्षेत्रों में प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा ।

(10) **वित्तीय साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग** किया जाना चाहिए तथा इन साधनों में वृद्धि के यथासंभव प्रयास किये जाने चाहिए । इसके लिए प्रगतिशील करारोपण, अल्प बचतों को प्रोत्साहन, अनावश्यक खर्चो में मितव्ययिता की जानी चाहिये ।

(11) **प्राथमिकताओं का विवेकपूर्ण निर्धारण** किया जाना आवश्यक है ताकि विकास समाजवादी सिद्धान्तों के अनुकूल हो सकें ।

(12) **अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा देना चाहिये** जिससे राजस्थान के शुष्क भागों में सूखी खेती संभव हो, खनिजों के नये प्रयोग बढ़े । वैकल्पिक साधनों की पूर्ति संभव हो और उत्पादन में (विविधता) उत्पन्न हो सके ।

(13) **जनसंख्या पर प्रभावी नियंत्रण** किया जाना चाहिये । इसके लिए शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता तथा परिवार नियोजन कार्यक्रमों में तेजी लानी चाहिये ।

16.7 सारांश

राजस्थान में कृषि व औद्योगिक विकास तथा आधारभूत ढांचे के विकास की काफी संभावनाएं है । भविष्य में औद्योगिक विकास, खनन विकास, सड़क विकास, पर्यटन विकास, पावर विकास की एक समय बद्ध व पारदर्शी योजना तैयार की जानी चाहिये जिसमें काफी मात्रा में विदेशी निजी विनियोग का भी उपयोग किया जाना चाहिये ताकि राजस्थान विकसित राज्यों की श्रेणी में आ सके। राज्य सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील भी है विश्व बैंक से विशेष सहायता प्राप्त करके कृषिगत विकास की काफी विस्तृत व व्यापक योजना पर कार्य करने से विभिन्न प्रकार की फसलों, फलों, पशु पालन चारा, वृक्षारोपण आदि का विकास किया जा रहा है जिससे रोजगार में वृद्धि होगी । ग्रामीण निर्धनता कम होगी तथा आर्थिक असमानता में भी कमी आएगी ।

16.8 शब्दावली

- **लिंग अनुपात -** प्रति एक हजार पुरूषों के पीछे स्त्रियों की संख्या लिंग अनुपात कहलाती है।
- **जनसंख्या का घनत्व -** प्रति वर्ग किलोमीटर में जनसंख्या का निवास जनसंख्या का घनत्व कहलाता है ।

- **आधारभूत ढांचा -** आधार भूत के अन्तर्गत विद्युत, सिंचाई, सड़कों, रेलों, डाकघर, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं बैकिंग की स्थिति का अध्ययन किया जाता है ।

16.9 स्वपरख प्रश्न

1. राजस्थान की अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताऐं संक्षेप में दीजिए ।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की कृषि की स्थिति पर प्रकाश डालिए ।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था में राजस्थान की कृषि, उद्योग, परिवहन, ऊर्जा तथा व्यापार सेवाओं की क्या स्थिति है ।
4. राजस्थान के विकास में आने वाली बाधाओं के कारण देते हुए निराकरण के लिए सुझाव दीजिए।

16.10 उपयोगी पुस्तकें

1. लक्ष्मीनारायण नाथुरामका - राजस्थान की अर्थव्यवस्था, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर ।
2. विभिन्न बजट समीक्षा, राजस्थान सरकार ।

इकाई-17 :पंचायती राज व्यवस्था एवं ग्रामीण विकास

इकाई की रूपरेखा :

17.1 उद्देश्य
17.2 परिचय
17.3 विकेन्द्रीकरण तथा लोकतन्त्र का अर्थ
17.4 लोकतंत्र एवं ग्रामीण विकास
17.5 पंचायती राज की विचारधारा
17.6 पंचायती राज की आवश्यकता एवं महत्त्व
17.7 पंचायती राज की विशेषताएँ
17.8 पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु उठाये गए कदम
17.9 पंचायती राज का आलोचनात्मक मूल्यांकन
17.10 पंचायती राज की सफलता के लिए सुझाव
17.11 महात्मा गांधी का आर्थिक दर्शन
17.12 सारांश
17.13 शब्दावली
17.14 स्व-परख
17.15 उपयोगी पुस्तकें

17.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- लोक तंत्र की अवधारणा एवं उसका अर्थ
- लोक तंत्र का ग्रामीण विकास में योगदान
- पंचायती राज की विचारधारा, आवश्यकता एवं महत्त्व
- महात्मा गांधी का आर्थिक दर्शन

17.2 परिचय

"सच्चा प्रजातंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस लोगों द्वारा नहीं चलाया जा सकता । इसे नीचे से चलाना होगा, हर गांव के लोगों को चलाना होगा ।"

महात्मा गांधी के उपर्युक्त कथन से प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा पंचायती राज की महत्ता ध्वनित होती है । पंचायती राज की स्थापना भारतीय लोकतंत्र की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । 'प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण' तथा 'पंचायती राज' दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची है । राजस्थान को वह पहला राज्य होने का गौरव प्राप्त है जिसने अपने यहां पंचायती राज की स्थापना की । राजस्थान विधान मंडल ने 2 सितम्बर, 1959 को देश में सबसे पहले पंचायत समिति और जिला परिषद् अधिनियम पारित किया तथा**2 अक्टूबर, 1959 को स्व. प्रधानमंत्री पं. नेहरू द्वारा नागौर (राजस्थान) में पंचायती राज का उद्घाटन किया गया** । तत्पश्चात् देश

के अन्य राज्यों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गई ।

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही ग्राम पंचायतें हमारे लोकतंत्र की धड़कन रही है । ये पंचायतें गांवों के सामुदायिक जीवन की संरक्षक थी । मानव जीवन की सभी गतिविधियों का संचालन इन पंचायतों की देखरेख में होता था । पंचायत में सामान्यतया गांव के विभिन्न वर्गो के पांच बुद्धिमान व्यक्ति होते थे किन्तु समय बीतने के साथ संख्या की यह सीमा समाप्त हो गई है । पंचायतें हमारे लोकतांत्रिक संस्थानों की रीढ़ रही हैं, जिनके चारों ओर गांव की समूची सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियां चलती थी । वैदिक काल से लेकर ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ तक पंचायतें ही हमारे गांवों और उनकी आवश्यकताओं की देखभाल करती थी । औद्योगीकरण के आगमन से गांवों के सामुदायिक जीवन में बिखराव आने लगा । अत्यधिक केन्द्रीकृत ब्रिटिश शासन में पंचायत संस्थाओं को गहरा आघात लगा ।

17.3 विकेन्द्रीकरण तथा लोकतंत्र का अर्थ

विकेन्द्रीकरण शब्द का अर्थ यह है कि किसी भी केन्द्रीभूत शक्ति को कई भागों में बांट देना या उसे एक स्थान पर न रहने देना । लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में विकेन्द्रीकरण के बिना प्रजातंत्र का पनपना अत्यधिक कठिन कार्य है । **ब्राइस** के शब्दों में, "प्रजातन्त्र शासन का वह रूप है जिसमें राज्याधिकार किसी विशेष श्रेणी के लोगों को नहीं बल्कि समूचे समाज के लोगों को प्रदान किये जाते है ।" **अब्राहम लिंकन** के अनुसार, "प्रजातंत्र जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है ।" लोकतंत्र में शासन जनता या जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में रहता है ।

बलवंत राय मेहता के शब्दों में, "प्रजातंत्र की परिकल्पना यह है कि केवल ऊपर से ही शासन न चलाया जाये बल्कि स्थानीय प्रतिभाओं का विकास किया जाये । यह तभी संभव है जबकि वे (स्थानीय लोग) सक्रियता से सरकार के कार्यो में भाग ले सकें । इसे ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण या पंचायत राज कहते है । स्पष्ट है कि जिस राज्य के सत्ता का जितना अधिक विस्तार होगा वह उतना ही अधिक लोकतांत्रिक लोक कल्याणकारी राज्य होगा । सर्वसाधारण के पास ज्यादा से ज्यादा अधिकार आयेंगे तब वे अपना कर्तव्य पालन भी पूर्ण निष्ठा से करेंगे । **विकेन्द्रित व्यवस्था में जनता अपने विकास एवं कल्याण सम्बन्धी कार्यो के लिए शासन पर निर्भर न रहकर स्वयं अपने साधनों से कार्य पूरा करने के लिए तत्पर रहेगी,** क्योंकि उसके पास सत्ता होगी, अधिकार होंगे और उनके उपयोग करने की शक्ति भी उन्हीं के पास होगी । अत: विकेन्द्रीकरण और प्रजातंत्र में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक है ।"

17.4 लोकतंत्र एवं ग्रामीण विकास

1. **स्वावलम्बन की भावना को बल -** स्वावलम्बन की भावना किसी भी लोकतांत्रिक संस्था के सफल संचालन के लिए अत्यावश्यक है । लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि इसके भीतर बड़ी मात्रा में स्थानीय स्वशासन होता है, जिससे स्थानीय विकास की जिम्मेदारी स्थानीय व्यक्तियों पर आ जाती है और स्वावलम्बन की भावना को बल मिलता है ।

2. **जनता का बहु मुखी विकास -** लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण से स्थानीय जनता का बहु मुखी विकास संभव होता है । स्थानीय नेतृत्व बढ़ता है तथा स्थानीय व्यक्तियों के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से उनका बहु मुखी विकास होता है।
3. **जन सहयोग -** देश के विकास हेतु जन सहयोग अत्यावश्यक है । यदि विकास कार्यो में जन सहयोग नहीं होगा तो अपेक्षित विकास नहीं हो सकेगा । प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण में विकास सम्बन्धी कार्य स्थानीय व्यक्तियों द्वारा क्रियान्वित किए जाते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति उन्हें अपना समझता है और उनमें पूर्ण सहयोग देने को तत्पर रहता है।
4. **लचीलापन -** प्रशासन में लचीलापन होना अच्छे शासन का एक महत्त्वपूर्ण गुण माना जाता है । लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में केन्द्रीय सत्ता के आदेशों का कठोरता से पालन करने की आवश्यकता नहीं होती जिससे प्रशासन में स्वभावत: लचीलापन आ जाता है । स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्वायत्त संस्थाएं अपने आदेशों एवं कार्यो में परिवर्तन कर सकती हैं जिससे जनता का अधिक से अधिक हित होता है ।
5. **मितव्ययता -** भारत जैसे विकासशील देश में मितव्ययता अत्यावश्यक है । विकेन्द्रित व्यवस्था में खर्च कम होता है क्योंकि जनहित के मामले स्थानीय संस्थाओं द्वारा ही सुलझा दिए जाते है ।
6. **उत्तरदायित्व की भावना का विकास -** लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में प्रशासनिक कार्यो के साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक विकास का अधिकार भी जन प्रतिनिधियों को प्राप्त होता है । इससे स्थानीय व्यक्तियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है । स्थानीय प्रतिनिधि इस बात का अनुभव करते हैं कि कार्य में किसी तरह की त्रुटि रहने पर उनकी बदनामी हो सकती है, जिससे वे हमेशा कर्तव्यपालन में आगे रहते है ।
7. **समस्याओं का उचित समाधान -** प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण में सत्ता स्थानीय प्रतिनिधियों के हाथों में रहती है । ये व्यक्ति स्थानीय आवश्यकताओं, समस्याओं एवं साधनों से पूर्ण परिचित रहते हैं और समय पर ही उचित समाधान भी प्रस्तुत कर सकते है।

इस प्रकार प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही सच्चे अर्थों में कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है । इसके द्वारा ही हम जनता में सहयोग, स्वावलम्बन आदि गुणों का विकास कर सकते है ।

17.5 पंचायती राज की विचारधारा

पंचायती राज के पीछे जो विचारधारा निहित है, वह यह है कि गांवों के लोग अपने शासन का उत्तरदायित्व स्वयं संभालें । यही एक महान आदर्श है जिसे प्राप्त किया जाना है । यह आवश्यक है कि गांवों में रहने वाले लोग कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, सिंचाई, पशुपालन आदि से सम्बन्धित विकास क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लें । ग्रामीण लोग न केवल कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में भाग ही ले बल्कि उन्हें यह अधिकार भी होना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं और अनिवार्यताओं के विषय में स्वयं ही निर्णय करें । पंचायती राज में लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार योजनाओं एवं

नीतियों का निर्माण करते हैं, और जनता की वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उनके अनुसार ही अपने कार्यक्रमों को लागू करते है । इस प्रकार, देश की जड़ों तक लोकतंत्र को प्रवेश कराया गया है । उसके अन्तर्गत जनता के नीचे से नीचे स्तर पर स्थित लोग भी देश के प्रशासन से सम्बद्ध हो जाते है । पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोग न केवल नीति का निर्धारण ही करते हैं, बल्कि उसके क्रियान्वयन तथा प्रशासन का नियंत्रण एवं मार्गदर्शन भी करते हैं ।

17.6 पंचायती राज की आवश्यकता एवं महत्त्व

पंचायती राज का विचार सदियों पुरानी संस्था को पुर्नजीवित करना नहीं है । पुरानी पंचायतें गांव में रहने वाले परिवारों के मुखियाओं की होती थी । वर्तमान समय की तरह उनके लोकतांत्रिक चुनाव नहीं होते थे । आमतौर पर परिवारों के मुखिया सम्बन्धित क्षेत्र की तत्कालीन परम्पराओं के अनुसार चुने जाते थे । अधिकांश मामलों में पद वंशानुगत होते थे । पंचायतें बहुत पुराने जमाने में भी विद्यमान थीं लेकिन वर्तमान पंचायती संस्थाएं इस माने में नयी है कि उनको काफी अधिकार, साधन और जिम्मेदारियां सौंपी गयी है । नाम पुराना है मगर संस्थाएं नयी है । पंचायती राज का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **प्रजातंत्र का आधार -** देश में स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए पंचायती राज आधार प्रदान करता है । इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है । यह व्यवस्था ग्रामीण जनता के लोकतांत्रिक संगठनों के प्रति रूचि स्थापित करती है ।
2. **प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण -** पंचायती राज के द्वारा शासकीय शक्तियों एवं कार्यो का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है । विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में शासकीय सत्ता गिनी चुनी संस्थाओं में न रह कर गांव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में आ जाती है । इससे केन्द्र व राज्य सरकारों पर कार्य का बोझ कम हो जाता है ।
3. **भावी नेतृत्व -** पंचायती राज संस्थाएं देश का भावी नेतृत्व तैयार करती है । विधायकों, सांसदों व मंत्रियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान करती हैं जिससे वे ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं से अवगत होते है । गांवों में उचित नेतृत्व का विकास करने एवं विकास कार्यो में जनता की रूचि बढ़ाने में पंचायतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है ।
4. **राजनीतिक चेतना -** पंचायतें नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती है । साथ ही उनमें नागरिक गुणों का विकास करने में मदद करती है । अत: पंचायतों को लोकतंत्र की प्रयोगशाला की संज्ञा दी जा सकती है ।
5. **जनता व शासन के बीच सहयोग -** पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से जनता शासन के बहुत करीब पहुंच जाती है । इससे जनता और शासन में परस्पर सहयोग में वृद्धि होती है जो ग्रामीण विकास व उन्नति के लिए परम आवश्यक है ।
6. **प्रशासन से समन्वय -** पंचायतों के कार्यकर्ता व पदाधिकारी स्थानीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था के बीच कड़ी है । इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ किये हुए ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों का चलना मुश्किल हो जाता है ।

संक्षेप में, पंचायती राज व्यवस्था का महत्त्व इस तथ्य में है कि इनके द्वारा ही निचले स्तर पर लोकतंत्र का विस्तार करना (लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण) और सरकारी काम-काज और विकास गतिविधियों में जनता को शामिल करना संभव है ।

17.7 पंचायती राज की विशेषताएँ

भारत में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के उद्देश्य से लागू की गई पंचायती राज व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं है -

1. भारत में पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था लागू की गई है । ये स्तर हैं - ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद् ।
2. पंचायती राज के तीनों स्तरों में सहयोगी सम्बन्ध स्थापित किये गए है ।
3. पंचायती राज प्रणाली में स्थानीय लोगों को काम करने की आजादी है और देखरेख ऊपर से होतीहै।
4. पंचायती राज की संस्थाएं निर्वाचित होती हैं और इसके कर्मचारी निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के अधीन काम करते है ।
5. इन संस्थाओं को साधन जुटाने और जन सहयोग संगठित करने के पर्याप्त अधिकार है।
6. ग्रामीण विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाओं का क्रियान्वयन इन स्तरों / संगठनों के द्वारा किया जाता है ।
7. पंचायती राज व्यवस्था को इस रूप में लागू किया गया है कि भविष्य में उत्तरदायित्वों व सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जा सकें ।

17.8 पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु उठाये गए कदम

विगत पांच दशकों में पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु अनेक कदम उठाये गए है । पिछले कुछ अर्से से निरन्तर पंचायती राज संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने पर जोर दिया जा रहा है । यह इस बात का प्रमाण है कि देश की सरकार पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए एकमात्र जिम्मेदार इकाई के रूप में स्वीकार करती है । ऐसी स्थिति में जबकि ग्रामीण विकास शासन की प्राथमिकता सूची में स्थान पा रहा है पंचायती राज संस्थाओं की जिम्मेदारी अधिक बढ़ गई है ।

पंचायतें प्रजातन्त्र का प्रथम सोपान है । ये गणतन्त्र की आधारशिला है । पंचायतें ही ऐसी संस्थाएं हैं, जो गांवों के विकास के लिए सीधी जिम्मेदार है । ग्रामीण धरातल पर लोगों का सीधा सम्पर्क पंचायतें से होता है । पंचायती राज संस्थाएं चाहें तो अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण बदलाव ला सकती है ।

पंचायतों का यह मुख्य दायित्व है कि वे गोवा के विकास के लिए निर्धारित योजनाओं को लागू करने में यथेष्ट योगदान करें । प्राथमिकताएं निर्धारित करें और गांवों को हर प्रकार की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न बनायें । विकास के लाभ से वंचित पिछड़े एवं निर्धन लोगों के कल्याण कार्यो को पंचायतें गंभीरता से पूरा करेगी, तो निश्चित ही हमारे ग्रामीण अंचल का नक्शा ही बदल जायेगा ।

पंचायती राज संस्थाएं गांवों के सामाजिक पक्ष के प्रति भी समान रूप से उत्तरदायी है । समाज सुधार के कार्यक्रमों की सफलता पंचायतों के सक्रिय योगदान पर निर्भर है । दहेज, बाल-विवाह एवं मृत्यु-भोज जैसी रूढ़ियों के उन्मूलन और अपराध नियंत्रण तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण जैसे दायित्व पंचायतों की पहल से निष्पादित किये जा सकते है । गांवों के नव निर्माण और विकास के गुरूतर दायित्व से प्रेरित् होकर यदि पंचायतें सक्रिय रहेगी, तो ये निश्चय ही आत्म निर्भर और शक्तिशाली बन पाएंगी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अब तक पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु उठाये गए विभिन्न कदमों में कुछ उल्लेखनीय निम्न प्रकार हैं -

1. **संवैधानिक -** पंचायती राज को एक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है और **स्वर्गीय श्री के. सन्थानम** की पहल पर इसे एक बड़ी सीमा तक भारतीय संविधान में 40वें अनुच्छेद के रूप में शामिल किया गया है । इस अनुच्छेद में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो । इस संवैधानिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए भारत में राज्य सरकारों ने पंचायत अधिनियम को लागू किया । अपनी कुछ कमियों के बावजूद पंचायत संस्थाएं भारत में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तन लाने वाला एक सक्षम संस्थागत ढांचा प्रदान करती है।
2. **बलवंत राय मेहता समिति -** श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में योजना परियोजनाओं की समिति के अध्ययन दल ने 1957 में अपनी रिपोर्ट में स्वशासन के तीन स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की थी । इस प्रकार समिति ने राजनीतिक और प्रशासकीय शक्तियों के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का विचार प्रतिपादित किया इस समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले राजस्थान में और आन्ध्र प्रदेश में 1959 में पंचायती राज प्रणाली की शुरूआत की गयी । तत्पश्चात् विभिन्न राज्यों ने इस व्यवस्था को लागू किया ।

   बलवंत राय मेहता समिति का मत था कि उत्तरदायित्व और अधिकारों के बिना प्रगति संभव नहीं है जबकि समुदाय अपनी समस्याओं को समझते हुए अपनी जिम्मेदारियों को महसूस करें । अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करें तथा स्थानीय प्रशासन पर लगातार सतर्क होकर निगरानी रखे । इस समिति की सिफारिशों के आधार पर देश के अधिकांश भागों में पंचायत राज संस्थाओं का गठन किया गया । गठित की गई कुल पंचायतों के अन्तर्गत90 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या आ गयी । 4974 खंडो में 4033 समितियां थी । कुछ खंडो ने जिलों और तालुकों को प्रमुख यूनिट रखने का फैसला किया था । कुल 399 जिलों में से 262 में जिला परिषदों का गठन किया गया । इनमें कुछ परिषदों की वास्तविक शक्ति ज्यादा थी और कुछ की कम ।

बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट के आधार पर जिन राज्यों ने पंचायती राज प्रणाली को अपनाया उनमें से अधिकतर में यह व्यवस्था विफल रही क्योंकि विकेन्द्रीकरण योजना बन नहीं पायी और नेतृत्व का विकास नहीं हुआ । विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अधिकारियों पर निर्भरता अधिक रही । परिवर्तन अभिनवीकरण तथा परिणाम अभिनवीकरण प्रणाली में रिस-रिसकर पहुंचने में विफल रहा ।

3. **अशोक मेहता समिति -** भारत सरकार ने 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायत राज संस्था के बारे में एक समिति का गठन किया । पंचायत राज संस्था के विकास के बारे में यह एक और महत्त्वपूर्ण कदम था । इस समिति ने पंचायत राज की विभिन्न संस्थाओं के कामकाज की समीक्षा की और इन संस्थाओं को पुन: सक्रिय बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की । समिति की यह टिप्पणी उचित ही नहीं कि "पंचायत की कहानी उतार-चढ़ावों की कहानी है । यह तीन चरणों से होकर गुजरी है । सन् 1958 से 1964 तक विकास का चरण, 1965 से 1969 तक ठहराव का चरण और 1969 से 1977 तक पतन का चरण ।"

   अशोक मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1978 में दी । इसका निम्नलिखित पैरा स्वयं में स्पष्ट है-

   "आम तौर पर पंचायती राज संस्थाओं का काम निराशाजनक रहा है और उसके पीछे कमियां और विफलताएं रही है । इन संस्थाओं में समाज के आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से दबदबे वाले लोग हावी रहे हैं जिनके कारण कमजोर वर्गो तक लाभ पहुंच नहीं पाये हैं । राजनीतिक गुटबंदी के कारण भी उनके कामकाज में विकृति आई है और विकास कार्य अवरूद्ध या कमजोर हुआ है । भ्रष्टाचार, अकुशलता, नियमों की अवहेलना, दैनिक कामकाज में राजनीति हस्तक्षेप, गुटबंदी, स्वार्थ प्रेरित कार्यवाही, सेवा भावना की जगह अधिकारों पर कब्जा, इन तमाम कारणों से औसत ग्रामीण के लिए पंचायती राज की उपयोगिता सीमित हो कर रह गई है ।"

   अशोक मेहता समिति ने दो स्तरों के पंचायत राज मॉडल का सुझाव दिया अर्थात् जिला परिषद् और मण्डल पंचायत । इस समिति ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रबन्ध पर जोर दिया और सिफारिश की कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की वर्तमान योजना पर पृथक से विस्तृत विचार आवश्यक है । समिति की रिपोर्ट के बाद एक मॉडल विधेयक तैयार किया गया । आशा थी कि सभी राज्य सरकारें इस विधेयक का अनुसरण करेगी और विधेयक को पारित करेगी । लेकिन ऐसा नहीं हुआ ।

4. **राव समिति -** यह समिति श्री जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में सन् 1985 में गठित की गयी थी ।

   राव समिति की प्रमुख सिफारिशें थीं -

   (i) जिला स्तर पर प्रभावी समन्वय एवं उपयुक्त निर्देशन,

   (ii) नियोजन का विकेन्द्रीकरण,

   (iii) राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं जिला स्तर पर क्षेत्रीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ।

5. **सिंघवी समिति -** इस समिति का गठन 1986 में किया गया जिसके अध्यक्ष श्री एल.एम. सिंघवी थे । सिंघवी समिति ने त्रि-स्तरीय प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की । इस **समिति ने ग्राम सभा को प्रजातन्त्र की तीसरी कतार माना जबकि लोक सभा को प्रथम एवं विधान सभा को दूसरी कतार ।**
6. **तिहतरवां संविधान संशोधन -** वर्ष 1977 से 1987 तक पंचायती राज संस्थाएं उपेक्षा के दौर से गुजरी । स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की निम्नलिखित टिप्पणी से पंचायती राज के जरिये विकास योजनाओं की विफलता का स्पष्ट संकेत मिलता है-

"विकास योजनाओं के लिए दिये गये प्रत्येक एक सौ रूपये में से 85 रूपये वेतन, इमारत पर ही खर्च कर दिये गये और केवल 15 रूपये ही कार्यक्रम पर..... हम यह नहीं कह सकते कि अगर योजना की जड़े गाँवों में व सबसे गरीब लोगों के घरों में नहीं हैं तो योजना प्रभावकारी हो पायेगी ।"

स्व. श्री राजीव गांधी ने ग्रामीण विकास में पंचायती राज के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पंचायती राज को सुदृढ़ करने का आह्वान किया था । लेकिन तत्कालीन संवैधानिक और सामाजिक ढांचे के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाएं सफलतापूर्वक काम नहीं कर सकती थी । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, **पंचायती राज संस्थाओं के विकास हेतु 73वां संविधान संशोधन अधिनियम लागू किया गया है । इस अधिनियम को संसद में 1993 में पारित किया । यह अधिनियम इन संस्थाओं के विकास में एक 'मील का पत्थर' साबित होगा।**

17.9 पंचायती राज का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण व पंचायती राज की शुरूआत को एक ऐतिहासिक घटना माना गया । पंचायती राज संस्थाओं से अधिक प्रशंसा बहुत ही -कम संस्थाओं को प्राप्त हुई है । **पं. नेहरू** ने कहा था कि, ' मैं पंचायती राज के प्रति पूर्णत: आशान्वित हूँ । मैं महसूस करता हूं कि भारत के सन्दर्भ में यह बहुत कुछ मौलिक एवं क्रांतिकारी है । ' **प्रो. रजनी कोठारी** के शब्दों में, ' 'इन संस्थाओं ने नये स्थानीय नेताओं को जन्म दिया -हे जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सक":। है । विभिन्न दलों के राजनीतिज्ञ इन संस्थाओं को समझने लगे है । अब वे राज्य विधानमण्डल के बजाय पंचायत समिति और जिला परिषदों को तरजीह देने लगे है । ' वस्तुत: इन संस्थाओं ने देश के राजनीतिकरण, आधुनिकीरकण समाजीकरण तथा ग्रामीण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । हमारी राजनीतिक व्यवस्था में जन हिस्सेदारी में वृद्धि करके गांवों में जागरूकता उत्पन्न कर दी है ।

उपलब्धियां - देश में पंचायती राज की निम्नलिखित उपलब्धियां रही हैं -

1. **समझ का विकास -** पंचायती राज संस्थाओं से गांवों में राजनैतिक व प्रशासनिक संस्थाओं के बारे में समझ का विकास हुआ है जिसके कारण ग्रामवासी इन संस्थाओं में सक्रिय सहभागिता के लिए आकर्षित हुए है ।

2. **अधिकारों के प्रति चेतना -** लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में व्यक्तियों के बीच जनतांत्रिक मूल्यों के विकास से अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है । मताधिकार चेतना इसी सामान्य चेतना का विशिष्ट स्वरूप है ।
3. **गांवों में भौतिक विकास -** पंचायती राज व्यवस्था ने न केवल ग्रामवासियों के मानसिक विकास में योगदान दिया है बल्कि गांवों के भौतिक विकास में भी कारगर भूमिका निभाई है जिससे गांवों में परिवहन, सिंचाई, पेयजल, शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार हुआ है । इससे सामान्य ग्रामवासी के जीवन स्तर में आशिक सुधार भी आया है ।
4. **शिक्षा -** पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से शिक्षण संस्थाओं की शुरूआत ने साक्षरता का प्रतिशत ही नहीं बढ़ाया है बल्कि गांव के व्यक्तियों के विचारों व मूल्य में परिवर्तन के लिए भी कार्य किया है ।
5. **सामाजिक बुराइयों का समापन -** पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने के बाद गांवों में सामाजिक बुराइयों के समापन के लिए भी एक वातावरण तैयार हुआ जिसके अन्तर्गत मृत्यु भोज, छुआछूत, बाल विवाह, दहेज प्रथा तथा महिला अत्याचार जैसी सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में कार्य किया गया है ।

पंचायती राज के कारण अब गांवों की अवहेलना करना आसान कार्य नहीं रह गया है । गांवों के पिछड़े वर्ग में चेतना आई है, गांवों की स्त्रियां भी राजनीतिक कार्यकलापों में भाग लेने लगी है । गांवों का जागरण राज्य स्तर की राजनीति पर दबाव डालने में सक्षम हुआ है । जातिगत, धर्मगत और अन्य प्रकार के हित स्थानीय दबाव समूह के रूप में प्रकट होने लगे है । दबाव समूह की राजनीति अब नगरों की बपौती नहीं रह गई है । ग्रामीण जनता को अपने अधिकारों और उत्तरदायित्वों के विषय में नई जानकारी मिली है । पंचायती राज नई-नई मांगों को जन्म देकर गांवों को आगे बढ़ा रहा है । गांव वालों में आत्म विश्वास की भावना जाग्रत हुई है और उनमें स्थिति सुधारने के लिए भाग्य-भरोसे न बैठकर कुछ कर गुजरने की प्रवृत्ति पनपी है ।

पंचायती राज के फलस्वरूप एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि ग्रामीणों ने मस्तिष्क से अधिकारियों का भय जाता रहा है । अंग्रेजी शासन के युग में ग्रामीण नौकरशाही की शक्ति से आतंकित थे अब ग्रामीण जन प्रशासनिक अधिकारियों के पास जाकर विश्वास के साथ उनसे अपनी समस्याओं पर बातचीत कर सकते है ।

17.10 पंचायती राज की सफलता के लिए सुझाव

देश का विकास तभी होगा जब उसकी आत्मा के रूप में गावा को प्रगति हो । गांवों का सर्वांगीण विकास पंचायतों की सफलता के द्वारा ही संभव है । पंचायतों की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. पंचायती राज संस्थाओं के ढांचे और उनके वित्तीय व प्रशासनिक अधिकारों के बारे में जो संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं, उन्हें कठोरता से लागू किया जाये ।
2. पंचायती राज संस्थाओं में व्याप्त गुटबंदी को समाप्त करना चाहिए ।
3. पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार किया जाना चाहिए ।

4. पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ।
5. राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को मनमाने ढंग से भंग करने के लिए अधिकार पर कानूनी प्रावधानों के द्वारा अंकुश लगाया जाना चाहिए । इन संस्थाओं को भंग करने पर उनके चुनाव अधिकतम छः माह की अवधि में अवश्य ही कराये जाने चाहिए । यह प्रसन्नता की बात है कि 73वे संविधान संशोधन अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि भंग की गई पंचायतों के चुनाव अधिकतम छः माह की अवधि में अवश्य ही करा लिए जाएं ।

पंचायती राज संस्थाओं के प्रति राज्य सरकारों तथा जिला अधिकारियों का उदासीन होना इनके लिए घातक होगा । राज्य सरकारों, उनके तकनीकी अभिकरणों तथा जिला अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं का मार्गदर्शन करना चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए । जिला अधिकारियों को इन विकेन्द्रित, प्रजातांत्रिक संस्थाओं के मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए । उन्हें जनता को अधिकतम पहल करने का मौका देने वाले शिक्षकों का कार्य करना चाहिए । अधिकारियों को अहंकार व वर्ग उच्चता की खोखली धारणाओं को त्यागना होगा । नौकरशाही की पुरानी उच्चता वाली मनोवृत्ति से काम नहीं चलेगा ।

17.11 महात्मा गांधी का आर्थिक दर्शन

देश की स्वतंत्रता के साथ ही भारत में वर्षों से चली आ रही केन्द्रित शासन व्यवस्था का अन्त हुआ । हमारे नेताओं ने प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था को अपनाया । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमने एकतंत्रीय व्यवस्था को समाप्त करके सम्पूर्ण देश में विकेन्द्रित शासन व्यवस्था को मूर्तरूप दिया । ससंद तथा राज्य विधानसभाओं में देश के सभी भागों से चुने हुए व्यक्ति रहते हैं तथा सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं । संविधान में देश को एक कल्याणकारी राज्य बनाने हेतु पंचायतों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।**बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के अनुसार देश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की तीन स्तरीय व्यवस्था को अपनाया गया है, जिसके अनुसार ग्राम स्तर पर ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत, खण्ड या तहसील स्तर पर खण्ड समिति या पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषदों का गठन किया गया है ।**

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की कल्पना करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि ' 'प्रत्येक गांव में पंचायत राज होगा, उसके पास पूरी सजा होगी । इसका तात्पर्य यह है कि हर गांव को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें पूरी करनी होगी, ताकि यह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा कर सके । यही ग्राम राज, पंचायती राज की मेरी कल्पना है । " गांधीजी के स्वप्नों को मूर्त रूप देने के लिए देश में पंचायतों का गठन किया गया है ।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर जोर देते हुए पं. नेहरू ने कहा था कि ' 'लोकतंत्र की किसी भी सच्ची व्यवस्था का आधार विकेन्द्रीकरण ही है और होना भी चाहिये । हमें लोकतंत्र के बारे में चोटी से ही सोचने की कुछ आदत सी पड़ गयी है और नीचे से लोकतंत्र के बारे में हम कोई खास सोच-विचार नहीं करते जब तक लोकतंत्र का इस नीचे के आधार पर निर्माण नहीं किया जायेगा, यह शिखर पर सफल नहीं होगा । "

भारतीय संविधान में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण व पंचायती राज को महत्त्व देते हुए अनुच्छेद 4० में लिखा गया है कि - ' 'राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हों । " निःसंदेह ये शब्द थोड़े है परन्तु अर्थ भरे है ।

ग्रामीण भारत में सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों में सुधार लाने और स्थानीय प्रयासों की उपयोगिता को बनाए रखने के उद्देश्य से जनवरी, 1957 में बलवंत राय मेहता समिति गठित की गई । 24 नवम्बर,1957 को समिति ने अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को पेश कर दी । समिति ने सिफारिश की कि राज्य से नीचे से स्तर पर अधिकारों और दायित्वों का विकेन्द्रीकरण करना अत्यंत आवश्यक है । समिति ने कहा-' 'सत्ता ऐसी संस्था को सौंपी जाए जो अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत सभी विकास कार्यो के लिए उत्तरदायी हो और सरकार का काम मार्गदर्शन, उच्च स्तर की योजना तथा जहां आवश्यकता हो धन उपलब्ध कराना ही होगा।" पंडित जवाहर लाल नेहरू ने ये सिफारिशें स्वीकार कर लीं तथा उन संस्थाओं का नाम 'पंचायती राज' रखा । इस समय देश में, जो कि विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, लगभग 2 .25 लाख ग्राम पंचायतें, 5.5 हजार पंचायत समितियां तथा 500 से अधिक जिला परिषदें काम कर रही है ।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा पंचायती राज प्रणाली लागू करने में राजस्थान सबसे पहले आगे आया और यहां 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज व्यवस्था शुरू हो गई । उसी साल नबंवरमें आंध्रप्रदेश ने भी यह कदम उठा लिया । महाराष्ट्र ने 1 मई, 1962 को पंचायती राज प्रणाली अपनाई गई । पिछले दो दशक में इन संस्थाओं ने लोकतंत्र तथा विकास की प्राचीन परम्पराओं का निर्वाह करने के साथ-साथ सब लोगों के कल्याण के लिए और अधिक उद्देश्यों की ओर भी कदम बढ़ाए हैं । जिला शासन के रूप में पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से विकास की प्रक्रिया तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की जड़े हमारे यहां बहुत गहरी जम चुकी है । पंचायती राज प्रणाली साधारणतया गांव, खण्ड और जिले के स्तर पर स्वायत्त शासन की त्रिस्तरीय व्यवस्था है । परन्तु विभिन्न राज्य अपनी स्थानीय स्थितियों के अनुरूप इस ढांचे में परिवर्तन कर सकते है । सभी पंचायती राज संस्थाएं मूलत: एक-दूसरे से जुड़ी हुई है । पिछड़े वर्गो, महिलाओं तथा सहकारी समितियों को इन संस्थाओं में विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाता है ।

17.12 सारांश

पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास के सभी पहलुओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को तैयार करने, क्रियान्वयन करने तथा मूल्यांकन करने में पंचायती राज संस्थाऐं ही महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है । ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण। विकास सभी इनके माध्यम से ही संभव हो सकता है ।

पंचायती राज संस्थाओं का भविष्य उज्जवल है नियोजन जनता के लिए, जनता द्वारा तथा जनता का होना चाहिये । स्थानीय आवश्यकताओं का समाधान ढूंढा जाये विभिन्न स्तरों पर (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद) नियोजन हेतु कुशलता परमावश्यक है

जिससे कि आवश्यकताओं उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को ध्यान में रखकर विकास सम्बन्धी रणनीति तैयार की जा सके ।

17.13 शब्दावली

1. **विकेन्द्रीकरण -** किसी भी केन्द्रीकृत शक्ति को कई भागों में बांट देना या उसे एक स्थान पर न रहने देना ।
2. **लोकतंत्र -** लोकतंत्र, जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन ।
3. **ग्राम सभा -** यह ग्राम पंचायत की सामान्य सभा होती जिसमें ग्राम पंचायत के क्षेत्र में रहने वाले समस्त मतदाता होते हैं जो एक गांव या इससे अधिक गांवों का प्रतिनिधित्व करती है।
4. **जिला परिषद् -** यह पंचायत राज. प्रणाली के त्रिस्तरीय ढांचे की सर्वोच्च संस्था है जो जिला स्तर पर गठित की जाती है ।

17.14 स्वपरख प्रश्न

1. भारत में पंचायती राज की विशेषताओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिये ।
2. लोक तंत्र एवं ग्रामीण विकास के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए ।
3. भारत में पंचायती राज की उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए ।

17.5 उपयोगी पुस्तकें

1. चौधरी, जैन, जाट - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता: शिवम् बुक हाउस लिमिटेड, जयपुर।
2. माथुर, यादव, कटेवा - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता, वाइड विजन, जयपुर ।
3. सी.एम. चौधरी - ग्रामीण विकास एवं सहकारिता: शिवम् बुक हाउस लिमिटेड, जयपुर ।

ISBN-13/978-81-8496-019-8